"अहो ! अहो ! श्री सद्गुरु,
करुणा सिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो,
अहो, अहो उपकार ।"

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन
स्वयंज्योति सुखधाम;
दूजा कहिये कितना ?
कर विचार तो पाम ।"

(पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा
लिखे गये पत्रों का संग्रह)

सङ्कलयिता और सम्पादक
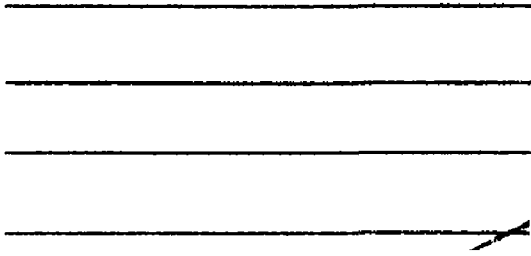
नरेन्द्र विद्यार्थी

काव्यतीर्थ, शास्त्री, साहित्याचार्य, बी ए
भूतपूर्व एम. एस. ए. विन्ध्य तथा मध्यप्रदेश)

प्रस्तुति

सुधा देवेन्द्र जैन

वर्णी-पत्र सुधा

पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा लिखे गये पत्रों का सग्रह

प्रथम सस्करण वीर नि स २४८४ वर्णी जैन ग्रथ माला, काशी

द्वितीय सस्करण २२ फरवरी २००८

आवरण चित्र सुरेश म्हात्रे, मुम्बई

(०२२) २८७७ ४८१६

प्रकाशक

श्रीमती सुधा देवेन्द्र जैन

सन्मति ट्रस्ट

बी-२१ कहान नगर,

एन सी केलकर रोड

दादर (प), मुम्बई-४०० ०२८

फोन (०२२) २४३६०७९२

पुस्तक प्राप्ति स्थल :

(१) श्री गणेश दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय, लक्ष्मीपुरा, **सागर**-४७०००२ (म प्र)

(२) ब्र जिनेश जैन दिगम्बर जैन गुरुकुल, मडियाजी, **जबलपुर** म प्र

(३) ब्र सदीप सरल अनेकात ज्ञान मदिर, छोटी बजरिया, **बीना**, म प्र

(४) श्रीमती सुप्रभा कुन्दनलाल जैन कनककुटी, नायक मार्ग, **टीकमगढ**, म प्र

लागत मूल्य . १५०/- रु

पंथ लाइ जिन दीन गियानु

श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी

जिस स्वयबुद्धने सत्यकी शोध, सतत साधना,
सार्वजनीन सेवा, परदु ख कातरता तथा
बहुमुखी विद्वत्ता द्वारा
अज्ञानतिमिरान्ध जैन समाज का
ज्ञान-लोचन उन्मीलित कर,
लोकोत्तर उपकार किया है
उन्हीं
आधरे की लठिया

श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी जी

की पुण्य-स्मृति साधना को
उन्हीं की वस्तु उन्हे ही सादर

- सन्मति ट्रस्ट,
मुम्बई

मेरे जिनवरका नाम राम ।

हे सन्त ! तुम्हें सादर प्रणाम ।।

(राष्ट्रकवि) मैथिलीशरण गुप्त

जैनधर्मको मै भारत भूमिपर त्याग और तपोमय जीवनके लिए किये हुए अनुभवो मे उच्च स्थान देता हू और इसी कारण उसके प्रति मेरी सहानुभूति है । जैन प्राकृत और सस्कृत एव अपभ्रश साहित्यमे भारतीय सस्कृतिके लिए अत्यधिक सामग्री भरी हुई है। जिन पूर्वज विद्वानोने इस साहित्यके निर्माणमे अपने व्रतपूर्ण जीवनका सदुपयोग किया है उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना हमारा कर्तव्य है । पूज्य वर्णीजी ऐसी ही विभूति है, उनका तथा जैन साहित्यसे भारतीय सस्कृतिकी व्याख्या के सब प्रयत्नोका मै अभिनन्दन करता हू ।

नयी दिल्ली

(डा) वासुदेवशरण अग्रवाल, एम ए , डी लिट

वर्णी अभीनन्दन ग्रथ से साभार

प्रथम आवृत्ति का प्रकाशकीय वक्तव्य

पिछले वर्ष जैनदर्शनका प्रकाशन श्री वर्णी ग्रन्थमालासे हुआ था । उसके बाद इतने जल्दी वर्णीवाणी चतुर्थ भाग (पत्र पारिजातको) ग्रन्थमालासे प्रकाशित होनेका सौभाग्य मिला है इसकी हमें प्रसन्नता है । इसमें पूज्य श्री वर्णी जी द्वारा त्यागियोको अलग अलग लिखे गये पत्रोंका सकलन किया गया है । पत्रोकी अपनी मौलिक विशेषता है । जो व्यक्ति जैन समाजकी विविध प्रवृत्तियोंका अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिये तो ये पत्र पठनीय हैं ही । साथ ही जो आध्यात्मिक रहस्यको समझना चाहते हैं उनके लिए भी ये पठनीय है ।

वर्णीवाणीके सम्पादक श्री वि नरेन्द्र जीने इनके संकलनमें बड़ा श्रम किया है । उनके दीर्घ अध्यवसायके फलस्वरूप यह कार्य मूर्तरूप ले रहा है इसकी हमे प्रसन्नता है । उन्होने विद्वानो, सेठों और विद्यार्थियोंको पूज्य श्री वर्णी जी द्वारा लिखे गये पत्रोका भी सकलन कर लिया है और उनकी प्रेसकापी भी कार्यालयमे आ गई है । आगे हमारा विचार क्रमसे पॉचवें भाग आदि रूपसे उन्हे ही सर्व प्रथम प्रकाशित करनेका है । यदि अनुकूलता रही तो पाठकोंको उनका स्वाध्याय करनेका शीघ्र ही अवसर प्राप्त होगा । इतना अवश्य है कि ग्रन्थमालाने जैन साहित्यके इतिहासका कार्य भी सम्हाल रखा है, इसलिए आर्थिक दृष्टिसे उस पर पर्याप्त बोझ पड रहा है । आशा है समाजके उदार सहयोगसे ग्रन्थमाला अपने निर्दिष्ट कार्योमे सफलता प्राप्त करेगी । शेष बातोका स्पष्टीकरण ग्रन्थमाला सम्पादकने अपने वक्तव्यमे किया है ।

प्रकृतमे पाठकोंसे हम यही आशा करते हैं कि वे वर्णीवाणीके अन्य भागोके समान इसे भी समुचित रूपसे अपनावेंगे ।

निवेदक

ता २५-११-५६ - बीना

वंशीधर व्याकरणाचार्य

मंत्री श्री. ग वर्णी जैन ग्रन्थमाला, काशी

दो शब्द

वर्णीवाणी चतुर्थ भाग को प्रकाशन योग्य बनानेमे पर्याप्त समय लगा है । इसमे पूज्य श्री १०५ क्षु गणेशप्रसाद जी वर्णीके वे पत्र सकलित किये गये है जो उन्होने त्यागी गणको समय समय लिखे हैं । यो तो बहुतसे पत्र कलकत्ता, इन्दौर और सहारनपुर आदिसे प्रकाशित हो गये हैं परन्तु उनको व्यवस्थित रूपसे सकलित कर प्रकाशित करनेका यह प्रथम ही अवसर है ।

वर्णीवाणीके पिछले तीन भागोंमे पूज्य श्री वर्णी जीके विविध लेखो, प्रवचनो और दैनदिनियोका ही सकलन किया गया है, इसलिए वे वर्णीवाणी इस नामसे प्रकाशित की गई है । किन्तु इस भागमे केवल पत्रोका सकलन होनेसे इसका मुख्य नाम वर्णीवाणी रखकर भी ब्रेकेटके भीतर 'पत्रपारिजात' नाम दिया गया है ।

पूर्व भागो के समान इस भागका सकलन श्री बी ए, साहित्याचार्य और साहित्यरत्न आदि योग्यता सम्पन्न चि वि नरेन्द्रकुमारजी भूतपूर्व सदस्य विधानपरिषद विन्ध्यप्रदेशने किया है । उन्होने पूज्य श्री वर्णी जी महाराज द्वारा विद्वानो, सेठो और विद्यार्थियोको लिखे गये पत्रोका भी सकलन किया है । वह सब सकलन ग्रन्थमालाके कार्यालयमे विद्यमान है । विद्यार्थीजी से ज्ञात हुआ है कि अन्तमे इस कार्यमे उनकी विदुषी पत्नी सौ रमादेवी न्यायतीर्थ साहित्यरत्नका भी पूरा सहयोग मिला है ।

प्रकाशनके पूर्व आपसी बातचीतमे विचार हुआ था कि जिस व्यक्तिके नाम पत्र हो उसका नाम आशीर्वाद या दर्शन विशुद्धिके साथ प्रथम पत्रके प्रारम्भमे दे दिया जाय और 'आ शु चि गणेश वर्णी' यह वाक्य अन्तिम पत्रके अन्तमे दे दिया जाय । प्रेस कापी इसी आधारसे तैयार की गई थी । किन्तु अनेक विचारकोकी सलाह मिलीं कि सब पत्र अविकल दिये जाने चाहिए । पत्रो के बीचके कुछ अन्य अश भी प्रेस कापीके समय अलग कर दिए गये होगे । किन्तु सब पत्र अविकल दिये जाने चाहिए इस सिद्धान्तके स्वीकार कर लेनेसे यथासम्भव प्रेस कापीको मूल पत्रो से पुन मिलाया गया। साथ ही यह भी विचार हुआ कि जिन व्यक्तियो के नाम लिखे गये पत्र दिये जा रहे है उनका प्रारम्भमे परिचय भी रहना चाहिए । यह सब कोई जानता है कि परिचय प्राप्त करनेमे कितनी कठिनाई होती है । किसीका परिचय न देने पर अन्यथा कल्पना होने लगती है । किन्तु एक दो बार लिखने पर कोई भेजता भी नहीं है । यह भी एक

दिक्कत थी । इससे इस भागके प्रकाशित होनेमें काफी समय लगा है । हमारा अन्य व्यासग तो इस देरीमे कारण है ही ।

इस भागमें तीस त्यागी महानुभाव और बहिनोके नाम लिखे गये पत्र दिये गये है। जहाँ तक सम्भव हुआ सबका परिचय भी साथमें देते गये हैं । परन्तु २-४ ऐसे भी महानुभाव हैं जिनका पूरा परिचय नहीं दिया जा सका है । उनमेंसे एक श्री ब्र. मूलशकरजी भी है । उन्हें अनेक बार पत्र लिखे गये । यह भी बताया गया कि यह लोक प्रख्यापनकी दृष्टिसे कार्य नहीं हो रहा है । वर्तमान त्यागियों विद्वानों और जनसेवको आदिका इतिहास सुरक्षित रहे इस अभिप्रायसे ही यह कार्य किया जा रहा है अत अपना परिचय भेजने मे आपको आपत्ति नहीं होनी चाहिए । यदि आप स्वयं न लिखना चाहे तो हमारे प्रश्नोका उत्तर जो आपसे अच्छी तरह परिचित हो उससे दिला दे । परन्तु वे टससे मस न हुए और उन्होने लौकिक कार्य मान कर इसे करने करानेमे अपनी असमर्थता प्रगट की । फल स्वरूप हम उनका पूरा परिचय देनेमें असमर्थ रहे ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजकी वाणीमे क्या विशेषता है यह बात वर्णीवाणीके पाठक महानुभावोसे छिपी हुई नहीं है । हम उनके प्रवचनो और विविध लेखो में जो जादू अनुभव करते हैं वही जादू उनके इन पत्रोमें दृष्टिगोचर होता है । सभी पत्रोमे अध्यात्म रस भरा हुआ है । अन्य प्रासगिक बातें नहीं के बराबर हैं । इनमें एक ऐसा भी पत्र है जो स्वय उन्होने अपने आपको सम्बोधित कर लिखा है । यह पत्र वर्णीवाणीके सम्पादक वि. नरेन्द्रजीने बडे प्रयत्नसे खोज निकाला है । हम इसे सब पत्रोकी जान मानते है । अन्य पत्रोमे आपको कदाचित् शिष्टाचारकी गन्धका अनुभव हो सकता है । पर यह पत्र उनकी आत्माका प्रतिबिम्ब माना जा सकता है । इसमें स्वय को सम्बोधितकर उन्होंने अपने भीतर वास करनेवाली कमजोरीका भी दिग्दर्शन कराया है । पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे यह सबसे बडी विशेषता है कि वे अपनी कमजोरीको दूसरो के सामने रखनेमें कभी सकोचका अनुभव नहीं करते । उनमें वह कमजोरी है या नहीं है यह बात अलग है । वास्तवमें उनका त्याग सेवा और ज्ञानाराधना उन्हें महान् बनाये हुए है ।

सब त्यागियोके परिचय मैंने स्वयं लिखे हैं । परिचय लिखते समय मैंने अपने अनुभव और मतका रचमात्र भी उपयोग नहीं किया है । सबके पास कुछ प्रश्न भेजे गये थे - नाम, पिताका नाम, माताका नाम, जाति, निवास स्थान, शिक्षा, त्यागी होनेकी

तिथि-सम्वत, सेवा आदि । इन प्रश्नोके जो जो उत्तर आये वे ही अपनी भाषामे सकलित कर यहॉ रख दिये गये हैं । हमने सबकी जाति भी लिखी है । इस भागके सपादक श्री नरेन्द्रजीने पत्र लिख कर इस बातका विरोध भी किया था । उनका तर्क था कि यह जातिवादका जमाना नहीं है । आप स्वय इस जातिवादके चक्करसे बाहर है फिर भी आप परिचयके साथ जाति दिखलाने मे सकोच नही करते यह आश्चर्यकी बात है। इसमे सन्देह नहीं कि हम इस तर्कके लिये कायल हैं । पर एक तो यह स्थल हमे अपने विचारोको उपयोगमे लानेका नहीं था । दूसरे जब वर्तमानमे उसका चलन है तब नामके समान उसका उल्लेख करने मे हमने विशेष हानि नहीं समझी । तथा ऐतिहासिक दृष्टिसे ऐसा करना महत्त्व भी रखता है यही कारण है कि हम प्रत्येक त्यागीके परिचयके साथ उनकी जातिका भी निर्देश करते गये है ।

प्राय सब पत्र कालक्रमसे ही दिये गये है । बहुतसे पत्रो पर तिथि और सम्वत् न होनेसे कहीं कहीं व्यत्यय हो गया प्रतीत होता है जिसका सशोधन करना सम्पादकके लिए सम्भव भी नही था । पूज्य श्री वर्णी जी महाराजके पास बैठते और उन्हे सब पत्र आनुपूर्वीसे दिखलाये जाते तो भी इस दोषका परिमार्जन नहीं हो सकता था । आशा है इस दोषके लिये पाठक गण क्षमा करेगे । वि नरेन्द्रजीने इस कार्यमे जो श्रम किया है उसको यहॉ बतलाना सम्भव नहीं है । उनका पुरुषार्थ था कि यह कार्य इतने उत्तम प्रकारसे बन गया है । इससे आमतौरसे एक नई जागृतिके लिए प्रोत्साहन मिलेगा ऐसी हमे आशा है ।

जैन जातिभूषण दानवीर श्रीमान् सिघई कुन्दनलालजी, सागरको कौन नही जानता । बुन्देलखण्डकी जनजागृतिमे उनका विशेष हाथ है । शिक्षाप्रचार, तीर्थोद्धार और असमर्थ छात्रोकी सहायता करनेमे उन्होने मुक्तहस्त होकर द्रव्यका सदुपयोग किया है । पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके वे दाहिने हाथ है । इस कालमे बुन्देलखण्डमे दानकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन सर्वप्रथम उन्हींके द्वारा मिला है । उनके समान उनकी धर्मपत्नी भी सब धार्मिक कार्यो मे उनके साथ रहती है । सागरका महिलाश्रम उन्हींकी उदारवृत्तिका फल है । जैन समाजपर इस युगल दम्पत्तिका बहुत बडा ऋण है । इस भागके साथ हमारी इच्छा श्रीमान् सिघईजीके साङ्गोपाङ्ग जीवनचरितको प्रकाशित करनेकी थी । इसके लिए श्रीयुक्त प पन्नालालजी साहित्याचार्यको हमने कई बार लिखा भी था । किन्तु उसकी पूर्ति श्रीयुक्त वि नरेन्द्रजीने की है । उन्होने उनकी सक्षिप्त जीवनी लिखकर भेजी है और उसे हम इस भागके साथ छाप रहे हैं ।

वर्णीवाणीका यह भाग उन्हींकी उदार सहायतासे प्रकाशित हो रहा है । इस कार्यके लिए उन्होंने २१०१/- रुपया की सहायता प्रदान करनेकी स्वीकृति दी है । इस द्रव्यसे उनके नामसे आगे भी अन्य धार्मिक ग्रन्थ प्रकाशित होते रहेंगे । इस उदार सहायताके लिए हम ग्रन्थमालाकी ओरसे उनके विशेष आभारी हैं ।

इस भागके लिए जियागञ्जकी ओरसे स्व श्रीमान् ब्र. सुमेरचन्द्रजी भगतकी मार्फत १००/- और हजारीबागकी एक बहिन सौ श्री हरखीभाई धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालालजी की ओरसे पूज्य माता पतासीबाईकी मार्फत १००/- प्राप्त हुए थे । इसके किए हम उनके भी आभारी हैं । इन रुपयोकी पुस्तकें उनके पास पहुँचा दी जावेगी ।

- फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री

उनके अक्षर - उनकी बात

पूज्य वर्णी जी कितने सुगम शब्दों मे रहस्यमयी बातो का उद्घाटन कर देते थे-

किसी भी वस्तु को तुच्छ मत समझ
भी अपने को तुच्छ मत मानो
आगम में सर्व जीवों को जीवत्वापे ।
क्षया सदृश माना है - किन्तु अना
दि काल से कर्म मल कलङ्क से
कोई भी प्राणी रहित नहीं जिन महा
पुरुषों ने स्वीय आत्मबल से पर में
ममत्व त्याग दी वह महापुरुषों
की गणना में आगए

गणेश वर्णी

अपनी बात

पूज्य श्री वर्णीजी महाराज भारतके आध्यात्मिक सन्तोंमेसे एक हैं । हर समाजमे सन्तोकी कमी नहीं है परन्तु एक समाजके सीमित दायरेसे बाहरके विशाल असाम्प्रदायिक क्षेत्रमे आकर 'सर्वजनहिताय', 'सर्वजनसुखाय' बात निर्भीकतासे करना वर्णीजी जैसे प्रखर आत्मबलशाली महापुरुषके ही बसकी बात है । विरोधकी अग्निकी धधकती भट्ठी की परवाह न कर 'हरिजन मन्दिर प्रवेश' के समर्थनमे दिया गया उनका शास्त्रीय एव राष्ट्रीय निर्णय आज भी आश्चर्यकी बात है ।

वर्णीजीने ऐसे अनेको सुधारोकी चिनगारियाँ प्रज्वलित की हैं जिन्होने ज्वलन्त ज्वाला बनकर रूढियोको भस्म कर समाजको सुसस्कृत बनानेमे सरस्वतीका सहयोग लिया है । बुन्देलखण्डमे शिक्षाप्रचारकी सफलता इसका जीता जागता उदाहरण है । जहा गये समाजके सामने कहा, न पहुँच सके तो पत्रो द्वारा प्रेरणा की, उपदेश दिया और समस्याको सुलझा दिया । समाजके निर्णयके लिये उन्होंने प्रति परिचितके हृदयको, अन्तस्थलको छुआ, निकट पहुँचे और अपना लिया, अपना बनाकर सन्मार्गमे लगा दिया और जिसका साथ दिया अन्त तक दिया । उसकी सद्गति हो इसके लिये भी उसे अन्तिम समय भी उपदेश पूर्ण पत्र लिखे । इसी पुस्तक मे आप उन्हे पढेगे और देखेगे कि वे कितने मर्मस्पर्शी हैं । ऐसे ही पत्रोसे दूसरो के लाभार्थ उनके पत्रोंके प्रकाशनकी प्रणाली चली । इन्दौरके उदासीन ब्र मथुरालालजीने ब्र श्री मौजीलालजीके समाधिलाभार्थ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोंको सर्वप्रथम शान्तिसिन्धु समाचार पत्रमें प्रकाशित कराया था । इसके पश्चात् ब्र श्री दीपचन्दजी वर्णी को उनके समाधिलाभार्थ वर्णीजी द्वारा लिखे गये पत्रोको प्रकाशित कराया गया । ये पत्र पुस्तकके रूपमे भी प्रकाशित हुए । फिर सभी तरहके वर्णीजीके पत्रोके प्रकाशन की एक परम्परा चल पडी । और अबतक कुल छह पुस्तकोमे ये प्रकाशित हुए । परन्तु खेद है कि पत्र सग्रहकर्ता महानुभाव न तो सम्पादन कलाविद् थे और न इन पत्रोका पूर्ण मूल्याकन कर सकनेका समय ही उनके पास था । फलत जो जैसे पत्र भेजता गया, प्रेसकी भोज्य सामग्री बनते गये । अनेक लोगोने अपनी विशेष ख्याति प्रदर्शन के लिये दूसरोके नाम लिखे गये पत्रोके शिरनामे बदलकर अपने नाम करके छपवा लिये पर जब इस कलमके सामने आये मूल प्रतिके 'एक्सरे' के समक्ष नकल पार्थिव शरीरकी जाच की गई तुरन्त पता लग गया कि 'ख्याति' के पेटमे कहा 'खता' (फोडा) हुआ है ? किस किस तरह की चोरियाँ की गई है । पत्रोकी तोड मरोड भी कैसी कुशलतासे की गई है और अपनी ख्यातिके लिये जो असभव और अशोभन था वह

भी कैसे कर डाला गया है । अस्तु, अभी तीन वर्षके कठोर परिश्रमसे तैयार किये हुए पूज्य वर्णीजी द्वारा लिखे गये समस्त पत्रोंका सग्रह - जो पत्र प्रकाशित थे पर अनुपलब्ध हो चुके थे उनका तथा अबतक लिखे नवीन प्राचीन अप्रकाशित पत्रोंका जो सन् १९१९ से लेकर अबतक २२ वर्षमें लिखे गये और जिन्हें हम अपने प्रयत्नसे प्राप्त कर सके - ऐसे सभी पत्रोंका सग्रह छह खण्डोमें किया गया । १ साधु वर्ग, २ साध्वी वर्ग, ३. धीमन्त बर्ग, ४ श्रीमन्त वर्ग, ५ साधारण वर्ग और ६ विद्यार्थी वर्ग । प्रस्तुत प्रथम पुस्तकमें साधुवर्ग तथा साध्वीवर्ग के पत्रोंका सग्रह किया गया है ।

पूज्य आचार्य श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराजके नाम लिखे गये पत्रोसे यह पुस्तक प्रारम्भ होती है । साधु साध्वियोका प्रतिमा क्रम से पत्रसग्रहका ध्यान रखा गया है । परन्तु पत्र छपते-छपते तक अनेकोंने पदवृद्धि की होगी जो हमे ज्ञात न हो तो क्षमा करे ।

पत्रोकी बहुतसी मूल प्रतियाँ ३७ वर्ष पुरानी, वह भी पेन्सिलसे लिखीं आपसमें कागजकी घसीटसे इतनी मिट गई थीं कि पढना कठिन था फिर भी मै धन्यवाद दूगा सागरकी अशोक वाच क के मालिक, वर्णीजीके अत्यन्त भक्त सेठ कुन्दनलालजीको जिनके घडीके छोटे पुर्जे देखनेवाले दूरबीन यन्त्रसे हम वे पत्र पढ़ सकनेका सक्रिय हल प्राप्त कर सके । एक अच्छे घडीसाजकी तरह ऑखपर वह कॉचका यन्त्र लगाकर मिटे धुधले पत्र पढनेमें जो चित्तकी एकाग्रता प्राप्त होती थी आज स्वप्नसी बन गई है ।

श्रीमान् पूज्य प फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, बनारस जिनकी प्रेरणासे यह पुस्तक प्रकाशमे आ रही है, और श्री धर्मचन्द्रजी बी काम , साहित्यरत्न, तथा भाई श्री लक्ष्मणप्रसादजी बी ए शास्त्रीका विशेष आभारी हूँ जिन्होने पत्रोंके प्रकाशनमे यथायोग्य सहयोग दिया ।

अपनी विदुषी जीवनसगिनी श्रीमती सौ रमादेवी साहित्यरत्न, न्यायतीर्थको धन्यवाद देनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती जिसने सग्रह कार्य समाप्त होने पर सम्पादनमें अब सक्रिय सहयोग देकर हमारी सच्ची सहायता की है ।

पूज्य श्री वर्णीजीके पत्र जन जीवनमें प्रेरणादायक एव कल्याणकारक होगे ऐसी शुभाशाके साथ पूज्य श्री वर्णीजी के चिरायु होने की कामना करता हूँ ।

छतरपुर,

रक्षाबन्धन वि स २०१४

विनीत

- नरेन्द्र

यह संस्करण

त्यागमूर्ति, प्रात स्मरणीय पूज्यपाद श्री प गणेशप्रसादजी वर्णी का नाम कौन नहीं जानता ? जैन सत परम्परा के एक देदीप्यमान सूर्य । जो वर्षो पूर्व अस्त होने पर आज भी उनकी ज्ञान रश्मियों का प्रकाश वसुन्धरा पर व्याप्त है । उनके समग्र प्रकाशित साहित्य वर्णी वाणी मे से यह चतुर्थ भाग 'पत्र-पारिजात' वर्षो से अनुपलब्ध था । उनके अनिर्वचनीय उपकारो से नम्रीभूत होकर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित हेतु सन्मति ट्रस्ट ने विचार किया कि क्यो न इसे पुन प्रकाशित कर समाज को स्वाध्याय हेतु उपलब्ध कराया जाय । जो अब 'वर्णी पत्र सुधा' के रूप मे प्रस्तुत है । वैसे वर्णीजी के सम्पूर्ण साहित्य को सग्रहित-सुरक्षित करने का कष्ट साध्य कार्य का श्रेय स्व श्री नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर को जाता है । उनके प्रति ट्रस्ट कृतज्ञता ज्ञापित करता है ।

इस सस्करण के लिए बौद्धिक सहयोग दाता धीमानो जिनमे ब्र सदीप सरल, बीना, ब्र विनोद जैन, द्रोणगिरि, डा फूलचद जैन 'प्रेमी', वाराणसी, ब्र जिनेश जैन, जबलपुर, श्री राकेश पन्नलाल जैन, श्रीमती सुप्रभा कुन्दनलाल जैन सिघई, श्री हेमचन्द्र जैन सिघई, टीकमगढ, श्री नीरज जैन, सतना, श्रीमती डा रमा नरेन्द्र विद्यार्थी, छतरपुर, श्री के के सराफ मत्री, श्री गणेश दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय, ब्र राकेश जैन, सागर के प्रति ट्रस्ट कृतज्ञ है । और जिनके अर्थ सहयोग बिना यह प्रकाशन सभव न था वे श्रीमती उषा सुभाष गोदरे, श्रीमती राजकुमारी जी रादेरिया कटनी, श्री के. पी जैन, श्री अशोक गगवाल जैन, श्रीमती सोनल जतीन जैन, श्रीमती कुसुम पारसमलजी जैन, श्रीमती सगीता गुलाबचद जैन, श्री सनतकुमार कातिलाल जैन, श्री नरेशकुमार जैन, श्री वसनजीभाई भाणजीभाई, श्री किरीट वोरा, मुम्बई तथा ब्र बिजेन्द्र जैन तथा श्री ए के जैन फरीदाबाद एव चि विधान दीपक जैन, दुबई के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है ।

अत में पूज्य श्री वर्णीजी के उस सातिशय पुण्य को प्रणाम करते हैं जिसके प्रताप से यह कार्य पूर्ण हुआ ।

सत्पुरुषो के योगबल से जगत का कल्याण होवे ।

- सुधा जैन, देवेन्द्र जैन

२२ फरवरी २००८ **सन्मति ट्रस्ट**

श्री जिनाय नमः
जीवन परिचय पू. श्री १०५ वर्णीजी

यः शास्त्रार्णवपारगो विमलधीर्ये संश्रिता सौम्यता ।
येनालम्भि यशः शशाङ्कधवलं यस्मै व्रतं रोचते ।।
यस्माद् दूरतरं गता प्रमदता यस्य प्रभावो महान् ।
यस्मिन् सन्ति दयादयः स जयति श्रीमान् गणेशः सुधीः ।।

जन्म समय और स्थान -

हरेभरे खेत, लहलहाती लताएँ, सस्यश्यामला वीरप्रसविनी बुन्देल वसुधाकी सुन्दर छता देखते ही बनती थी । सुभिक्षका समय था, घर-घरमे घी दूधकी नदियाँ बहती थीं, देहातोमे गोरस बेचना पाप समझा जाता था । खद्दरका प्रचार था, अत दरिद्र और भिखमगोकी बढ़ती आज जैसी न थी । हृष्ट पुष्ट बच्चे, जोशीले जवान, साहसी बूढ़े और लाडली ललनाओके आदर्श वक्तृत्व कलाके सजीव उदाहरण थे । प्राचीन भारतकी वह झलक आँखोसे ओझल न थी जब विक्रम स. १९३१ की उस मङ्गलमय प्रभातवेलामे आश्विन कृष्ण चतुर्थीको श्री हीरालालजी को हीरा मिला, उजयारीबहूको दिव्य उजेला मिला (पूज्य वर्णीजी का जन्म हुआ) । हँसेरा ग्राम (झाँसी) अपनेको कृतकृत्य और वहाँकी गरीब कुटिया अपनेको धन्य समझ रही थी । प्रकृतिकी निराली सुषमा प्राकृतिक मङ्गलाचार करती गीत गाती प्रतीत हो रही थी -

''माताने पुत्ररत्न पाया, दुखियोंने पाया दिव्य दान ।
वीरोने पाया महावीर, बज उठा दुन्दुभि मधुर ध्वान ।।''

जगतीको अतीत गौरव मिला, दुखियोको दिव्यदान मिला, पतितोको उद्धारक मिला, भूलोको पथदर्शक मिला, और मिल गया सज्ज्ञान दीप अज्ञान त्रस्त बुन्देलखण्ड वसुन्धरा को । बधाये बजे, आनन्द मनाया गया, नामकरण सस्कार हुआ, लोग इन्हे 'गणेश' कहने लगे । पर यह किसीको ज्ञात न था, ज्योतिषी भी न जान सके - ''धूल भरा हीरा, गुदडीका लाल बालक 'गणेश' वर्णी होगा ! कल्याण पथदर्शक साधु सन्त होगा, बाहिरी शत्रुसे भी अधिक भयानक और किसी भी सगठित क्षेत्रसे अधिक बलवान्, मानवमात्रके भीतरी शत्रु काम, क्रोध, लोभ और मोहको परास्त करेगा । अपने आत्मबलके सहारे बिना किसी भेदभावके सबको आत्म-कल्याणका मार्ग प्रदर्शन करेगा ।''

आगन्तुकोंने आशीर्वाद दिया - ''जिओ मेरे लाल ! बढो मेरे लाल !! भगवान् तुम्हे कुशल रखे !!!''

बाल-जीवन-

माँ बापकी आशाका आधार, प्यारका पुतला और दूसरा प्राण, बड़ी चिन्ताके साथ लालन-पालन पा गलियोंमे खेलने कूदने लगा परन्तु कभी सहसा आतुर हो उठता खेलते-खेलते अपने आपको कुछ समझनेके लिए दूसरोंको कुछ समझाने के लिए ।

होनहार विद्यार्थी गणेशीलालका क्षेत्र अब घर नहीं एक छोटा-सा देहाती स्कूल और मडावराका श्री राममन्दिर था । वि स १९३८, अवस्था ७ वर्षकी परन्तु विवेक, बुद्धि, प्रतिभाशालिता और विनयसम्पन्नता ये ऐसे गुण थे जिनके द्वारा विद्यार्थी गणेशीलालने अपने विद्या गुरु श्री मूलचन्दजी शर्मासे विद्याको अपनी पैतृक सम्पत्ति या धरोहरकी तरह प्राप्त किया । गुरुकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य समझकर गुरुजीका हुक्का भरनेमे कभी आना-कानी नहीं की । निर्भीकता भी कूट-कूटकर भरी थी, आखिर एक बार तम्बाकू के दुर्गुण गुरुजीको बता दिये, हुक्का फोड डाला, गुरुजी प्रसन्न हुए, हुक्का पीना छोड दिया ।

बचपनकी लहर थी, विवेक परायणता साथ थी, जैन मन्दिरके चबूतरे पर शास्त्रप्रवचनसे प्रभावित होकर विद्यार्थी गणेशीलालने भी रात्रि भोजन त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली । यही वह प्रतिज्ञा थी, यही वह त्याग था, जिसने १० वर्षकी अवस्थामे (वि स १९४१ मे) विद्यार्थी गणेशीलालको सनातनधर्मीसे जैनी बना दिया ।

इच्छा तो न थी परन्तु कुलपद्धतिकी विवशता थी अत (स १९४३) १२ वर्षकी अवस्थामे यज्ञोपवित सस्कार हो गया । विद्यार्थीजीने (स १९४६) १५ वर्षकी आयुमे उत्तम श्रेणीसे हिन्दी मिडील तो उत्तीर्ण कर लिया परन्तु दो भाइयोका असामयिक स्वर्गवास और साधनोका अभाव आगामी अध्ययनमे बाधक हो गया ।

गृहस्थ जीवन -

बाल-जीवनके बाद युवक जीवन प्रारम्भ हुआ, विद्यार्थी जीवनके बाद गृहस्थ जीवनमे पदार्पण किया । (स १९४९) १८ वर्षकी आयुमे मलहरा ग्रामकी एक सत्कुलीन कन्या इनकी जीवनसगिनी बनी ।

विवाहके बाद ही पिताजीका सदाके लिये साथ छूट गया । लेकिन पिताजीका अन्तिम उपदेश - "बेटा! **जीवनमें यदि सुख चाहते हो तो पवित्र जैनधर्मको न भूलना**" सदाके लिए रह गया । परिजन दु:खी थे, आत्मा विकल थी, परन्तु गृह भारका प्रश्न सामने था, अत: (स १९४९) मदनपुर, कारीटोरन और जतारा आदि स्कूलोंमें मास्टरी की ।

पढ़ना और पढाना इनके जीवनका लक्ष्य हो चुका था, अगाध ज्ञानसागरकी थाह लेना चाहते थे, अत मास्टरीको छोड पुन प्रच्छन्न विद्यार्थीके वेषमें, यत्र-तत्र-सर्वत्र साधनोकी साधना में, ज्ञान जल कणोंकी खोज मे, नीर पिपासु चातककी तरह चल पडे ।

स १९५० के दिन थे, सौभाग्य साथ था, अत सिमरामे एक भद्र महिला विदुषीरत्न श्री सि चिरौंजाबाई जी से भेट हो गयी । देखते ही उनके स्तनसे दुग्धधारा वह निकली, भवान्तर का मातृ-प्रेम उमड़ पडा । बाईजीने स्पष्ट शब्दोंमें कहा - "भैया! चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं । तुम हमारे धर्मपुत्र हुए ।" पुलकित वदन, हृदय नाच उठा, बचपनमे माँ की गोदी का भूला हुआ स्वर्गीय सुख अनायास प्राप्त हो गया । एक दरिद्रको चिन्तामणि रत्न निरुपायको उपाय और असहायको सहारा मिल गया ।

सहनशीलताके प्राङ्गण में -

बाईजी स्वय शिक्षित थीं, मातृधर्म और कर्तव्य-पालन उन्हें याद था, अत प्रेरणा की - "भैया! जयपुर जाकर पढो ।" मातृआज्ञा शिरोधार्य की ।

(१) जयपुरके लिये प्रस्थान किया, परन्तु जब जयपुर जाते समय लश्करकी धर्मशालामें सारा सामान चोरी चला गया केवल पाँच आने शेष रह गये तब छ: आनेमें छतरी बेच कर एक-एक पैसेके चने चबाते हुए दिन काटते बरुआसागर आये । एक दिन रोटी बनाकर खानेका विचार किया, परन्तु वर्तन एक भी पास न था, अत: पत्थर पर आटा गूँथा और कच्ची रोटीमें भीगी दाल बन्द कर ऊपरसे पलासके पत्ते लपेट कर उसे मध्यम आँचमे तोप कर जब दाल तैयार हुई तब कहीं भोजन पा सके, परन्तु अपने अशुभोदय पर उन्हे दु ख नहीं हुआ । आपत्तियोंको उन्होंने अपनी परख-कसौटी समझा ।

(२) खुरई जब पहुँचे तब प पन्नालालजी न्यायदिवाकरसे पूछा - "पडितजी ! धर्मका मर्म बताइये ।" उन्होने सहसा झिडक कर कहा - "तुम क्या धर्म समझोगे, खाने और मौज उडाने को जैन हुए हो ।" इस वचन-वाणको भी इन्होने हँसते-हँसते सहा । हृदयकी इसी चोट को इन्होने भविष्यमे अपने लक्ष्य-साधन (विद्वत्‌रत्न बनने) में प्रधान कारण बनाया ।

(३) गिरनारके मार्ग पर बढ़े जा रहे थे । बुखार, तिजारी और खाजने खबर ली, पासके पैसे खत्म हो चुके थे, विवश होकर बैतूलकी सडक पर काम करनेवाले मजदूरोमे सम्मिलित हुए । एक टोकरी मिट्टी खोदी कि हाथोमे छाले पड गये । मिट्टी खोदनी छोड कर मिट्टीकी टोकरी ढोना स्वीकार किया लेकिन वह भी न कर सके, इसलिये दिनभरकी मजदूरी के न तीन आने मिल सके, न नौ पैसे ही नसीब हो सके । कृश शरीर २० मील पैदल चलते, दो पैसेका बाजरेका आटा लेते, दाल देखनेको भी न थी, केवल नमककी डली और दो घूँट पानी ही उन मोटी-मोटी रूखी-सूखी रोटियोंके साथ मिलता था फिर भी सन्तोषकी साँस लेते अपने पथ पर आगे बढे ।

(४) धर्मपत्नीके वियोगमे दुनिया दु खी और पागल हो जाती है, परन्तु भरी जवानीमे भी इनकी धर्मपत्नीका (स १९५३) मे स्वर्गवास हो जानेसे इन्हे जरा भी खेद नही हुआ ।

(५) सामाजिक क्षेत्र मे भी लोगोने इन पर अनेक आपत्तियाँ ढाह कर इनकी परीक्षा की, परन्तु वे निश्चल रहे, अडिग रहे, कर्तव्यपथ पर सदा दृढ रहे, विद्रोहियोको परास्त होना पडा ।

इनका सिद्धान्त है - "**मूर्ति अगणित टॉकियोसे टॉके जाने पर पूज्य होती है, आपत्ति और जीवन-संघर्षोंसे टक्कर लेने पर ही मनुष्य महात्मा बनते हैं ।**" इसलिये इन सब आपत्तियो और विरोधोको अपना उन्नति-साधक समझ कर कभी क्षुब्ध नहीं हुए, सदा अपनी सहनशीलताका परिचय दिया ।

सफलताके साथी -

कर्त्तव्यशील व्यक्ति कभी अपने जीवनमे असफल नही होते, अनेक आपत्तियो और कष्टोको सहन कर भी वे अपने लक्ष्यको सफल कर ही विश्रान्ति लेते हैं । माताकी आज्ञा और शुभाशीर्वादने इन्हे दूसरे साथीका काम दिया । फलत विद्योपार्जनके लिए स १९५२ से स १९५४ तक १-बम्बई, २-जयपुर, ३-मथुरा, ४-खुरजा, ५-

हरिपुर, ६-बनारस, ७-चकौती, ८-नवद्वीप, ९-कलकत्ता तथा पुनः बनारस जाकर न्यायाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की । विशेषता यह रही कि सदा उत्तम श्रेणीमें प्रथम (First class first) उत्तीर्ण हुए । और जहाँ कहीं भी पारितोषिक वितरण हुआ, सर्व प्रथम पारितोषिकके अधिकारी भी यही हुए ।

इस तरह क्रमश बढते-बढते अब यह साधारण विद्यार्थी या पण्डित नहीं अपितु अपनी शानी के निराले विद्वद् शिरोमणि हुए । कवि कल्पना साकार हो उठी -

जीवन आनन्द निकेतनमें, सज्ज्ञान दीप का उजयाला ।
मधुकुञ्ज देव वाणीको देख, डाली है सरस्वतीने माला ।।

बडे पण्डितजी -

विद्वत्तामें तो बडे है ही परन्तु सयमकी साधनाने तो इन्हे और भी बडा (पूज्य) बना दिया । इसलिये जिस तरह गुजरातके लोगोने गाधीजीको बापू कहना पसन्द किया, उसी तरह बुन्देलखण्डके जनसाधारणसे लेकर पण्डितगणने इन्हें बड़े पण्डितजीके नामसे पूजना पसन्द किया ।

इन्हे जितना प्रेम विद्यासे था उससे कहीं अधिक भगवद्भक्तिसे रहा है । यही कारण था कि बडे पण्डितजीने अपने विद्यार्थी जीवनमे ही स १९५२ मे गिरनारजी और स १९५९ मे श्री सम्मेदशिखरजी जैसे पवित्र तीर्थराजों के दर्शन कर अपनी भावुकभक्तिको दूसरोके लिये आदर्श और अपने लिये कल्याणका एक सन्मार्ग बनाया।

वर्णीजी -

क्रमसे किया गया अभ्यास सफलताका साधक होता है । यही कारण था कि बडे पण्डितजी क्रमसे बढते-बढते स १९७० मे वर्णी हो गये । सांसारिक विषम परिस्थितियो का गम्भीर अध्ययन करने के बाद उन्हे सभीसे सम्बन्ध तोड़नेकी प्रबल इच्छा हुई और इसमें वे सफल भी हुए । यदि ममत्व था तो उन धर्ममाता तक ही था, परन्तु स १९९३ मे बाईजीका स्वर्गवास हो जानेसे वह भी छूट गया ।

परतन्त्रता तो सदा इन्हे खटकनेवाली बात थी । एक बार स १९९३ मे जब सागरसे द्रोणगिरि जा रहे थे तब बण्डामें ड्राइवरने इन्हे फ्रन्टसीटका टिकट होने पर भी वह सीट दरोगा साहबको बैठने के लिये छोड देने को कहा । यह परतन्त्रता उन्हे सह्य

नहीं हुई, वहीं पर मोटर की सवारी का त्याग कर दिया । कुछ लोगो ने अपने यहा ही महाराजको रोक रखने के लिये सम्मति दी कि यदि आप यातायात छोड़ दें तो शान्ति लाभ हो सकता है परन्तु वर्णीजी पर इसका दूसरा ही प्रभाव पड़ा और उन्होने अपने दूसरे ही उद्देश्य से सदा के लिये रेलगाडीकी सवारीका भी त्याग कर दिया ।

स २००१ मे दशम प्रतिमा धारण की, और फाल्गुन कृष्ण सप्तमी स २००४ मे क्षुल्लक व्रत लिये । इस दृष्टिसे इन्हे, बाबाजी कहना ही उपयुक्त है परन्तु लोगोंकी अभिरुचि और प्रसिद्धिके कारण "वर्णिजी" ही कहलाते है और कहलाते रहेगे ।

बिहारके संत -

गिरिराज शिखरजीकी यात्राकी इच्छासे पैदल चले । लोगोने बहुत कुछ दलीले उपस्थित की - "महाराज ! वृद्धावस्था है, शरीर कमजोर है, ऋतु प्रतिकूल है", परन्तु हृदयकी लगन को कोई बदल न सका, अत सवारीका त्याग होते हुए भी रेशदीगिरि, द्रोणगिरि, खजुराहो आदि तीर्थस्थानो की यात्रा करते हुए कुछ ही दिन बाद ७०० मीलका लम्बा मार्ग पैदल ही तय कर स १९९३ के फाल्गुनमे शिखरजी पहुँच गये । शिखरजीकी यात्रा हुई परन्तु मनोकामना शेष थी - "भगवान् पार्श्वनाथके पादपद्मोमे ही जीवन बिताया जाय" अत ईशरीमें सन्त जीवन बिताने लगे ।

आपके प्रभावसे वहाँ जैन उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई । कल्याणार्थ उदासीन जनोको धर्मसाधन करनेका सुयोग्य साधन मिला, वर्णीजीके उपदेशामृत पानका शुभावसर मिला ।

बुन्देलखण्ड के लाल -

वर्णीजीने बुन्देलखण्ड छोडा परन्तु उसके प्रति सच्ची सहानुभूति नहीं छोडी, क्योकि बुन्देलखण्ड पर उनका जितना स्नेह और अधिकार है उतना ही बुन्देलखण्ड को भी उन पर गर्व है । बुन्देलखण्डकी उन्हे पुन चिन्ता हुई । बुन्देलखण्डको उनकी आवश्यकता हुई, क्योंकि वर्णी सूर्य के सिवा ऐसी और कोई शक्ति नहीं थी जो अज्ञान तिमिराच्छन्न बुन्देलखण्डको अपनी दिव्य ज्योतिसे चमत्कृत कर सकती । बुन्देलखण्डकी भूमिने अपने लाडले लालको पुकारा और वह चल पडा अपनी मातृभूमिकी ओर, अपने देश की ओर, अपने सर्वस्व बुन्देलखण्ड की ओर । बिहार प्रान्तीय उनके भक्तजनोको दु ख हुआ, वे नहीं चाहते थे कि वर्णीजी उन लोगोकी आँखोसे ओझल हो अत अनेक प्रार्थनाएँ कीं वहीं रुके रहनेके लिये, अनेक प्रयत्न

किये परन्तु प्रान्तके प्रति सच्ची शुभचिन्तकता और बुन्देलखण्डका सौभाग्य वर्णीजी को स २००१ के वसन्तमें बुन्देलखण्ड ले आया । अभूतपूर्व था वह दृश्य, जब वृद्ध बुन्देलखण्डने अपने डगमगाते हाथों (लहलहाती तरुशाखाओं) से अपने लाड़ले लाल वर्णीजीका स्पर्श किया ।

मौन देशभक्त वर्णीजी -

वर्णीजी जैसे धार्मिक हैं वैसे ही राष्ट्रीय भी हैं, इसलिये देश सेवाको ये मानव धर्म कहते है । स्वय देश सेवा तन-मन-धनसे करके ही लोगोंको उस पथ पर चलनेकी प्रेरणा करते हैं । यह इनकी एक बड़ी भारी विशेषता है ।

(१) सन् १९४५ (स २००२) जब नेताजी के पथानुगामी, आजाद-हिन्द सेनाके सेनानी, स्वतत्रताके पुजारी, देशभक्त सहगल, ढिल्लन, शाहनवाज अपने साथी आजाद-हिन्द सेना के साथ दिल्लीके लाल किलेमे बन्द थे तब इन बन्दी वीरोंकी सहायतार्थ जबलपुरकी भरी आम सभामे भाषण देते हुए अपनी कुल सम्पत्ति मात्र ओढने की दो चादरो मे से एक चादर समर्पित की । देशभक्त वर्णीजी की चादर तीन मिनिटमे ही तीन हजार रुपये मे नीलाम हुई ।

चादर समर्पित करते हुए वर्णीजीने अपने प्रभाविक भाषण में आत्मविश्वासके साथ भविष्यवाणी की - "अन्धेर नहीं, केवल थोडी-सी देर है । वे दिन नजदीक है जब स्वतन्त्र भारत के लाल किले पर विश्व विजयी प्यारा तिरगा फहराया जायगा, अतीत के गौरव और यशके आलोकसे लाल किला जगमगा उठेगा । जिनकी रक्षाके लिए ४० करोड मानव प्रयत्नशील है उन्हे कोई भी शक्ति फॉसीके तख्ते पर नहीं चढ़ा सकती । विश्वास रखिए, मेरी अन्तरात्मा कहती है कि आजाद हिन्द सैनिको का बाल भी बाका नहीं हो सकता ।"

आखिर पवित्र हृदय वर्णी सन्तकी भविष्यवाणी थी, आजाद हिन्द सेनाके बन्दी वीर मुक्त हो गये । सचमुच अन्धेर नहीं केवल दो वर्षकी देर हुई, सन् १९४७ के १५ अगस्तको भारत स्वतत्र हो गया । वह लालकिला अतीतके गौरव और यशके आलोकसे जगमगा उठा । लाल किले पर विश्वविजयी प्यारा तिरगा भी फहरा गया ।

दिल्लीमे जाकर देखो तो यही प्रतीत होगा जैसे लाल किले का तिरंगा देशद्रोही दुश्मनोको तर्जना दे रहा हो और यमुना का कल-कल निनाद हमारे नेताओंकी विजय-प्रशस्ति गा रहा हो ।

(२) सगठनके लिए वर्णीजी प्राणपनसे प्रयत्नशील रहते है । उनका कहना है कि ''आजका समाज अनेक कारणोसे फूटका शिकार बना हुआ है । यत्र-तत्र बिखरा हुआ है । वर्गगत, जातिगत, दलगत एव व्यक्तिगत ऐसे अनेक कारण एकत्र हुए हैं जिनके कारण सगठनकी नींव बहुत कच्ची हो चुकी है । आवश्यकता इस बातकी है कि हृदयकी ग्रन्थिको भेद कर क्षमा गुणको धारण करे, परस्परके विद्वेषवृक्षको निर्मूल कर सगठनका बीज वपन करे । इससे समाज सुधारका बहुत काम हो सकता है ।'' वर्णीजी के इन पवित्र उद्‌गारोकी सक्रियताके फलस्वरूप अनेक जगहकी जन्मजात फूट और विद्वेष शान्त होकर समाजका सगठन हुआ है ।

(३) शरणार्थी समस्या अब भी देशकी बडी विकट समस्या है । उसके हल होनेका उपाय उन्होने समाजके उदार सहयोग मे देखा और कुशल गणितज्ञकी दृष्टिसे सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए कहा कि - ''इस समय भारतवर्षमे अनेक आपत्तिया आ रही है । जिधर देखो उधर सहयोगकी आवश्यकता है । मेरी तो यह सम्मति है कि प्रत्येक कुटुम्ब उसके यहा जो दैनिक व्यय भोजन वस्त्रादिमे होता हो उसमे से १/- रु मे एक पैसा इस परोपकारमे प्रदान करे तो अनायास ही यह समस्या हल हो सकती है । अन्यकी बात छोडो यदि हमारे जैनी भाई प्रत्येक मनुष्यके पीछे आधा पैसा दान निकाले तो अनायास ही ७,००,००० पैसे एक दिन मे आ सकते है । याने एक वर्ष मे ३९,३७,५००/- आसानी से परोपकार मे लग सकता है ।'' ता ११ सितम्बर को जवाहरलाल हाल गया मे आयोजित विनोबा जयन्ती उत्सवमे भी भाषण देते हुए उन्होने इसी तथ्य पर जोर दिया था ।

(४) औद्योगिक धन्धे और खादीके विषयमे इनके विचार और कार्य एकसे रहे है । उनके ही शब्दो मे स्पष्ट है कि - ''राष्ट्रीयता स्वतन्त्र नागरिकमे तब तक नहीं आ सकती है जब तक कि वह स्वदेश और स्वदेशी वस्तुओसे प्रेम नहीं करता । घरेलू उद्योग धन्धो को प्रोत्साहन नहीं देता । यन्त्रो द्वारा लाखो मन कपास और मिलो द्वारा लाखो थान कपडा एक दिन मे बन जाता है । फल यह होता है कि करोडो मनुष्य और हजारो दुकानदार आजिविका के बिना मारे-मारे फिरते है । कपडेके मिलोमे हजारो मन चर्बी लगती है ! ये चर्बी क्या वृक्षो से आती है ? नहीं, कसाईखानोसे ! चमडा कितना लगता है इसका पारावार नहीं । पतलेसे पतला जोडा चाहिए, चाहे उसमे अण्डेका पालिस क्यो न हो । अत यदि देशका कल्याण करनेकी भावना है तो प्रतिज्ञा करो कि हम स्वदेशी वस्त्रादिका ही उपयोग करेगे ।'' वर्णीजी स्वय खद्दर पहिनते है, स्वदेशी

वस्तुओ का ही उपयोग करते है ।

(५) जब भी धर्म सम्बन्धी समस्याएँ आई, वर्णीजीने धर्मकी उदारताकी ही बात की है । उनका कहना है कि - "राजा रङ्क, धनी-गरीब, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु, ब्राह्मण या भङ्गी कोई भी क्यो न हो पेड अपनी छाया मे सभीको बैठने देते है, फूल अपनी सुगन्धि सभीको देते हैं, सूर्य अपना प्रकाश, चन्द्र अपनी चाँदनी सभीको देते है तब तुम्हे भी आवश्यक है कि अपने धर्मको सभीको दो । बिना किसी वर्गभेदके, बिना किसी वर्णभेदके और बिना किसी जातिभेदके यदि तुमने यह काम कर लिया तो समझो कि तुमने अपने धर्म का सच्चा स्वरूप समझ लिया है ।" केवल उत्तम कुलमे जन्म लेने से ही व्यक्ति उत्तम हो जाता है ऐसा कहना दुराग्रह है । उत्तम कुलकी महिमा सदाचारमे ही है कदाचारसे नहीं ।" परमार्थ दृष्टिसे विचार किया जावे तब पाप करनेसे आत्मा पापी और अस्पृश्य नहीं होता । हम लोगो ने पशुओ तकसे तो प्रेम किया, कुत्ते अपनाये, बिल्लिया अपनायी किन्तु इस मनुष्योसे इतनी घृणा की जिसका वर्णन करना हृदयमे अन्तर्व्यथा उत्पन्न करता है ।"

(६) स्त्रियोकी समस्याओ पर जितना खुल कर विचार वर्णीजी ने किया है आजतक किसी भी जैन सन्तने नहीं किया । स्त्री पर्यायकी दयनीय दशाका एक शब्द-चित्र देखिये - 'स्त्री पर्यायके अनुसार यदि कन्या हुई तो कहना ही क्या है ? उसके दु खोको पूछनेवाला ही कौन है ? जन्म समय 'कन्या' सुनते ही माँ-बाप और कुटुम्बीजन अपने ऊपर सजीव ऋण समझने लगते हैं । युवावस्था होने पर जिसके हाथ माता-पिता सौप दे, गायकी तरह चला जाना पडता है । कन्या सुन्दर हो वह कुरूप हो, कन्या सुशील और शिक्षित हो वर दु·शील और अशिक्षित हो, कन्या धन सम्पन्न और वर गरीब हो, कोई भी इस विषमता पर पूर्ण ध्यान नहीं देता । लडकीको घरका कूडा-कचडा समझ कर जितना शीघ्र हो सके घरसे बाहर करने की सोचता है । कैसा अन्याय है ?" सचमुच यह ऐसा अन्याय है जिसकी कोई शानी नहीं है । इस अन्यायको दूर करने के लिये अपने घरको स्वर्ग बनानेके लिये भी वर्णीजी ने अपनी शुभ सम्मति दी है - "हमारा कर्त्तव्य है कि स्त्रियोकी हर तरहकी उलझी हुई समस्याओको सुलझानेमे सहयोग दे जिससे वे अपने सदाचार और स्वाभिमानको सुरक्षित रखतीं हुई आदर्श बन सके । सीता, मैना सुन्दरी, कौशिल्या और त्रिशला स्त्रियाँ ही तो थीं, उनके आदर्शोंसे आज विश्वमे भारतका मस्तक उन्नत है । अपनी बेटियो, बहिनो और माताओके सामने ऐसे ही आदर्श रखिये तब अपने घरको स्वर्ग

देखनेकी कामना कीजिये ।''

(७) निर्धन किसान, गरीब मजदूर और अध्यापकोंकी सहायावस्था सभी समस्याएँ इनके सामने रही है । किसान मजदूरो की समस्याके हलके लिये विनोबा जी के भूमिदान यज्ञका समर्थन किया है । स्वय विनोबाजी के शब्दोमे - ''भूदान यज्ञके सिलसिलेमें मैं ललितपुरमे वर्णीजी से मिला था । भू-दान यज्ञकी सफलताके लिए सहानुभूति प्रगट करते हुए उन्होने कहा था कि ऐसे सन्तको छोटेसे कार्यको घूमना पडे यह दु खकी बात है ।'' यही बात गयामे विनोबा जयन्ती उत्सवमे भाषण देते हुए उन्होने कही थी कि ''भूमि किसीके दादाकी नहीं है, उसे जल्दी से जल्दी दे डालो, आवश्यकतासे अधिक जो दबाये बैठे हो दूसरोको उसका लाभ लेने दो । विनोबाजी को इस भूमिदानसे नि शल्य करो, उनसे मोक्ष का उपदेश लो ।'' अध्यापकोकी सहायताके लिये सागरमे एक चादर समर्पित की जिसकी नीलामसे आया रुपया असहाय अध्यापकोको मिला । यही सब वर्णीजी के सक्रिय कार्य है जिनसे ललितपुरमे प्रभावित होकर ७९वीं वर्णी जयन्ती सप्ताह का उदघाटन भाषण देते हुए ता ३ सितम्बर को पूज्य विनोबाजी ने काशीमें कहा था कि - ''हम एक ऐसे महापुरुष की जयन्ती मनाने के लिए एकत्रित हुए है जिन्होने समाज सेवा का कार्य किया है । वर्णीजी ने जो कार्य किया है वह बहुत अच्छा है । वे ज्ञान प्रचार चाहते हैं । जनतामे ज्ञान प्रचार हो जाने पर अन्य अच्छी बाते स्वय आ जाती है । मूल सिञ्चन करनेसे शाखाओ तक पानी स्वय ही पहुँच जाता है । वर्णीजी एक निष्काम जनसेवक है और उनके विचार सुलझे हुए है । सब धर्मोको वे समान दृष्टिसे देखते हैं और लोगो की सेवामे ही सबका पर्यवसान समझते हैं । ऐसे अनुभवियोके विचारो का जितना परिशीलन जनताको होगा, कल्याणदायी होगा ।'' वर्णीजी की मौन देशभक्तिसे प्रभावित हुए विनोबाजी की वर्णी भेट के ललितपुर और गया के दृश्य बरबस आँखो से आनन्दाश्रु प्रवाहित कर देते है ।

शेष आध्यात्मिक, राष्ट्रीय एव सामाजिक विचारो और कार्यों के दिग्दर्शन के लिये वर्णी साहित्य 'मेरी जीवन गाथा' ''वर्णी वाणी'' भाग, १, २, ३ पढिये ।

समाज-सुधारक -

वर्णीजी को समाज-सुधारकके लिये जो कुछ भी त्याग करना पडा, सदा तैयार रहे हैं । सामाजिक सुधार क्षेत्रमे अनेक बार असफल हुए, फिर भी अपने कर्तव्य पर सदा दृढ रहे है । यही कारण है कि बडगॉव आदिके निरपराध बहिष्कृत अजैन बन्धुओ

का उद्धार सफलताके साथ कर सके । वर्णीजी को जातीय-पक्षपात तो छू भी नहीं सका है । यही कारण है कि जैन-अजैन पक्षो के बीच उन्हें सम्मान मिला, पक्षोंकी दुरगी नीतियाँ, अनेक आक्षेप और समालोचनाएँ उनका कुछ भी न बिगाड सकीं । अनेक जगहकी जन्मजात फूट और विद्वेषको दूर कर बाल विवाह, वृद्ध-विवाह और अनमेल-विवाह एव मरण-भोज जैसी दुष्प्रथाओका बहिष्कार करनेका श्रीगणेश करना वर्णीजी जैसों का ही काम है । कहना होगा कि समाजकी उन्नतिमे बाधक कारणोंको दूर कर वर्णीजी ने बुन्देलखण्डमे जो समाज-सुधार किया, उसीका परिणाम है कि बुन्देलखण्डके जैन-समाजमे जैन सस्कृति जीवित रह सकी है ।

सस्था-संस्थापक -

प्रकृतिका यह नियम-सा है कि जब किसी देश या प्रान्त का पतन होना प्रारम्भ होता है तब कोई उद्धारक भी उत्पन्न हो जाता है । बुन्देलखण्डमे जब अज्ञानका साम्राज्य छा गया तब वर्णीजी जैसे विद्वदरत्न बुन्देलखण्डको प्राप्त हुए । विद्या-प्रेम तो आपका इतना प्रगाढ है कि दूसरोको ज्ञान देना वे अपने लिये ज्ञानार्जनका प्रधान साधन समझते है ।

प्रतीत होता है, वर्णीजी ज्ञान-प्रचारकके लिये ही इस ससार मे आये है । उन्होने १-श्री गणेश दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय, सागर, २-श्री गुरुदत्त दि जैन पा द्रोणगिरि, ३-श्री पार्श्वनाथ विद्यालय, बरुआसागर, ४-श्री शान्तिनाथ दि जैन पा अहार, ५-श्री पुष्पदन्त विद्यालय, शाहपुर, ६-शिक्षा मन्दिर, जबलपुर, ७-श्री गणेश गुरुकल, पटनागज, ८-द्रोणगिरि क्षेत्र गुरुकुल, बडा मलहरा (जनता हाई स्कूल बडामलहरा), ९-जैन गुरुकुल, जबलपुर, १०-ज्ञानधन दि जैन विद्यालय, इटावा आदि पाठशालाओ, विद्यालयो, शिक्षामन्दिरो और गुरुकुलों की स्थापना की । बुन्देलखण्डकी इन शिक्षा-सस्थाओ के अतिरिक्त सकल विद्याओके केन्द्र काशी मे भी जैन समाज की प्रमुख आदर्श सस्था श्री स्याद्वाद दि जैन सस्कृत महाविद्यालय की स्थापना की ।

बुन्देलखण्ड जैसे प्रान्तमे इन सस्थाओकी स्थापना देखकर तो यही कहना पडता है कि इस प्रान्तमें जो भी शिक्षा प्रचार हुआ वह सब वर्णीजी जैसे कर्मठ व्यक्तिका सफल प्रयास और सच्ची लगनका फल है । वर्णीजी के शिक्षाप्रचारसे बुन्देलखण्डका जो कायापलट हुआ वह इसीसे जाना जा सकता है कि आज से ५० वर्ष पूर्व जिस बुन्देलखण्डमे तत्त्वार्थसूत्र और सहस्रनाम जैसे सस्कृतके साधारण ग्रन्थ मूलमात्र पढ

लेनेवाले महाशय पण्डित कहलाते थे उसी बुन्देलखण्डका आज यह आदर्श है कि जैन समाजके लब्धप्रतिष्ठ विद्वानोमे ८० प्रतिशत विद्वान् बुन्देलखण्ड के ही हैं ।

कहना होगा कि बुन्देलखण्डकी धार्मिक जागृतिके कारण सोते हुए बुन्देलखण्डके कानो मे शिक्षा एव जागृति का मन्त्र फूकनेवाले और बुन्देलखण्ड के सद्गृहस्थोचित आचार-विचार के सरक्षक यदि कोई है तो वे एकमात्र वर्णीजी ही हैं ।

साहित्य उद्धारक -

मेरे मन मे निरतर यह भावना बहुत कालसे रहती है कि प्राचीन जैन साहित्यका सग्रह किया जावे । उसके लिए ४ विद्वानो को रखा जावे, उनको नि शल्य कर दिया जावे - कोई चिन्ता उन्हे न रहे । वर्तमान मे उन्हे २५०/- मासिक कुटुम्ब व्यय को दिया जावे तथा उनके भोजनकी व्यवस्था पृथक् हो । वे दिन मे स्वेच्छापूर्वक कार्य करे। रात्रिमे आपसमे जो कार्य दिनमे करे उसपर ऊहापोह करे । यह कार्य १० वर्ष तक निर्बध चले । इसके बाद प्रत्येक विद्वानो को १०,०००/- - १०,०००/- रुपये दिये जावे । अथवा १ वर्ष २ वर्ष आदि तक यदि कार्य करके पृथक् होवे तब उतने ही हजार रुपये दिये जावे ।

"इसके बाद जो वे चाहे तब फिर वे अन्य विद्वानो को यह कला सिखला देवे । व्यवस्था जैसी बन जावे समय बतावेगा । इसके खर्च के लिये ४०,०००/- तो ४ विद्वानो को अन्त मे देना तथा १,०००/- मासिक भेट, २५०/- भोजन व्यय व २५०/- लेखक आदि के लिए इस तरह कुल १५००/- एक माह का दश वर्ष का २,२०,०००/- । इतने मे यह प्राचीन जैन साहित्य का उद्धारका कार्य हो सकता है । यदि सागर प्रान्त यह चाहता तो सहज मे हो सकता था, कोई कठिन बात न थी । वहाँ ऐसे कई महानुभाव है कि एक वर्ष मे ही यह योजना सफल हो जाती । परन्तु हम स्वय इतने कायर रहे कि अपने अभिप्रायको पूर्ण न कर सके । अब पश्चाताप से क्या लाभ ?

"अब तो वृद्ध हो गये - चलने मे असमर्थ, बोलनेमे असमर्थ, लिखनेमे असमर्थ पर यह सब होने पर भी भावना वही है जो पूर्वमे थी । अब तो पार्श्व प्रभुके पाद पद्मोमे आ गये है, क्या होगी वही जाने ? यदि किसीके मनमे आवे तो इस कार्य को बनारस ही मे प्रारम्भ करे । अब जन्मान्तर मे इस योजना को सफल देखूँगा, भाव मेरा था सो व्यक्त कर दिया ।"

पूज्य वर्णीजी के हृदयमे लगी जैन साहित्य के उद्धार की प्रशस्त योजना के सक्रिय होने से जैन समाज को वह ज्योति स्तम्भ प्राप्त होगा जिसके दिव्य प्रकाशमें जन आत्म-निरीक्षण कर अपना कल्याण कर सकेगे ।

मानवता की मूर्ति -

वर्णीजी के जीवनमे सरलता और भावुकताने जो स्थान पाया है वह शायद ही औरो मे देखने को मिले । किसीके हृदय को दु ख पहुँचाना उनकी प्रकृतिके प्रतिकूल है । यही कारण है कि अनेक व्यक्ति उन्हे आसानीसे ठग लेते है । कड़े शब्दो और व्यग्यात्मक भाषाका प्रयोग कर दूसरोको कष्ट पहुँचाना उन्होने कभी नहीं सीखा । हितकी बात आसानीसे मधुर शब्दमय सरल भाषामे कह कर मानना न मानना उसके ऊपर छोडकर अपने समयका सच्चा सदुपयोग ही उन्हे प्रिय है ।

आपत्तियोसे टक्कर लेना, विपत्तिमें धर्म न छोड़ना, दूसरोका दु ख दूर करनेके लिए असहायोको सहायता, अज्ञानियोको ज्ञान और शिक्षार्थियोको सब कुछ देना इनके जीवनका व्रत है ।

दाव-पेचकी बातोमे जहाँ वर्णीजी मे बालको जैसा भोलापन है वहीं सुधार कार्योमे युवको जैसी सजीव क्रान्ति और वयोवृद्धों जैसा अनुभव भी है । संक्षेपमे वर्णीजी मानवताकी मूर्ति है, अत उसीका सन्देश देना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा है।

आज ऐसे महामना सन्त की ८२वीं जयन्ती मनाने का सौभाग्य बिहार प्रान्त की उदारचेता जैन समाज को प्राप्त हुआ है इसमे मै उसके सातिशय पुण्य को ही कारण मानता हूँ ।

मेरी अन्तरात्माकी पुकार है कि श्री वर्णीजी चिरायु हो, मानवताका सन्देश लिये कल्याण पथ प्रदर्शन करते रहे ।

पूज्य वर्णीजी की जय ।

जन्म - आश्विन कृ ४ वि स १९३१

मृत्यु - भाद्रपद कृ ११-२०१८ स

विनीत-

विद्यार्थी नरेन्द्र

जैन जातिभूषण श्री सिंघई कुन्दनलालजी

(सिघई कुन्दनलालजी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति है । आपका हृदय दयासे सदा परिपूर्ण रहता है । जब तक आप सामने आये हुए दु खी मनुष्यको शक्त्यानुसार कुछ दे न ले तब तक आपको सन्तोष नहीं होता । न जाने आपने कितने दु खी परिवारो को धन देकर, अन्न देकर, वस्त्र देकर, और पूँजी देकर सुखी बनाया है । आप कितने ही अनाथ छोटे-छोटे बालको को जहाँ कहींसे ले आते है और अपने खर्चसे पाठशालामे पढाकर उन्हे सिलसिलेसे लगा देते है । आप प्रतिदिन पूजन स्वाध्याय करते है, अतिशय भद्रपरिणामी है, प्रारम्भसे ही पाठशालाके सभापति होते आ रहे है और आपका वरद हस्त सदा पाठशालाके ऊपर रहता है)

''पूज्य श्री वर्णीजी''

भारतके महामना आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी महाराजने अपनी जीवनगाथा (पृ ३४८) मे सागरके नररत्न जैन जातिभूषण श्री सिघई कुन्दनलालजीका जो परिचय दिया है उसकी चार पक्तियॉ प्रारम्भमे उल्लेखकर सिघईजीका एक दिव्य और भव्य चित्र हमने पाठकोके समक्ष प्रस्तुत किया है । पाठकोकी जिज्ञासा बढना स्वाभाविक है, अत विस्तृत जानकारी भी आगे दे रहा हूँ ।

जन्म समय और सम्वत्

यह बता देना आवश्यक है कि पूज्य श्री वर्णीजी सिघईजीसे बडे भैया कहते है । उसका कारण केवल यही है कि वर्णीजीसे सिघई जी ३ वर्ष बडे है । वर्णीजीने उस समयका उल्लेख करते हुए लिखा है - ''वह समय ही ऐसा था जो आजकी अपेक्षा बहुत ही अल्प द्रव्यमे कुटुम्बका भरण पोषण हो जाता था । उस समय एक रुपयामे एक मनसे अधिक गेहूँ, तीन सेर घी और आठ सेर तिलका तैल मिलता था । शेष वस्तुएँ इसी अनुपातसे मिलती थीं । सब लोग कपडा प्राय घरके सूतका पहिनते थे । सबके घर चरखा चलता था । खाने के लिए घी दूध भरपूर मिलता था । जैसा कि आज कल देखा जाता है उस समय क्षय रोगियोका अभाव था । उस समय मनुष्योके शरीर सुदृढ और बलिष्ठ होते थे । वे अत्यन्त सरल प्रकृतिके होते थे । अनाचार नही के बराबर था । घर-घर गाय रहती थी । दूध और दहीकी नदियॉ बहती थी । देहातमे दूध और दहीकी विक्री नही होती थी । तीर्थयात्रा सब पैदल करते थे । लोग प्रसन्नचित्त

दिखाई देते थे । वर्षा कालमे लोग प्राय घर ही रहते थे । वे इतने दिनोंका सामान अपने अपने घर ही रख लेते थे । व्यापारी लोग बैलोंका लादना बन्द कर देते थे । यह समय ही ऐसा था जो इस समय सबको आश्चर्यमे डाल देता है ।''

हॉ, तो इसी सुख-समृद्धि और शान्तिके समय विक्रम स १९२८ के ज्येष्ठ कृष्ण ९ शनिवारको श्री सिघईजीका जन्म हुआ । आपके पिता श्री सिघई कारेलालजी और माता श्री सिघैन उद्योतीबाईजी सागरके जैन गृहस्थ परिवारोमें साधारण परिस्थिति के होते हुए भी अपनी धार्मिकता, सच्चरित्रता एव परोपकारी प्रवृत्तिके कारण आदर्श गृहस्थ माने जाते थे ।
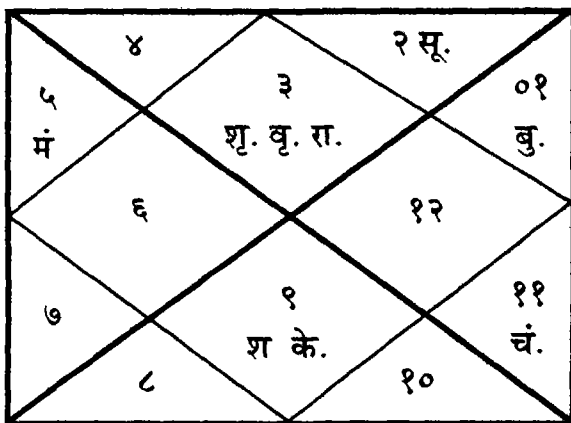
सिघईजीका यह जन्मकुण्डलीचक्र उनके समस्त जीवनके सुख-दुःखकी मूक कहानीका बोलता हुआ चित्र है । इसका स्पष्ट कथन बहुतोको खटक सकता है, अत ज्योतिषियोके लिए ही इसे छोडता हूँ । कहनेका तात्पर्य यह कि सिघईजीके जीवनमें अनेक ऐसी घटनाएँ हैं जिनसे उनके बहुतसे सम्बन्धियोको उनका स्पष्ट होना रुचिकर न होगा । अत हम केवल यही कहना चाहते है कि उन सब आपत्तियो विपत्तियोके सागरको पार करता हुआ सागरका यह मनस्वी मानव मानवताके हृदयसागरके बीच टापूपर जा पहुँचा जहॉसे उसने आपत्तियोके भ्रममें फॅसनेवाले अनेक लोगोको हस्तावलम्बन देकर सुखके मार्ग पर पहुँचाया ।

सिघईजी अपने ५ छोटे भाइयो और १ बहिनके बीच सबसे बड़े थे ।

अपनी रामकहानी

ता २० जुलाई ५७, आकाश मेघाछन्न थे, बादलोंकी गडगडाहट, पानी जोरोंसे आ गया । सिघईजी अपने विश्रान्तिगृहमे आग तापते बैठे थे । उनकी स्पष्ट मधुर वाणीमें णमोकार मन्त्र सुनाई पड रहा था । सागरमे जोरोसे पडनेवाले इन्फ्लुएञ्जा तथा हैजेसे मरनेवालोकी करुण कथा सुनकर वे प्रार्थना कर रहे थे । पक्तियोंका लेखक यह न बताकर कि जीवनी प्रकाशित करना है अन्यथा वे कभी न बताते, अत साधारण जिज्ञासा सूचक प्रश्न किए और उनके स्वर्गीय इकलौते पुत्रकी अस्वस्थताकी करुण कहानीवाला प्रसङ्ग छेडा कि ऐसे ही महामारी प्लेगके समय भैयाका स्वर्गवास हुआ था कि सिघईजी रो पडे और अश्रुप्रवाहके साथ अपनी राम कहानी कहने लगे । अत उनकी कहानी उन्हींकी जवानी सुनी प्रस्तुत करता हूँ । सिघईजीने कहा -

भैया !

''छह वर्षकी उमरसे हमने पढना प्रारम्भ किया था जितनी उमरमे हमने अपने भैया (पुत्र) को पढाना प्रारम्भ किया था । उस समय काठकी पट्टीपर वर्तनासे लिखा जाता था । हमारे गुरु प मदनलालजी पासमे ही रहते थे । वे हमारे प्रारम्भिक विद्यागुरु थे । बादमे रामरतनजी मा सा से ४ कक्षा हिन्दी और १ कक्षा अग्रेजी पढी । ५-६ वर्ष तक पढा । पढना जारी ही था कि अकस्मात् तीर्थयात्राकी तैयारी हो गई । सोनागिरि, शिखरजी, गिरिनारजी आदि समस्त जैन तीर्थोकी यात्रामे ५ माह बीत गये । इस बीचमे जो पढाई बन्द हुई सो फिर पढना बन्द ही रहा । उपयोग तो है चल-विचल हुआ सो हुआ ।

आजीविकाका प्रश्न सामने आ गया अत कठरयाई किराना की दुकान की । १६ वर्षकी अवस्थामे शादी हो गई । शादीके पश्चात् घी तथा गल्लाकी दुकान की । पिताजीसे २००/- की पूँजी ली सो दूसरे ही वर्ष वापिस की । शिवकरण बलदेवकी हवेली थी उसीमे रहते थे । हवेली छोटे भाई नत्थालालको दे दो । एक मकान मझले भाई श्री रज्जीलालजीको भी बनवा दिया । परन्तु कुछ कौटुम्बिक कलह हो जानेके कारण गल्ला बाजार चले गये । वहाँ एक खण्डहर लिया और उसे ही वर्तमान मकानका रूप दिया । कौटुम्बिक कलहने किन-किन समर्थ पुरुषोको भी बरबाद नहीं किया ? हाँ तो रात्रिके १२ बजे जब भैयाको (अपने इकलौते पुत्र नन्हेलालको) लेकर गल्ला बाजार गए उस समयका दृश्य बडा ही करुण था । भैयाको लिए पीछे-पीछे उसकी माँ चल रही थी और आगे-आगे लालटेन लेकर मैं चल रहा था । काली रात्रिके सन्नाटेको भग करनेवाले चमगीदड जब कभी हमारे हाथकी लालटेनका प्रकाश देखकर चीं चीं, चूँ

चूँ, करते फिर उसी डालपर उलटे लटक जाते ससारका स्वरूप स्पष्ट होता जाता - "ससार एक बाजार है, मोह काली रात्रि है, हम लोग क्रेता विक्रेता हैं जो अपने सुकर्म दुष्कर्मका लेखा लगाते हुए और जानते हुए भी मोहकी काली रातमे ससारका बाजार करनेसे नहीं चूकते ।" सोचते हुए गल्ला बाजार पहुँच गये । कुटुम्बसे अलग होते कितना दु ख होता है यह उसी दिन अनुभव हुआ । अस्तु ।

"यह बडा बाजारका मकान भैया (अपने पुत्र) के विवाहके लिए बनवाया था।" कहते कहते सिघईजीकी आँखोसे आँसुओ की झडी लग गई । रुद्ध कण्ठसे उन्होने कुछ देर बाद पुन कहना प्रारम्भ किया -

"भैया गौरवर्ण थे, धार्मिक प्रकृति थी, निरभिमानी थे, देखकर सन्तोष होता था- वह स्वस्थ सन्तुष्ट बालक जैनधर्मकी सेवा करता हुआ हमारी कुल परम्पराकी अक्षुण्ण रखेगा । परन्तु भैया ! भावना कब किसकी पूर्ण हुई ? कौन शाश्वत रह सका ?

कहॉ गये चक्री जिन जीता भरतखण्ड सारा ।
कहाँ गये वे राम लक्ष्मण जिन रावण मारा ।।

तब हम ससारियोकी क्या गिनती ? सेठ मोहनलाल बजाज की लडकीके साथ उसका सम्बन्ध तय हुआ था । एक माह ही शेष था । दोनों ओर विवाहकी तैयारियाँ हो रही थीं । सागरमे प्लेगका तूफान आया, लोग शहर छोडकर भाग गये । विवाहकी तैयारियॉ दोनों ओर बन्द हो गई । भैया भी अपने आजा-आजीसे पास मनेसिया गॉव चले गये । परन्तु कुछ दिनो पश्चात् भैयाके मामा श्री कुन्दनलालजी घीवाले बीना बारहाके दर्शन कराने ले आये । वहॉसे जैसे ही लौटा सो प्लेगमे फॅस गया । और प्लेगमें फॅसा सो ऐसा कि हम जीभर दवा भी न कर पाये । प्लेगमे पानी माँगा सो लोगोने मना कर दिया । प्लेगमे पानी नहीं दिया जाता, दो बूँद पानीके लिए पपीहरेकी तरह तडप तडप कर प्राण त्या ग दि ये ।

"मणि .... मन्त्र .. तन्त्र व . हु . .. हो.. ..ई
मरते ... न.... ब. . चा.... वे. . कोई ।"

लडखडाती बोलीमे इतना कहनेके पश्चात् सिघईजी फिर फूट-फूटकर रो पडे और उनकी कहानी उन्हींकी जबानी सुनना बन्द हो गया ।

उदारताकी मूर्ति -

सिघईजी वैसे ही धार्मिक प्रकृतिके व्यक्ति होनेके कारण अत्यन्त दयालु और

उदार पहिलेसे ही थे, उनके इकलौते पुत्र वियोगने करुणाके प्रवाहको और भी वेगवान् बना दिया । ऐसा कोई दयाका काम नहीं जिसमे भाग लेनेवाले दानियो मे सिघईजी आगे न रहते हों । अज्ञात दान तो न जाने कितने बार दिया है । रातको दुकानसे चले एक हाथमे लालटेन और कधे पर कपडोका गट्ठा । ठडमे जो दीन-दु खी सडक किनारे पेडकी छायामे ठिठुरा पडा दिखाई दिया - रजाई, कम्बल, चद्दर जो जैसा दिखा, चुपचाप उढा दिया और घर वापिस आ गये । पानेवाले गरीब जानते थे रात्रिमे भगवान् आ गये और कपडे बाट गये । बेचारोको क्या पता कि जहा प्रेम, उदारता, दयालुता और निर्लोभता आदि गुण होते है वही भगवान् है ।

शिक्षा प्रेमी-

शिक्षा-प्रेम तो इतना विशाल है कि द्रोणागिरि और सागरमे चलनेवाले दो ज्ञान कल्पतरुओ के सरक्षणका प्रमुख भार आज भी आपके ऊपर निर्भर है ।

अनेक छात्रोको छात्रवृत्ति, कपडे आदि देते है । आपकी ओरसे ५ विद्यार्थी सदा जैन विद्यालय सागरमे प्रविष्ट किये जाते है जिनका खर्च आप स्वय वहन करते है।

द्रोणागिरि तथा सागर विद्यालयके सस्थापनमे आपके योग दानका उल्लेख पूज्य श्री वर्णीजीने इस प्रकार किया है-

"मै जब पपौराके परवारसभाके अधिवेशनमे गया तब द्रोणगिरिनिवासी एक बाईने मुझसे कहा कि - "वर्णीजी ! द्रोणगिरिमे पाठशालाकी आवश्यकता है ।"

मैने कहा - "अच्छा ! जब जाऊँगा तब प्रयत्न करूँगा ।"

जब द्रोणागिरि आया तब उसका स्मरण हो आया पर इस ग्राममे क्या धरा था ? मेला भी अभी दूर था । घुवारामे जलविहार था वहाँ जानेका अवसर मिला । एकत्रित लोगोको समझाया । बडा परिश्रम करने पर पचास रुपये मासिकका ही चन्दा हो सका। घुवारासे गज गये वहाँ २५०/- रुपयेके लगभग चन्दा हुआ । पश्चात् मेलेका सुअवसर आगया । सिघई कुन्दनलालजी से भी कहा कि यह प्रान्त बहुत पिछडा हुआ है अत आप कुछ सहायता कीजिये । उन्होने १००/- रुपये वर्ष देना स्वीकृत किया । फलस्वरूप वैशाख वदि ७ स १९८५ मे पाठशालाकी स्थापना हो गई । एक वर्ष बीतनेके बाद हम लोग फिर आये । पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ । प श्री गोरेलाल जी शास्त्रीके कार्यसे प्रसन्न होकर इस वर्ष सिघईजीने बडे आनन्दसे ५०००/ देना स्वीकृत कर लिया । पाठशाला अच्छी तरहसे चलने लगी । इसमे विशेष

सहायता श्री सिघईजी की रहती है । आप प्रतिवर्ष मेलाके अवसर पर आते हैं । आप क्षेत्र कमेटीके सभापति है ।

इस प्रान्तमें आप बहुत ही धार्मिक व्यक्ति है । अनेक संस्थाओ का यथा समय सहायता करते रहते है । इस पाठशालाका नाम श्री गुरुदत्त दि जैन पाठशाला रखा गया ।''

(मेरी जीवन गाथा पृष्ठ ३५८-३६०)

वर्तमानमे इसके सुयोग्य मत्री सिघईजीके दामाद श्री बाबू बालचन्द्रजी मलैया बी एससी है । पूज्य श्रीवर्णीजीके आदेशानुसार इस पाठशालाका शाखा श्री गुरूदत्त दि जैन गुरुकुलके नामसे बडा मलहरा (छतरपुरमे) स्थापित हुई । परन्तु एक ही प्रकारकी पढाई होनेसे दोनो सस्थाओ के छात्र द्रोणगिरि पाठशालामे भेज दिये गये और मलहारके गुरुकुल भवनमे एक हाईस्कूल - ''जनता हाईस्कूल'' के नामसे स्थापित किया गया । विन्ध्यप्रदेशकी सरकारने ७५ प्रतिशत सहायता देना प्रारम्भ किया और पहले ही मेट्रिकके बैचने अद्भुत सफलता प्राप्त की । विन्ध्यप्रदेश भरमे चलनेवाले लडकोके हाईस्कूलोमे यह स्कूल सर्व प्रथम आया । लोग दग रह गये । इसका श्रेय सिघईजीके दामाद श्री मलैयाजी, जो स्कूलके अध्यक्ष है तथा उनके भतीजे श्री नाथूरामजी गोदरे जो स्कूलके मत्री है, को है । अप्रासङ्गिक होनेपर भी वहाँके प्रधान अध्यापक श्री हुकुमचन्द्रजी जैन एम ए को नहीं भुलाया जा सकता जिन्होने सस्थाको समुन्नत बनानेमे हर सम्भव प्रयत्न किया । स्कूलके लिये एक भवन १ लाख रूपये की लागतका बनाया जा रहा है ।

सागर विद्यालयके सम्बन्धमे सिघईजीके अपूर्व सहयोगका उल्लेख करते हुए वर्णीजीने लिखा है -

''अक्षय तृतीया वि स १९६५ को (सागरमें) पाठशाला खोलनेका मुहूर्त निश्चित किया गया । इसी समय श्री सिघई कुन्दनलालजीसे मेरा घनिष्ट परिचय हो गया । आप मुझे अपने भाईके समान मानने लगे, मासमे प्राय १० दिन आपके घर भोजन करना पड़ता था । एक दिन मैंने आपसे पाठशालाकी आय सम्बन्धी चर्चा की तो आपने बडी सान्त्वना देते हुए कहा कि चिन्ता मत करो हम कोशिश करेगे । आप घी और गल्लेके बडे भारी व्यापारी है । आपके प्रभावसे एक पैसा प्रति गाडी धर्मादाय गल्ले बाजारसे हो गया । इसी प्रकार आपने घीके व्यापारियोंसे भी कोशिश की जिससे फ्री मन आधा पाव घी पाठशालाको मिलने लगा । इस प्रकार हजारो रुपये

पाठशालाकी आय हो गई । इस तरह बुन्देलखण्डके केन्द्रस्थानमे श्
सत्तर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशाला का पाया कुछ ही समयमे स्थिर हो गया ।''

(मेरी जीवन गाथा पृ २१६

वर्तमानमे यह सस्था पूज्य श्री वर्णीजीके नाम पर श्री गणेश दि जैन सस्कृ
विद्यालय सागरके नामसे प्रख्यात है । सिघईजी इसके अध्यक्ष हैं । आचार्य कक्षा तव
सस्कृत विभागमे २०० विद्यार्थी अध्ययन करते हैं । इसीके उपविभाग जैन हाईस्कूल
लगभग १ हजार विद्यार्थी पढते हैं । इसकी व्यवस्था आपके दामाद श्री बालचन्द्र ज
मलैया बी एससी अध्यक्ष तथा आपही के भतीजे नाथूरामजी गोदरे मत्री पद पर रहक
करते हैं । श्री बालचन्द्रजी मलैया महोदयने वर्णीजीके पैदल यात्रा करते हुए साग
पधारनेके अवसर पर बृहत् सम्मेलनके समय ४० हजार रुपया हाईस्कूल भवनवे
निर्माण हेतु प्रदान किये है । सागरके सरोवरके किनारे यह भवन बनाया जा रहा है ।

सिघईजी इन सस्थाओं को हराभरा देखकर ऐसे ही प्रसन्न होते है जैसे को
अपने परिवारको फूलता-फलता देखकर प्रसन्न होता है ।

अत्यन्त धार्मिक व्यक्ति -

सिघईजी जैसे शिक्षाप्रेमी हैं वैसे ही धर्मनिष्ठ भी हैं । ऐसा कोई भी जैनतीर्थ नह
है जिसकी यात्रा सिघईजीने सकुटुम्ब न की हो । द्रोणागिरि क्षेत्र, बम्होरी, ईशरवार
और पचनारीके मन्दिरोका जीर्णोद्धार कार्य भी आपने कराया है । धर्मशाला, जि
चैत्यालय, मानस्तम्भका निर्माण, वेदीनिर्माण और कलशारोहण कार्य जिस शानवे
साथ सिघईजीने सम्पन्न कराये उसे आज भी लोग भूले नहीं है । इस सबका विवरए
पूज्य श्री वर्णीजीने स्वय इस प्रकार दिया है -

''एक दिन सिघईजी बाईजीके यहाँ बैठे थे । साथमे आपके सार
कुन्दनलालजी घीवाले भी थे । मैंने कहा - 'देखो सागर इतना बडा शहर है परन्तु यह
पर कोई धर्मशाला नहीं है ।' उन्होने कहा - 'हो जावेगी ।'

दूसरे ही दिन कुन्दनलालजी घीवालोने कटराके नुक्कड पर बैरिस्ट
बिहारीलालजी रायके सामने एक मकान ३४००/- में ले लिया और इतना ही रुपय
उसके बनानेमे लगा दिया । आज कल वह २५०००/- की लागतकी है औ
सिघईजीकी धर्मशालाके नामसे प्रसिद्ध है । हम उसी मकानमे रहने लगे ।

एक दिन मैने सिघईजीसे कहा कि यह सब तो ठीक हुआ परन्तु आपके मन्दिरा
सरस्वती भवनके लिये एक मकान जुदा होना चाहिए । आपने तीन मासके अन्दर ह

सरस्वती भवनके नामसे एक मकान बनवा दिया जिसमें ४०० आदमी आनन्दसे शास्त्र प्रवचन सुन सकते हैं । महिलाओं और पुरुषोके बैठनेके लिए पृथक् पृथक् स्थान हैं ।

एक दिन सिघईजी पाठशालामे आये, मैंने कहा यहाँ और तो सब सुभीता है परन्तु सरस्वती भवन नहीं है । विद्यालयकी शोभा सरस्वतीमन्दिरके बिना नहीं । कहनेकी देर थी कि आपने मोराजीके उत्तरकी श्रेणीमें एक विशाल सरस्वती भवन बनवा दिया ।

सरस्वती भवनका उदघाटन समारोहके साथ होना चाहिये और इसके लिए जयधवला तथा धवल ग्रथराज आना चाहिये ' आपसे मैंने कहा ।

यहाँ कहॉ मिल सकेगे ? आपने कहा ।'

'सीताराम शास्त्री सहारनपुरमे हैं । उनसे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है । उनके पास दोनो ही ग्रन्थराज हैं परन्तु २०००/- लिखाईके माँगते हैं' मैंने कहा ।

'मॅगा लीजिए' .. आपने प्रसन्नतासे उत्तर दिया ।

''मैने दोनो ग्रन्थराज मगा लिये । जब शास्त्रीजी ग्रन्थ लेकर आये तब उन्हे २०००/- के अतिरिक्त सुसज्जित वस्त्र और विदाई देकर विदा किया । सरस्वतीभवनके उद्घाटनका मुहूर्त आया । किसीने आपकी धर्मपत्नीसे कह दिया कि आप सरस्वतीभवनमे प्रतिमा जी पधरा दो जिससे निरन्तर पूजा होती रहेगी । सरस्वती भवनसे क्या होगा ? उससे तो केवल पढे लिखे लोग ही लाभ उठा सकेंगे । सिघैनजीके मनमे बात जम गयी, फिर क्या था ? पत्रिका छप गई कि अमुक तिथिमे सरस्वतीभवनमे प्रतिमाजी विराजमान होगी ।

यह सब देखकर मुझे मनमे बहुत व्यग्रता हुई । मेरा कहना था कि मोराजीमे एक चैत्यालय तो है ही अब दूसरेकी आवश्यकता क्या है ? पर सुननेवाला कौन था ? मै मन ही मन व्यग्र होता रहा ।

एक दिन सिघईजीने निमन्त्रण किया । मैंने मनमे ठान ली कि चूँकि सिघईजी हमारा कहना नहीं मान रहे है अत उनके यहॉ भोजनके लिए नहीं जाऊँगा । जब यह बात बाईजीने सुनी तब हमसे बोली -

'भैया ! कल सिघईजीके यहॉ निमन्त्रण है ।'

मैने कहा - 'हॉ, है तो परन्तु मेरा विचार जानेका नहीं है ।'

बाईजीने कहा - 'क्यो नहीं जानेका है ?'

मैंने कहा - 'वे सरस्वतीभवनमें प्रतिमाजी स्थापित करना चाहते हैं ।'

बाईजीने कहा - 'बस यही, पर इसमें तुम्हारी क्या क्षति हुई ? मान लो, यदि तुम भोजनके लिए न गये और उस कारण सिघईजी तुमसे अप्रसन्न हो गये तो उनके द्वारा पाठशालाको जो सहायता मिलती है वह मिलती रहेगी क्या ?'

हमारा उत्तर सुनकर बाईजीने कहा कि 'तुम अत्यन्त नादान हो । तुमने कहा हमारा क्या जायगा ? अरे मूर्ख तेरा तो सर्वस्व चला जायगा । आज पाठशालामे ६००/- मासिकसे अधिक व्यय है, यह कहाँसे आता है । इन्हीं लोगो की बदौलत तो आता है । अत भूलकर भी न कहना सिघईजीके यहाँ भोजनके लिये नही जाऊँगा ।'

मैंने बाईजीकी आज्ञाका पालन किया ।

सरस्वतीभवनके उद्घाटनके पहिले दिन प्रतिमाजी विराजमान करनेका मुहूर्त हो गया । दूसरे दिन सरस्वती भवनके उद्घाटनका अवसर आया । मैने दो आलमारी पुस्तके सरस्वती भवनके लिए भेट की । प्राय उनमे हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत थे ।

अन्तमे मैने कहा कि 'उद्घाटन तो हो गया परन्तु इसकी रक्षाके दिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है ।' सिघईजीने २५०१/- प्रदान किये । अब मैंने आपकी धर्मपत्नीसे कहा कि 'यह द्रव्य बहुत स्वल्प है अत आपके द्वारा भी कुछ होना चाहिए ।' आप सुनकर हँस गई । मैने प्रगट कर दिया कि '२५०१/- सिघैनजीका लिखो ।' इस प्रकार ५००२/- भवनकी रक्षाके लिये हो गये ।

यह सरस्वतीभवन सुन्दर रूपसे चलता है लगभग ५०००/- पुस्तके होगी ।''
(मेरी जीवनगाथा पृ ३४८-३५८)

स्मरण रहे यह सरस्वतीभवन सिघईजीने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती सिघैन दुर्गाबाईजीके नामसे अपने स्वर्गीय पुत्र श्री नन्हेलालजीकी पुण्यस्मृतिमे बनवाया है । मन्दिरका कलशारोहण उत्सव लोग अब भी स्मरण करते है । उत्सवके महीनों बाद भी आनेवाले साधर्मी भाइयोका कलशारोहणके निमित्तसे भोजन होता रहा । अजैन गाड़ीवाले बन्धु भी सत्कृत हुए । उनके बच्चोको भी सिघई जी मिठाई भेजते रहे ।

मानस्तम्भका निर्माण

वर्णीजीने लिखा है - ''कुछ दिन हुए सागरमे हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन प्रारम्भ हो गया । मैने सिघई जीसे कहा - आप एक मानस्तम्भ बनवा दो उसमे ऊपर चार मूर्तियाँ स्थापित होगी, हर कोई अन्दरसे दर्शन कर सकेगा । सिघई जीके उदार

हृदयमें यह बात आगई । दूसरे ही दिनसे मानस्तम्भका कार्य प्रारम्भ हो गया और ३ मासमे बनकर तैयार हो गया । प मोतीलालजी वर्णी द्वारा समारोहसे प्रतिष्ठा हुई । उत्तुङ्ग मानस्तम्भको देखकर समवशरणके दृश्यकी याद आ जाती है । सागरमें प्रतिवर्ष महावीर जयन्तीके दिन विधिपूर्वक मानस्तम्भ और तत्रस्थ प्रतिमाओंका अभिषेक होता है जिसमे समस्त जैन नर-नारियोका जमाव होता है ।''

(मेरी जीवनगाथा पृ ३५२)

वेदी-निर्माण

पूज्य वर्णी जीके अनन्य भक्त होने के कारण उनकी कोई भी आज्ञा सिघईजी टालते नहीं है । जैसे उनसे बडे हो सिघईजी ऐसा ही मानते हैं । सागरमे सरस्वतीभवन और मानस्तम्भकी तरह द्रोणगिरिके मन्दिर जिसमे देशी पाषाणकी सुन्दर वेदीका निर्माण भी पूज्य वर्णीजीके उपदेशसे हुआ है । ५-५ हजारकी रकम सिघई जीके नामसे उनसे बिना पूछे ही वर्णी जी लिखा देते है । सिघई जी कभी न नहीं करते । बाईजीके अन्त समय कहे गये अपने वचनका अब भी पालन करते हैं । उसका कारण यह है कि सिघईजी और वर्णीजीका सम्बन्ध ही ऐसा हो गया है । दोनो भाई भाईकी तरह है । अन्तर केवल इतना है दोनो के मार्ग पृथक-पृथक हैं । एक वीतराग मार्ग पर दूसरा गृहस्थ मार्ग पर । गृहस्थ मार्ग होने पर भी सिघईजी त्याग मार्गमें ही श्रद्धा और सदा उस मार्गकी ओर उन्मुख होनेका प्रयत्न करते है । वर्णी जी सदा अपने आध्यात्मिक पत्रो द्वारा सिघई जीको उपदेश देते रहते हैं । सिंघईजीकी धर्मपत्नी श्रीमती सिघैन दुर्गाबाईजी भी उनके धार्मिक कार्योंमें सतत सहयोग देती हैं । स्वय धर्ममे दृढ श्रद्धावान् है । सदा उदारता पूर्वक दान देती रहती है ।

सागरके स्वाध्याय मण्डलमे सिघई जी प्रति दिन सम्मिलित होते है । श्रीमान् प ताराचन्द्र जी सर्राफ बीचके मन्दिरमें प्रवचन करते है । सिघईजी आपकी प्रवचनशैलीसे बहुत प्रभावित होकर वहीं शास्त्र सुनने जाते है । कभी बिना दर्शन किये भोजन नही करते । अस्वस्थ अवस्थामे भी जब तक पार्श्वनाथ स्वामीके रजत चित्रके दर्शन न कर ले, स्वाध्याय न सुन ले और सामायिक न कर ले तब तक दवा भी नहीं लेते ।

पारिवारिक जीवन

आपके दो भाई और है । एक श्री रज्जीलाल जी जिन्होने सदासे देशकी मौन सेवा की है । अपनी सेवाओ का प्रचार वे नहीं चाहते । सागरमे ऐसे बहुत कम लोग है

जो इस प्रचारकी दुनियाँसे परे रहनेवाले इस राजनैतिक व्यक्तिको नहीं जानते । सागरका सन् १९४२ का आन्दोलन लेखकने देखा है, सिघई रज्जीलाल जीके कार्योंको भी देखा है । जब आश्चर्य किया तब लोगो ने कहा यह उनका पुराना व्रत है । तुम नये हो इस लिये आश्चर्य करते हो । बात सही थी तब मै नया ही था ।

आपके दो पुत्र है एक श्री डा बाबूलाल जी । सुलझे विचार, जनसेवी और योजना मस्तिष्कके व्यक्ति । दूसरे श्री लक्ष्मीचन्द्र जी - अच्छे व्यापारी और अच्छे ही किसानकलाकोविद ।

सिघई जीके दूसरे भाई हैं श्री नाथूराम जी । अच्छे कुशल व्यापारी और धर्मात्मा । आपका बनवाया हुआ १० हजार रुपये का चॉदीका विमान सागरमे बेजोड है । आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सिघैन चम्पाबाई जी विदुषी एव धार्मिक प्रकृतिकी उत्साही महिला है । सागरके महिला समाजकी शिरोमणि मानी जाती है । आपका भजन सगीत सुनकर मन्दिरमे सन्नाटा छा जाता है । आपके एक सुपुत्र है श्री जैनेन्द्रकुमार जी बहुत ही सज्जन और कुशल व्यापारी ।

सिघई जी की दो पुत्रियाँ है । एक श्रीमती सौ गुलाबबाईजी जो सागरके प्रतिष्ठित धार्मिक एव कुशल व्यापारी श्रीमान् बाबू बालचन्द्र जी मलैयाके घरकी शोभा हैं । धन का सौभाग्य जैसा श्रीगुलाबबाई जी को मिला है वैसा और बहुत ही कम लोगों को देखनेमे आता है । परन्तु श्री बहिन गुलाबबाईजी अपनी धार्मिकताको ही सच्चा धन मानती है । इन्हे अपने लौकिक धनका जरा भी अभिमान नही है । सचमुचमे गुलाबबाई जी मलैया कुलकी कुललक्ष्मी हैं । आपके ५ पुत्र और २ पुत्रियॉ हैं । सभी सरस्वती मन्दिरमे सरस्वतीकी साधनामे सलग्न है । विनयी, सदाचारी और नीतिकुशल है । इनके वयस्क होने पर साग समाजकी शोभा बढेगी ।

श्रीमान् बाबू बालचन्द्र जी मलैया - सिघई जीके बडे दामादके सम्बन्धमे क्या कहा जाय, सस्थाओं के सचालनमे जो सहायता आप करते है उसका उल्लेख हम कर चुके हैं । जैन हाईस्कूल सागर और जनता हाईस्कूल बडा मलहराके अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहते हुए आप समाजकी शिक्षासबन्धी कमीको पूर्ण कर रहे है । द्रोणगिरि क्षेत्र की सम्हालका पूर्ण उत्तरदायित्व आप ही सम्हाल रहे हैं । अपने सागर, सतना और दमोहके तीनो आइलमिल्सके मालिक है । इतनी बडी विभूति पाकर भी अत्यन्त नम्र और आश्चर्य यह कि सुलझे विचारोके नितान्त धार्मिक पुरुष है । लक्ष्मी और सरस्वती दोनोकी कृपा एक साथ देखनी हो तो मलैयाजीके घरानेमे देखले । अनेक

छात्रोको छात्रवृत्ति देते हैं, बेरोजगारोंको रोजगार देते हैं और भूले भटकोको सच्ची सलाह भी देते है ।

सिघईजीकी दूसरी सुपुत्री है - श्रीमती सौ बहिन ताराबाईजी । आप एक कुशल महिला है, स्पष्टवादिनी हैं और जैसी ही धार्मिक है वैसी ही दयालु हैं । सिघईजीके पास जब कभी कोई सहायता हेतु आता है उसकी सिफारिश बहिन ताराबाई उसकी करुण कथा विस्तृत करके कर देती हैं । उसकी सफलताका श्रेय भी वे नहीं चाहतीं धन्यवाद भी नहीं । यदा कदा स्वय भी सहायता कर देती हैं । आप श्री चौधरी बाबूलालजी बोरियाबालोको व्याही हैं । सिघईजीके यही दूसरे दामाद हैं । अत्यन्त धार्मिक एव कुशल व्यापारी हैं । सिघईजीको पिता तुल्य मानते हैं । आज-कल उन्हींके पास ही रहते है । आपके ४ पुत्र और दो पुत्रियॉ है । बडा सुपुत्र और सुपुत्री उच्च शिक्षा पा रहे है ।

इस तरह सिघईजीकी दोनो पुत्रियॉ सुखी है, सम्पन्न है । सिघईजीका पारिवारिक जीवन सुखद एव शान्त हैं ।

शुभकामनाएँ

सिघईजी अपने जीवनके ८५ वर्ष पूर्ण कर रहे है और जनता के समक्ष एक आदर्श गृहस्थका आदर्श उपस्थित कर चुके है ।

दुर्भाग्यवश कुछ दिनोसे अस्वस्थ्य हैं । आखिर बुढापा जो ठहरा वैसे ही इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है । परन्तु सिघईजीका धार्मिकतामें कोई शिथिलता देखनेमें नहीं आती । आज तक सिघईजीने अपने जीवनमें लगभग ढाई लाख रुपयोका दान किया है । अत वर्णीजीके शब्दोंमे ही मैं उनके प्रति शुभकामना करता हूँ ।

"इस प्रकार सिघई कुन्दनलालजीके द्वारा सतत धार्मिक कार्य होते रहते हैं । ऐसा परोपकारी जीव चिरायु हो ।"

(मेरी जीवनगाथा पृ. ३५३)

जन्म ज्येष्ठ कृ ९ - वि स १९२८

मृत्यु ३०-१०-१९६१

रक्षाबन्धन, वि स २०१४

लेखक
विद्यार्थी नरेन्द्र

परिचय व पत्रक्रम निर्देशसूची

परिचय व पत्र **पृष्ठ**

साधुवर्ग

साध्वीवर्ग

मङ्गलाचरण

य: पूजातिशयाभिमण्डितवपु: सत्कीर्तिधर्मोज्वल:
सच्चक्राम्बुजमोदक: सुमनसां प्रज्ञासुधामोदद: ।
सोऽयं जैनवृषैकरक्षणकृती जीयाद् वृषं पालयन्
श्रीविद्वद्वरपूज्यवर्यशुभगो वर्णी गणेश: सुधी: ॥

(पूज्य श्री वर्णी जी स्वय अपनी दृष्टि मे)

श्रीमान् वर्णी जी ! योग्य इच्छाकार

बहुत समयसे आपके समाचार नहीं पाये, इससे चित्तवृत्ति सदिग्ध रहती है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है । सम्भव है आप उससे कुछ उद्विग्न रहते हो और यह उद्विग्नता आपके अन्तस्तत्वकी निर्मलताके कृश करनेमे समर्थ हुई हो । यद्यपि आप सावधान हैं परन्तु जब तक इस शरीरसे ममता है तब सावधानीका भी ह्रास हो सकता है । आपने बालकपनेसे ऐसे पदार्थोका सेवन किया जो स्वादिष्ट और उत्तम थे । इसका मूल कारण यह था कि आपके पूर्व पुण्योदयसे श्री चिरौंजाबाईजी का ससर्ग हुआ । तथा श्रीयुत सर्राफ मूलचन्द्रजी का ससर्ग हुआ । जो सामग्री आप चाहते थे, इनके द्वारा आपको मिलती थी । आपने निरन्तर देहरादूनसे चावल मगाकर खाए, उन मेवादिका भक्षण किया जो अन्य हीन पुण्यवालो को दुर्लभ थे तथा उन तैलादि पदार्थोका उपयोग किया जो धनाढ्यो को ही सुलभ थे । केवल तुमने यह अति अनुचित कार्य किया किन्तु तुम्हारे आत्मामे चिरकालसे एक बात अति उत्तम थी कि तुम्हे धर्मकी दृढ श्रद्धा और हृदयमे दया थी, उसका उपयोग तुमने सर्वदा किया । तुम निरन्तर दुखी जीव देखकर उत्तमसे उत्तम वस्त्र तथा भोजनको देनेमे सकोच नहीं करते थे, यही तुम्हारे श्रेयोमार्गके लिये एक मार्ग था । न तुमने कभी भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, न स्थिरतासे पुस्तकोका अवलोकन ही किया, न चारित्रका पालन किया और न तुम्हारी शारीरिकसम्पदा चारित्र पालनकी थी । तुमने केवल आवेगमे आकर व्रत ले लिया । व्रत लेना और बात है और उसका आगमानुकूल पालन करना अन्य बात है । लोग तो भोले हैं जो वाचाल और बाह्यसे ससार असार है ऐसी कायकी चेष्टासे जनाते हैं उन्हींके चक्रमे आ जाते हैं, उन्हींको साधु पुरुष मानने लगते हैं और उनके तन, मन, धनसे आज्ञकारी सेवक बन जाते हैं । वास्तव में न तो धर्मका लाभ उन्हें होता है और न आत्मामे शान्ति ही का लाभ होता है । केवल दम्भिगणोंकी सेवा कर अन्तमे दम्भ करनेके ही भाव हो जाते हैं । इससे आत्मा अधोगतिका ही पात्र होता है ।

इस जीवको मैंने बहुत कुछ समझाया कि तूँ परपदार्थोंके साथ जो एकत्वबुद्धि रखता है उसे छोड दे परन्तु यह इतना मूढ है कि अपनी प्रकृतिको नहीं छोड़ता, फलत निरन्तर आकुलित रहता है । क्षणमात्र भी चैन नहीं पाता ।

ईसरी, माघ शुक्ल १३ स १९९९ **आपका शुभचिन्तक गणेश वर्णी**

आचार्य सूर्यसागर महाराज

(श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका जन्म कार्तिक शुक्ल ९ शुक्रवार वि स १९४० को ग्वालियर रियासतके शिवपुर जिलान्तर्गत पेमसर ग्राममे हुआ था। पिताका नाम हीरालाल जी और माता का नाम गेदाबाई था। ये जातिके पोरवाल थे। बाल्यपनका नाम हजारीमल था। इनका लालन पालन इनके पिताके सहोदर भाई बलदेव जी झालरापाटनवालोके यहाँ हुआ था। बादमे उन्हीके ये दत्तक पुत्र हो गए थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी तक सीमित थी।

विवाह होने पर भी बचपनसे ही इनकी रुचि धर्मकी ओर होनेसे स १९८१ मे एक स्वप्नके फल स्वरूप ये ससारसे विरक्त हो गये और इसी वर्षकी आसोज शुक्ल ६ को इन्होने इन्दौरमे आचार्य शान्तिसागर (छाणी) के पास ऐलक पदकी दीक्षा ले ली। दीक्षा नाम सूर्यसागर रखा गया। इसके बाद कुछ दिनोमे इन्होने उन्हीके पास हाटपीपल्यामे मगसिर कृष्णा ११ को मुनि पदकी भी दीक्षा ले ली और कुछ कालमे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये।

आचार्य सूर्यसागर महाराज स्वभावके निर्भिक और स्वतन्त्र विचारक थे। उत्तर भारतमे इस कालमे इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। आचार-विचारमे मूल परम्पराकी इन्होने जीवनके अन्तिम क्षण तक रक्षा की है। स्वाध्याय और अध्ययन द्वारा इन्होने अपने ज्ञानको खूब बढाया और कई ग्रथोकी रचना की।

अन्तमे जीवनको नश्वर जान इन्होने डालमियानगरमे समाधि ले ली थी। वहॉ नगरके बाहर दाहसस्कारके स्थान पर प्रसिद्ध उद्योगपति शाहु शान्तिप्रसादजी द्वारा निर्मित इनकी सगमरमरकी भव्य समाधि बनी हुई है।

पूज्य श्री १०५ क्षु गणेशप्रसाद जी वर्णी इनको अपना गुरुके समान मानते रहे। इनका पूज्य वर्णीजीके साथ पत्र व्यवहार होता रहता था। उनमे से उपलब्ध हुए तीन पत्र यहॉ दिये जाते है।)

(२-१)

महाराजके चरणकमलोंमे श्रद्धाञ्जलि

ससारमे वही महापुरुष वन्दनीय होते है जिन्होने ऐहिक, पारलौकिक कार्योसे तटस्थ हो आत्मकल्याणके लिये आत्मपरिणतिको निर्मल बना लिया है। आपकी हम

तुच्छ मनुष्य क्या प्रशसा करे ! आपने तो उभय लोकसे परे श्रेयोमार्गको अपनाया है । हम तो आपके चरणाम्बुज रजसे ही कृतकृत्य अपनेको मानते है !

सागर **आपका गुणानुरागी**

गणेश वर्णी

(२-२)

हे श्री १०८ महात्मन् ! आपको अनेकश: नमस्कार

आप स्वय समर्थ है । आपको परकृत वैय्यावृत्यकी आवश्यकता नहीं है । परन्तु जिनको प्रबल पुण्योदय मिला है वे स्वय आपके सानिध्यमे वैयावृत्य तपका लाभ ले रहे है । हम अन्तरङ्गसे इस महायोगका दृश्य देखनेको लालायित हैं । परन्तु आपका आदेश चाहते हैं । आगम इसका बाधक नहीं परन्तु हम तो 'गुरोराज्ञा बलीयसी' का पालन करनेवालोमे है, आज्ञा की प्रतीक्षामे हैं । आशा है इस ओर नेक दृष्टिपात करेगे । उद्देश्य हमारा अच्छा है । उत्सर्ग वही है जो अपवादसापेक्ष है । अपवाद वही है जो उत्सर्गनिरपेक्ष न हो । प्रवृत्तिमार्ग निर्दोष ही है सो नहीं, अन्यथा प्रायश्चित शास्त्र किस उपयोग का ? हॉ, अपवादमे छल नहीं होना चाहिये । हमारे तो कोई छल नही । केवल एक महात्माकी अन्तिम अवस्थाकी चरणरजका स्पर्श कर अपनी निर्मलताका पात्र बनूँ, यही भावना है । यदि आप लोगोकी उक्तियोंसे सकोच करे तब हम क्या कह सकते है ? हम तो आपकी आज्ञाका अक्षरश पालन करनेवालोमे है ।

सागर, **आपका गुणानुरागी**

श्रावण वदी ७, स २००६ **गणेश वर्णी**

(२-३)

श्री १०८ आचार्य्य सूरिसागरजी महाराजके चरण कमलोमें सहस्रश: नमस्कार

महाराज ! मेरी तो अनन्यभक्ति आपके गुणोमें निरन्तर रहती है । आपके पादमूलमे रहकर सुमार्गभागी हूँ । परन्तु इनता सौभाग्य नहीं, न हो परन्तु वही अनुराग जो प्रत्यक्षमे प्राणीके होता है मेरेको है । इससे निरन्तर आपके गुणोका स्मरण कर प्रसन्न रहता हूँ । विशेष बात श्री नरेन्द्र कहेगा । क्या लिखूँ ? मनकी बात व्यक्त नहीं कर सकता, वचनोमे वह सामर्थ्य नहीं !

शान्तिनिकुञ्ज, सागर **आपका गुणानुरागी**

गणेश वर्णी

बाबा भागीरथ जी वर्णी

(श्रद्धेय बाबा भागीरथ जी का जन्म मथुरा जिलेके पण्डापुर ग्राममे वि स १९२५ को हुआ था । पिता का नाम बलदेवदास और माता का नाम मानकौर था । जब ये तीन वर्ष के थे, तब पिताका और ग्यारह वर्षकी उम्रमे माताका देहावसान हो गया था । बचपनमे इनकी पढ़ाई लिखाई कुछ भी न हो सकी । माताके देहावसानके बाद आजीविका निमित्त ये दिल्ली चले गये । जन्मसे ये वैष्णव थे ।

दिल्ली मे ये जैनियोके मुहल्ले मे रहने लगे । और वही पर आपने एक जैनबन्धुके सम्पर्कसे ज्ञान सम्पादन किया । एक दिन जैन मन्दिरके पाससे जाते समय इनके कानोमे पद्मपुराण (जैन रामायण) के कुछ शब्द पड गये । इनके वैष्णव धर्मसे जैनधर्ममे दीक्षित होनेमे यही कारण है ।

जैन होनेके बाद धीरे-धीरे इनको प्रपञ्चसे निवृत्ति होने लगी और कुछ काल बाद इन्होने विधिवत् ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली । इनका सयमी जीवन अत्यन्त श्लाघनीय रहा है । ये निर्वाहके लिए दो चादर और दो लगोट मात्र ही परिग्रह रखते थे । तथा नमक और मीठेका आजन्मके लिए त्याग कर दिया था ।

स्वाध्याय और आत्मचिन्तन ये दो कार्य इनके मुख्य थे । इनसे चित्तवृत्तिके हटने पर इनका अधिकतर समय परोपकारमे व्यतीत होता था । जैनियो की प्रमुख सस्था श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके सस्थापकोमे ये प्रमुख है। अधिष्ठाता पदपर रहकर उन्होने इस सस्थाकी कई वर्ष तक सेवा भी की है ।

पूज्य वर्णीजी और बाबाजी दो शरीर और एक आत्मा कहे तो अत्युक्ति न होगी । पूज्य वर्णी जी के जीवनपर इनकी गहरी छाप है, जैसा कि पूज्य वर्णी जी द्वारा इनको लिखे गये पत्रोसे ज्ञात होता है । यहा उनमेसे कतिपय पत्र दिये जा रहे हैं। मृत्यु - २६-१-१९४२)

(३-१)

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज !

योग्य प्रणाम

ससार यातनाओका गृह है । इससे बचनेके अनेक उपाय महर्षियोने प्रदर्शित

किये है परन्तु उनके अन्तस्तत्त्वपर यदि विचार किया जावे तब ? त्यागमें सब उपायोका का समावेश हो जाता है । हम दु खी क्यो हैं ? पर पदार्थोंमें निजत्व कल्पनाके जालमे फँसे हैं । उस जालसे मुक्त होनेके लिये ही प्रथम उपाय सम्यग्दर्शन जैनागममे आचार्योंने बताया है । वस्तुत सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेका प्रयास हमारा कर्तव्य नहीं किन्तु हमारी आत्मा अनादिकालसे इन पर-पदार्थोंमें जो निजत्व कल्पना कर रही है उस कल्पनाको न होंने देना ही हमारा पुरुषार्थ होना चाहिए । ऐसी चेष्टा निरन्तर प्रत्येक प्राणीकी होनी चाहिये । ससारमे जितने भी चरणानुयोग और अनुयोगोके निरूपण है वे सभी एतत्पर हैं । उपासनातत्त्वका भी यही तात्पर्य है कि जो सत्य आत्माकी परिणतिमे हमारा उपयोग बढ जावे । सत्यसे तात्पर्य रागद्वेष हीन आत्माकी परिणति ही नित्य और सत्य है । इसके विपरीत जो परपदार्थके सम्बन्धसे हो तथा जिसके अभ्यन्तरमे विपरीत कल्पना हो वह परिणति ही मिथ्या और ससारवर्द्धक है ।

ईसरी
अगहन कृष्ण ३० स १९९४

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(३-२)

श्रीयुत महाशय जी इच्छाकार

अब पर्यायकी क्षीणता होगी और इससे अनिवार्य निर्बलता होगी, किन्तु इसमे आत्मगुणको क्या बाधा है ? आप तो नहीं, परन्तु अन्य भोले प्राणी कहेगे कि जब इन्द्रियॉ शिथिल होगी तब इन्द्रियजन्य ज्ञान भी शिथिल होगा ही । परन्तु उससे आत्मा की क्षति नहीं । जिससे आत्माकी क्षति है उसकी घातक यह इन्द्रियदुर्बलता नहीं ।

ईसरी
चैत्रकृष्ण १२ स १९९५

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - ३)

इच्छाकार

आपका पीयूष पूरित पत्र आया, समाचार जाने । मैं आपका विशेष भक्त हूँ । भक्त ही नहीं आपके सिवाय इस समय मेरी तो किसी भी त्यागी मे भक्ति नहीं, अत आप मेरे लिये आशीर्वादको छोडकर शब्दान्तर न लिखे । आपके सम्पर्कमे मेरी जो निर्मलता थी वह केवलमे नहीं । महाराज ! मेरी तो यह श्रद्धा है कि जो भी वेष है सब कषायोके ही कार्य हैं । परन्तु यह सब चर्चा भी कषायोके उदयमे ही होती है । आप मेरी एक तुच्छ सम्मति मानिये । वह यह कि अब आपकी आयु दीर्घ नही अत सब तरफ से सङ्कोचकर खतौली मे ही समाधिमरणकी योग्यता जानकर क्षेत्रन्यास कीजिये । कषायो के उदय जीवसे नाना कार्य कराते है । परन्तु पुरुषार्थकी भी वह तीक्ष्ण खङ्गधार है कि उन उदय जन्य रागादिककी सन्ततिको निर्मूल कर देती है । अर्जित रागादिककी उत्पत्तिको हम नहीं रोक सकते । परन्तु उदयमे आये रागादिको द्वारा हर्ष-विषाद न करे यह हमारे पुरुषार्थका कार्य है । सञ्ज्ञी पचेन्द्रियकी मुख्यता पुरुषार्थ द्वारा ही कल्याण करनेकी है । कषायोके उदयपर रोना आपसे निस्पृही व्यक्तिको तो सर्वथा अनुचित ही है । द्रव्य द्वारा किसी जाति या धर्मकी उन्नति न हुई, और न होगी । चक्रवर्ती जैसे शक्ति और प्रभाव सम्पन्न महापुरुषोसे भी ससारमे शान्ति नहीं आई और न धर्मकी ही उन्नति हुई, किन्तु श्रीवीतराग सर्वज्ञ परम महर्षि तीर्थङ्करके निमित्तको पाकर शान्ति या धर्मका वैभव ससारमे व्यापकरूपसे प्रसारित हुआ, जिसका आशिक रूप अब भी ससारमे है । चक्रवर्त्तीकी कोई भी वस्तु आज तक नहीं रही, क्योकि भौतिक पदार्थ तो पुद्गलकृत हैं और धर्मका असर आत्मामे होता है, इसलिए अब भी बहुत आत्माएँ ऐसी है जिनमे तीर्थकर द्वारा प्रतिपादित धर्मका अश है । यह मानना ही मिथ्या है कि धनिको का धन धर्ममे नहीं लगता । धनसे धर्म होता ही नहीं, फिर यह कल्पना करना कि अमुक व्यक्तिका धन धर्ममे नहीं लगा व्यर्थ है । हम भी क्या करे ? मोहके द्वारा असख्य कल्पना करके भी शान्त नहीं होते ।

ईसरी,
आषाढ कृष्ण ३ स १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३-४)

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

दु खका मूल कारण शारीरिक व्याधि नहीं, किन्तु शरीरमे ममत्वबुद्धि है । वही दु खका मूल है । दु ख क्या वस्तु है ? आत्मामे जो परिणमन न सुहावे वही तो दुःख है। अर्थात् जिस वस्तुके होनेमे आकुलता हो, चैन न पडे, वही तो दु ख है । अत. जो यह वैषयिक सुख है वह भी दु ख रूप ही है, क्योकि जब तक वह होते नहीं तब तक तो उनके सद्भावकी आकुलता रहती है और होने पर भोगनेकी आकुलता रहती है । आकुलता ही जीवको नहीं सुहाती । अत वही दु.खावस्था है । भोगविषयिणी आकुलता दु खात्मक है । इसमे तो किसीको विवाद ही नहीं । परन्तु शुभोपयोगसे सम्बन्ध रखनेवाली जो आकुलता है वह भी दु खात्मक है । यदि ऐसा न होता तो उसके दूर करनेके अर्थ जो प्रयास है वह निरर्थक हो जावे । कहॉ तक इसकी मीमासा की जावे । जो शुद्धोपयोगके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है वह भी आकुलताकी जननी है। अत· जो भाव आकुलताके उत्पादक है वे सर्व ही हेय है। परन्तु ससारमे अधिकतर भाव तो ऐसे ही है और उन्हींके पोषक प्राय सब मनुष्य है ।

ईसरी
श्रावण कृष्ण १ स १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - ५)

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशाधा धर्मका पालन आपने सम्यक् रीतिसे किया होगा । हमने यथाशक्ति धर्म साधन कर पर्वकी पूर्णता की यह एक प्रकारसे पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है । जैसे छोटी-छोटी लडकियोमे गुडियोका खेल खेलनेकी पद्धति है । धर्म वस्तु तो निवृत्तिरूप है, प्रवृत्तिसे तो उसका आशिक घात ही है । ऐसा न होता तो महाव्रतको साङ्गोपाङ्ग पालनेवाले श्री मुनि महाराजके चारित्रको प्रमत्तचारित्र न कहते और यह प्रमत्तचारित्र करणानुयोगकी दृष्टिसे है । अथ च यदि इस प्रवृत्तिकी एकान्तसे मुख्यता हो जावे तब चारित्रका घात तो निर्विवाद ही है । सम्यग्दर्शनका भी घात दुर्निवार है ।

आजकलके वातावरणके जालमे आकर जीवोने मूल धर्मकी विवेचना करनेवालोको एक स्वरसे जैनधर्म-द्रोही बना दिया है और स्वकीय प्रवृत्तिको तथा अपनी जो शुभात्मक प्रवृत्ति हो रही है उसे ही निवृत्ति मार्गका साधक मान रहे हैं । सो इनके शुद्धोपयोग तो दूर रहे, अहम्मन्यताने इनके शुभोपयोगको भी कलङ्कित कर रक्खा है । अत इन व्यवहाराभास-विषयक चर्चा करनेवाले मनुष्योकी सङ्गति छोडना श्रेयस्कर है। इनका ही ससर्ग न छोड़ो किन्तु जो एकान्तकी मुख्यतासे निश्चय धर्मका मनन कर अपनेको परमार्थ मार्गका पथिक मान रहे हैं उनका भी समागम छोड दो । शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नहीं हो किन्तु शुभोपयोगमे जो शुद्धोपयोगकी कल्पना है उसके त्याग और अन्तरङ्गमे रागादिकी निवृत्तिसे शुद्धोपयोग होता है । अत ससार निवृत्तिके जो भाव है वही मोक्षमार्ग है । जब तक जीव इन भावोंके पात्र न होगे, केवल कषायमय भावोका आदर करेगे, ससारके पात्र होगे । अत इस पर्वमे अविरुद्ध निवृत्ति तत्त्वकी चर्चा करना ही हमारा मुख्य ध्येय होना चाहिये । पर्व बहुत है परन्तु यह पर्व कुछ विशेषता रखता है । जैसे आष्टाह्निक पर्व है । उसमे श्री जिनेन्द्र देवके अकृत्रिम बिम्बोंकी पूजाकी मुख्यता है । भगवानके पञ्चकल्याणकके जो दिन है उनमे भी गर्भादिकी मुख्यतासे पूजन विधिकी मुख्यता है । षोड्स-कारण व्रतमे उपवासादिकी मुख्यता है । एक यह दशलक्षण पर्व ही भगवानके दीक्षा कल्याणककी तरह मुख्यता रखता है, जिसकी प्रभुता लौकान्तिक देवो की तरह विरले ही जानते है । इसी पर्वके अन्तर्गत आकिचन धर्मके दिवस रत्नत्रय व्रतका उदय हो जाता है, जो कि साक्षात् मोक्षमार्ग है । अत इस व्रतकी सफलता उन्हीं भव्य जीवोके होती है जिनके अभ्यन्तरमे कषायादि भावोकी निवृत्ति होकर शान्तिरस आता है । अन्यथा रत्नद्वीपमे जाकर रत्नोको पत्थर जान उनसे पराङ्मुख होकर रिक्तहस्त घर आनेके तुल्य है । या कोई कहे -

कहाँ गये थे ?

दिल्ली ।

कितने दिन रहे ?

बारह वर्ष ।

क्या व्यापार किया ?

भाड झोका ।

क्या खाया ?

चना ।

अस्तु, इस विषयका विवेचन करना हम जैसे अनुभवशून्य प्राणियोंसे होना असम्भव है । अवगत १२ मासमे यदि प्रमादादि द्वारा हमसे जो अनुचित प्रवृत्ति हुई हो और उसके द्वारा जो आत्मघात किया हो तथा इसी तरह इस अज्ञानी जीवकी प्रवृत्ति यदि आपके विभाव भावमे कदाचित् निमित्त हुई हो तो उन भावोको औदयिक तथा अनात्मीय जान शान्तिरसके ही रसिक बनना । आप तो स्वयमेव तात्त्विक ज्ञानी है । आपके इन कुत्सित भावोकी सम्भावना नही । परन्तु मैंने अपनी शल्यको दूर करनेके लिये यह प्रयास किया है । होना भी असम्भव नहीं । कर्मोदयकी बलवत्तामे ग्यारहवें गुणस्थानसे भी पतन हो जाता है । इस पर्वका मुख्य फल क्षमादि भावोका उदय है । जिनके कर्मकी बलवत्तामे यह न हो सके तब वे श्रद्धा ही इस तत्त्वकी करे । बुद्धिपूर्वक हमने भी इस कार्यके करनेमे निष्प्रमादतया प्रयास किया है । फल क्या हुआ यह दिव्यज्ञानी ही जाने ऐसा सन्तोष करना अच्छा नहीं । यदि अन्तरङ्ग आत्मासे विचार करोगे तब तुम इसके ज्ञाता दृष्टा स्वय हो । तुम्हारे ज्ञानमे यदि उसका अस्तित्व न आया तब तुम्हारी प्रवृत्ति जो उत्तरोत्तर आत्माकी उत्कर्षताके लिये होगी, कैसे होगी ? अत इसका निष्कर्ष यही निकला कि हम स्वय उसके ज्ञाता है । और एक दिन यही प्रयास करते-करते यहाँ तक उसकी सीमावृद्धि होगी कि हम स्वय अनन्त सुखके पात्र होगे । अत दशधा धर्म पालनके इस तत्त्वको जान निरन्तर पर्व मनाना चाहिये, क्योकि विशिष्ट कार्यकी उत्पत्ति विशिष्ट कारणसे ही होती है ।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण २, स १९९

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - ६)

श्रीमान बाबा जी महाराज, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया । मैने स्वामिकार्तिकेय ग्रन्थ देखा । उसमे सामान्य वर्णन है, विशेषरूपसे वर्णन नहीं है । उसमे तो कुछ भी नहीं निकलता । हाँ, गुरु परम्परासे जो कुछ हो । फिर भी उत्सर्गमे और अपवादमे मैत्रीभाव रहना चाहिये । यदि अपवादमे लीन हो जावे तब असयम ही के तुल्य हो जाता है । करना और बात है और कहना और बात है । अनादि कालसे इस अज्ञानी जीवने केवल इन बाह्य वस्तुओके द्वारा ही

कल्याणके मार्गको दूषित बना रखा है । वह चरणानुयोगके मार्मिक भावका वेत्ता न होकर केवल बाह्य त्यागकी मुख्यताकर बाह्यका भी नाश करता है । बाह्य क्रिया वही सराहनीय है जो आभ्यन्तरकी विशुद्धतामे अनुकूल पडे । केवल आचरणसे कुछ नहीं होता जब तक कि उसके गर्भमे सुवासना न हो । सेमरका फूल देखनेमे अति सुन्दर होता है परन्तु सुगन्धि शून्य होने से किसीके उपयोगमे नहीं आता ।

ईसरी,
मार्गशीर्ष शुक्ल ९ स १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - ७)

मेरे परमोपकारी श्रीयुत बाबा भागीरथ जी वर्णी महाराज, योग्य प्रणाम

बहुत कालसे आपकी अनुपम अनुभूतिका प्रकाशक पत्र नहीं आया सो यदि नियममे बाधा न हो तो देना । महाराज क्या ऐसा भी कोई उपाय आपके दिव्य अनुभवमे आया है जो हम जैसे मूढो के सुधारका हो । यदि नही है तब तो कथासे लाभ ही नहीं और यदि वह है तो कृपाकर उस उपायकी एक कणिका इधर भी वितरण कर दीजिये । बाह्य उपाय हमने भी बहुतसे किये परन्तु उनसे तो शान्तिकी गन्ध भी नहीं आई । क्या शान्तिका कारण इन उपायो का त्याग तो नहीं है ? सन्तोषके लिए इसे मान भी लिया जावे तब फिर उपायोके जालसे बचनेका कौन सा निरपाय उपाय है ? कुछ समझमे नही आता । क्या इन मन, वचन, कायके व्यापारोको निरहकार, निर्माण सरल करना ही तो उपाय नहीं है । फिर भी यह शङ्का होती है कि निरहकार निर्माण होनेके लिए क्या उपाय है ? यह अन्योन्यश्रृङ्खला कैसे दूर हो । यद्यपि महर्षियोने बाह्यसे उस परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिका उपाय परिग्रहत्याग बतलाया है, परन्तु तत्त्वदृष्टिसे देखा जावे तो धनधान्य जो बाह्य है वे तो यदि भीतरी विचारोसे देखे तो त्यागरूप ही है, क्योकि वस्तु वास्तवमे अन्यापोह पूर्वक ही विधिरूप है । केवल आत्मगत जो मूर्च्छा है वही त्यागनेके लिये आचार्योका इस बाह्य परिग्रह त्यागनेका मूल उद्देश्य है ।

आपके निरीह परिवर्तनसे मैंने बाह्यसे बहुत सा उपाय बाह्य परिग्रहके त्यागका किया और करनेकी चेष्टा मे हूँ । मेरे पास डाकखानेकी पुस्तकमे ७००) थे उनके

रखनेका उद्देश्य यही था कि यदि कभी असातादिका उदय आया तो काम आवेंगे । परन्तु आपके व्रत को देखकर निश्चय किया कि भवितव्य अनिवार है, अत उन्हे स्याद्वाद विद्यालयमे दे दिया और बाईजीके नामपर ४३००) के स्थानमे ५०००) करवा दिये । किन्तु फिर भी जो शाति का लाभ चाहिये वह नहीं हुआ । इससे यही निश्चय किया कि शाति बाह्य त्यागमे नहीं, आभ्यन्तर त्यागमे है । उसका अभी उदय नहीं है, परन्तु श्रद्धा अवश्य है । शातिका मार्ग अपने ही मे है, केवल एक गुत्थीके विदारणका पुरुषार्थ करना है पर वह इस पर्याय मे कठिन है । मेरी तो यह श्रद्धा है कि यदि जीव पर्यायके अनुकूल शाति करे तो कृतकार्य हो सकता है । देशव्रती यदि महाव्रतीके तुल्य क्षमादिक चाहे तो महाव्रती हो जावे । केवल वचनोकी चतुरतासे शाति लाभ चाहना मिश्रीकी कथासे मीठा स्वाद लेने जैसा प्रयास है । अत यही निश्चय किया कि जितनी पर्यायकी अनुकूलता है उतना ही साधन करनेसे कल्याण मार्गके अधिकारी बने रहोगे । पर्यायके प्रतिकूल कार्य करनेपर मेढकीके नालकी दशा होगी । इसीमे सन्तोष है ।

आपके समागमसे और नहीं तो एक बात अवश्य अकाट्यरूप से ध्यानमे आ गई है कि यह परिग्रह का सचय ही पापकी जड है । इसे उन्मूलित करना चाहिये । बाह्यरूपसे तो इसे उन्मूलितकर द्रव्यलिङ्गवत् बहुत बार स्वाग किया सो दिव्य ज्ञानका ही विषय है परन्तु जिसे मूर्छा कहते है वह कैसे जाती है, यह ग्रन्थी अभी तक नहीं खुली । खुलनेकी कुञ्जी ध्यानमे आती तो है, परन्तु वह इतनी चपल है कि एक सेकेण्ड तो क्या उसके सहस्राश भी हाथ मे नहीं रहती । क्या बेढब गोरखधन्धा है ! एक कडी निवारण करता हूँ तो अन्य आकर फँस जाती है । अत. इस गोरखधन्धाके सुलझानेके अर्थ केवल महती बुद्धिमत्ताकी ही आवश्यकता नहीं, साथ-साथ पुरुषार्थकी भी उतनी ही आवश्यकता है । शास्त्रोमे अनेक ऋषिप्रणीत उपायोकी योजना है, परन्तु उन सर्व उपायोमे वचनशैलीकी विभिन्नता है, न कि अर्थकी विभिन्नता । अत किसी भी ऋषिके ग्रन्थका मनन कर निर्दिष्ट पथका अनुसरण कर अपनी मनोवृत्तिकी स्थिरताकर स्वार्थ या आत्माकी सिद्धि करना बुद्धिमान् मनुष्योका मुख्य ध्येय होना चाहिए । व्यर्थके झझटोमे पडकर बुद्धिका दुरुपयोग कर लक्ष्यसे च्युत होना अकार्यकर है । जितने अधिक बाह्य कारण सचय किये जायेगे उतना ही अधिक जालमे फँसते रहेगे । अत मैने अब एक ही उपाय अवलम्बन करनेका निश्चय किया है । आजकल शारीरिक व्यवस्था कुछ अनुकूल नहीं । दशमी प्रतिमाके विषयमे श्रीमानोका जो उत्तर 'जैनसन्देश' मे है - अपवादरूपसे जल ले सकता है, इसमे ऐसा

जानना कि अपवाद तो परमार्थसे कभी-कभी होता है यदि उसमे रत हो जावे तो यह मूलघात ही है ।

ईसरी,
मार्गशीर्ष कृ ४ स १९९९, २

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३-८)

इच्छाकार

जिसे लोकमे स्वास्थ्य कहते है उसे जानने की आकाक्षा है । वास्तवमे जिसे स्वास्थ्य कहते हैं वह तो निवृत्तिमार्ग है । निवृत्तिमार्गमे जो चल रहे हैं उनका स्वास्थ्य प्रतिदिन उन्नतिरूप ही होता जाता है । महाराज ! मैं आपको व्यवहारमे अपना परम हितैषी मानता हूँ । आपके द्वारा तथा आपकी निरीहतासे मैंने बहुत कुछ लाभ उठाया है । उस ऋणको मै इस पर्यायमे नही चुका सकता । स्वर्गीया श्री बाईजीकी वैय्यावृत्त्यका तो अन्तमे बहुत अशोमे सन्तोष कर चुका परन्तु आपकी अन्त अवस्थाका दृश्य अब इस पर्यायमे देखनेको मिलना असम्भव है, ऐसे कारण उपस्थित है, फिर भी आपकी शान्तिका अभिलाषी हूँ । समाधिमरणके लिए कौन-कौनसे अस्त्र है वही सक्षेपमे मुझे लिख दीजिये । पुस्तकोके तो थोडे बहुत मै जानता हूँ परन्तु आपके अनुभूत जाननेका अभिलाषी हूँ, क्योकि अब मेरी श्रद्धा इसी योग्य हो रही है । आशा है आप उपेक्षा न करेगे ।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - ९)

इच्छाकार

महाराज ! कषायोके उदय नाना प्रकारके है परन्तु आप जैसे निस्पृह व्यक्तियोके लिये नही । हम सदृश बहुतसे व्यक्ति उसके लिये है । आप तक उसका प्रभाव नहीं जा सकता । क्या ही सुन्दर पद्य श्री १०८ मानतुङ्ग मुनिराजने कहा है -

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै:
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वै;
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षतोऽसि ।।

और वास्तवमे श्री कुन्दकुन्द मुनिराजने समयसारमे कहा भी है ।

उदयविवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवणेहिं ।
ण दु ते मज्झ सहाया जाणगभावो हु अहमिक्को ।।

आपकी प्रशममूर्ति रहने पर भी यदि बलभद्र आदिने ज्ञानामृतका पान न किया तब फिर इस स्वातिकी बूँदका मिलना दुर्लभ ही नहीं किन्तु असम्भव भी है । अस्तु, अब क्या करे? जो होना होता है वह होकर ही रहता है । मै चाहता हूँ आपकी उपदेशामृतपूरित पत्रिका एक माहमे एक मिलती जावे तो अच्छा है । इस अवस्थामे स्वात्मचर्चाको त्यागकर केवल विषयान्तरकी कथा उपयोगिनी नहीं । धनिक वर्ग धनको निज सम्पत्ति समझ रहे है जो कि सर्वथा विपरीत है ।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - १०)

इच्छाकार

आपने लिखा सो अक्षरश सत्य है कि आत्माका स्वभाव ज्ञाता दृष्टा ही है तथा तत्त्वदृष्टिसे दो भाव नहीं किन्तु एक ही भाव है । परन्तु पदार्थके द्विविधपनसे आत्माके ज्ञातृत्व और दृष्टत्व व्यवहार होता है । इसकी विकृतावस्थामे औदयिक रागादिकोकी उत्पत्ति होती है । अथवा यो कहिये कि औदयिक रागादिक भावोकी सहचारिता ही इसकी विकृतावस्था है । दीपकका दृष्टान्त जो दिया गया है वह पदार्थमे, उसमे जो ज्ञेयकी सरलता है और प्रकाशक भाव है वही वास्तविक दीपक है । अन्य जो विक्रिया है वह पवनादि निमित्तक है । यह बात लिखनेमे अति सरल है परन्तु जब तक प्रवृत्तिमे न आवे तब तक हम सरीखे अनुभवशून्य ज्ञानियोका यह ज्ञान अन्धेकी लालटेनके सदृश है । आपकी बात नहीं, क्योंकि आप विशेष अन्तरङ्गसे एक विरक्त पुरुष हैं । सुख तो अन्तरङ्गमे रागादिक दोषके अभावमे है । उसके जाननेका उपाय यथार्थमें

तत्त्वज्ञान है । तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिका मूल उपाय आगमाभ्यास और निरीह वृत्ति है ।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

(३ - ११)

इच्छाकार

मै आपको उत्कृष्ट और महान् समझता हूँ । अत आपके द्वारा मुझे खेद पहुँचा यह मै स्वीकार नही करता । आपकी महती अनुकम्पा होगी यदि आप कार्तिक बाद दर्शन देगे ।

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

३ जनवरी १९४५

* दिन जाते है, रात्रियो का उदय होता है । इस तरह सम्पूर्ण आयु बीत जाती है । कल्याण की कथा प्रतिदिन की जाती है और प्राय सर्व ही इस कथा के रसिक है । रसिक होने से कल्याण हो जावे यह समझ मे नहीं आता । सर्व ही जीव मोक्ष की अभिलाषा करते है । केवल ससार के भय से ही यह सर्व कथा है । अन्तरग मे कल्याण का भाव नहीं है । जो कोई पचो के भय से असत् कार्य नहीं करता । तो क्या उसका त्यागी हो सकता है, नहीं ।

* * *

५ मार्च १९४५

* राग द्वेष त्यागो । किसी से सबध न रखो । किसी से विरोधकर उदासीन न हो, प्रत्युत सहज स्वभाव हो । उदासीन व्यवहार तो मोह के निमित्त से होता है । कोई हमारा नहीं ।

क्षु. पूर्णसागरजी महाराज

(श्री १०५ क्षु पूर्णसागरजी महाराज जिला सागरके अन्तर्गत रामगढ (दमोह) के रहनेवाले है । जन्म तिथि आश्विन वदि १४ वि स. १९५५ है । पिताका नाम परमलाल जी और माताका नाम जमुनाबाई है और जाति परवार है । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है और महाजनी हिसाब किताबका इनको अच्छा अनुभव है ।

विवाह होने के बाद ये कुछ दिन अपने घर ही कार्य करते रहे । उसके बाद दमोह श्रीमान् सेठ गुलाबचन्द्र जीके यहाँ और सिवनी श्रीमन्त सेठ पूरणसाह जी व उनके उत्तराधिकारी श्रीमन्त सेठ वृद्धिचन्दजी के यहा कार्य करने लगे । प्रारम्भसे धार्मिक रुचि होनेके कारण घरमे ही ये श्रावकधर्मके अनुरूप दया आदि आचारका उत्तमरूपसे पालन करते थे और किसीको विशेषत एकेन्द्रियादि मूक प्राणियोको कष्ट न हो इसका पूरा ख्याल रखते थे ।

पत्नी वियोगके बाद ये घरमे बहुत ही कम समय तक रह सके और अन्त मे श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजके शिष्य होकर गृहत्यागीका जीवन बिताने लगे । इस समय आप ग्यारहवी प्रतिमाके व्रत पाल रहे है । दीक्षा तिथि आश्विन वदि १ वि स २००२ है । अपने कर्तव्यके पालन करनेमे ये पूर्ण निष्ठावान् है और मध्ययुगीन पुरानी सामाजिक परम्पराके पूरे समर्थक है ।

इन्होने एक केन्द्रीय महासमितिकी दिल्लीमे स्थापना की है और उसके द्वारा अन्य सस्थाओकी सहायता करते रहते है । पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके इन्हे जो पत्र प्राप्त हुए उनमेसे उपलब्ध कुछ पत्र यहा दिये जा रहे है ।)

(४ - १)

श्री क्षुल्लक पूर्णसागर जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । श्री १०८ पूज्य आचार्य महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है यह अवगत कर महती प्रसन्नता हुई । परन्तु थोडे ही दिनोंके पश्चात् जैनसन्देशमे महाराजका स्वास्थ्य फिरसे गिर रहा है बॉचकर अत्यन्त खेद हो रहा है । तत्त्वदृष्टिसे महाराजका स्वास्थ्य तो उत्तम ही है । हम जिस शरीरसे ममता रखते है, महाराजने उसे पर समझा है। यह ही नहीं समझा, अटूट श्रद्धा श्री तदनुकूल है । इतनेसे ही सन्तोष नहीं, आचरण

भी उसी प्रकार है । यही कारण है जो इस प्रकार असह्य वेदना के निमित्त समुपस्थित होने पर स्वात्मरमण से विचलित नहीं होते । ऐसे महापुरुषोसे यह भू-भूषित है । मै आपको धन्य मानता हूँ जो ऐसे महापुरुषकी वैया-वृत्य कर आत्माको कर्मभारसे मुक्त कर रहे हैं । मै तो आप लोगोके चरित्रकी भावनासे ही अपनेको मनुष्योकी गणनामे मानकर प्रसन्न रहता हूँ । इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ । प्रथम पत्रमे कुछ विनय की थी, परन्तु श्री पूज्य महाराज की आज्ञा बिना असमर्थ हूँ । मुझे तो महागजकी आज्ञा ही आगम है । मेरी तो यह दृढतम श्रद्धा है कि महापुरुषके जो उद्गार है वही आगम है, क्योकि जिनके रागादि दोषोकी निवृत्ति हो चुकी है उनकी जो वचनावली निकलेगी वह स्वपरकल्याणकारिका होगी तथा उनका जो आचरण है वही चरणानुयोग है । उनकी प्रवृत्तिको जो शब्दो मे गुम्फित कर लिखा जाता है वही चरणानुयोग शब्दोसे कहा जाता है । जहा उनका विहार होता है वही तीर्थ शब्दसे व्यवहार होता है । मेरी लेखनीमे यह शक्ति नहीं कि महाराजके चरित्रका अश भी लिख सकू । फिर भी अन्तरङ्गमे व्यग्र नहीं, यह भी गुरु पदाब्जोके रजका प्रभाव है । मेरी प्रार्थना श्री पूज्य महाराजसे निवेदन करना जो मेरे योग्य जो आज्ञा हो शिरसा माननेको प्रस्तुत हूँ । ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्दजीसे इच्छाकार कहना । उन्हे क्या लिखू ? वह तो महाराजके अनन्य चरणानुरागी है ।

शान्तिनिकुञ्ज,
सागर, आषाढ वदी ४, स २००८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(४ - २)

श्रीयुत १०५ क्षु पूर्णसागरजी महाराज, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। श्री १०८ पूज्य आचार्य महाराज के वैयावृत्त तपका अवसर आप महापुरुषोको प्राप्त हुआ । धन्य-भाग आपका जो अन्तरङ्ग तप अनायास हो रहा है । हम तो अनुमोदना करके ही सन्तोष कर लेते हैं । मेरी तो आचार्य महाराजके चरणोमे जो श्रद्धा है सो उसीके प्रसादसे अपनेको कृतकृत्य मानता हूँ । महाराजकी आज्ञा नहीं हुई अन्यथा मै वही आ जाता । और वैयावृत्य कर जन्म सार्थक करता । परन्तु 'गुरोराज्ञा गरीयसी' जान सन्तोष किया । यदि आयु शेष है तब एक बार

महाराजका दर्शन होगा, अन्यथा परलोकमे तो नियमसे होगा । ससारका कारण मोह है। जिसने इसपर विजय प्राप्त की वह परमात्मपदका अधिकारी है । परमात्माकी उपासना व जपसे परमात्मा नहीं होता । परमात्माप्रतिपाद्य मार्ग पर चलनेसे परमात्मा हो जाता है ।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमह हि चित् ।
अयमेव हि मे बन्धो या स्याज्जीविते स्पृहा ।।

मै न तो देह हूँ और न मेरी देह है और मै न जीव हूँ । दश प्राणधारी जीव भी नहीं हूँ । बन्धका कारण जीव (दश प्राणधारी) पर्यायमे जो श्रद्धा है अर्थात् इस पर्यायमे जो निजत्वकी श्रद्धा है वही बन्ध है, क्योकि यह प्राण औपाधिक है, आत्माका स्वरूप नहीं । अनादिकालसे हमारी पर्यायबुद्धि रही । इसीसे भव भ्रमण हो रहा है । अत पुरुषार्थ इस प्रकार किया जावे कि ये उपद्रव शान्त हो जावे ।

शान्तिनिकुञ्ज, सागर,
आषाढ सुदी २, स २००९

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(४ - ३)

योग्य इच्छाकार

आपका परम सौभाग्य है जो साक्षात् महाराजकी वैय्यावृत्त कर शेष ससारकी निर्जरा कर रहे हैं । श्री लक्ष्मीचन्द्रजी ! तुम्हे क्या लिखे ? तुम तो बिना ही तपस्वी बने वैय्यावृत्य कर तपस्वी सदृश लाभ ले रहे हो । हमारी सुधि महाराजको दिलाते रहना ।

शान्तिनिकुञ्ज,
सागर

आ शु चि.
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

३ मार्च १९४५

* ससार की समालोचना की अपेक्षा अपनी समालोचना अधिक हितकर है, उस पर हमारा लक्ष्य नहीं ।

क्षु. मनोहरलालजी वर्णी

(श्री १०५ क्षु मनोहरलालजी वर्णीका जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि स १९७२ को झासी जिलाके दुमदुमा ग्राममे हुआ है । इनके पिताका नाम गुलाबरायजी और माताका नाम तुलसाबाई है जो अब परलोकवासी हो गये है । जन्म नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है । प्रायमरी स्कूलकी शिक्षाके बाद सस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास इन्होने श्री गणेश जैन विद्यालय, सागरमे किया है और वहीसे न्यायतीर्थ परीक्षा पास की है । प्रकृतिसे भद्र देख वहॉ पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था ।

विवाह होने के बाद गृहस्थीमे ये बहुत ही कम समय तक रह सके है । अन्तमे पत्नीका वियोग हो जानेसे ये सासारिक प्रपञ्चोसे विरक्त हो गये और वर्तमानमे ग्यारहवी प्रतिमाके व्रत पालते हुए जीवन सशोधनमे लगे हुए है । इनके विद्यागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज ही है । वर्तमानमे ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णीजी इन नामोसे भी पुकारे जाते है ।

इन्होने सहजानन्द ग्रन्थमाला इस नामकी एक सस्था स्थापित की है । इसमे इनके द्वारा निर्मित पुस्तकोका प्रकाशन होता है । इन्होने एक अध्यात्म गीतकी भी रचना की है । इसका प्रारम्भ 'मै स्वतन्त्र निर्मल निष्काम' पदसे होता है । आज कल प्रार्थनाके रूपमे इसका प्रचार बढता जा रहा है । अध्यात्म विद्या (समयसार) के ये अच्छे वक्ता है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके लिए विशेष शुभाशीर्वाद प्राप्त है । प्रारम्भसे अबतक पूज्य वर्णीजी महाराजने उत्तरस्वरूप इन्हे जो पत्र लिखे है उनमेसे कुछ उपलब्ध हुए पत्र यहा दिये जा रहे है ।)

(५ - १)

श्रीयुत महाशय प मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपके भाव प्रशस्त है । आपने जो विचार प्रकट किया वह अति उत्तम है । किन्तु शीघ्रता न करना । काल निकृष्ट है । मेरी तो यह सम्मत्ति है कि आप २ वर्ष सागर-विद्यालयमे रहे और धर्मशास्त्र तथा साहित्यका

अध्ययन करे । तत्पश्चात् जो आपकी इच्छा हो वही करे । सबसे उत्तम तो यही है कि उस प्रान्तमे बरुवासागरमें रहकर वहॉकी पाठशालाका उद्धार करे । वह प्रान्त अति दुखी है । जलवायु भी उत्तम है । रुपया जहॉ कहोगे वहाँ जमा कर देवेगे । परन्तु अभी जायदादको न बेचो । मेरा आपसे अति स्नेह है, क्योकि आप एक धार्मिक स्वावलम्बीके पुत्र हैं ।

ईसरी,
चैत्र शुक्ल ४ स २०००

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५ - २)

श्रीमान् प मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपके विचार प्रस्तुत्य है और मैं आपसे अन्तरङ्गसे प्रसन्न हूँ, क्योकि आपके पितासे जो कि एक धार्मिक जीव थे, हमारा घनिष्ट सम्बन्ध था । मेरी तो यह धारणा है जो आपके द्वारा समाजका बहुत हित हो सकता है । आप ब्रह्मचर्य्यव्रत पाले या ब्रह्मचारी होकर सप्तम प्रतिमाको अङ्गीकार करे । किन्तु यदि आप दो वर्ष सागर रहकर साहित्य और धर्मशास्त्रका अध्ययन करे तब बहुत ही उत्तम कार्य होगा । जब आपने घर त्याग दिया तब आपके द्वारा उत्तम ही कार्य होगा । सागर आपको अनुकूल होगा । मै श्री पण्डित दयाचन्दजी और श्री पण्डित पन्नालालजीको लिख दूगा । आपको कोई कष्ट न होगा । बनारसमे भी प्रबन्ध हो सकता है, परन्तु वहॉ शुद्ध भोजनकी व्यवस्था कठिनतासे होगी । रुपया आपका आपके अभिप्रायके अनुकूल ही व्यय होगा । आजीवन आपको ब्याज मिल जावेगा । आपके छोटे भाईकी क्या व्यवस्था है ? द्रव्यलिङ्गी का उत्तर मोक्षमार्गसे जानो ।

ईसरी,
बैसाख कृष्ण ४ स २०००

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(५ - ३)

श्रीयुत पं मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने जो विचार किये,बहुत उत्कृष्ट है । मेरी तो यही सम्मति है जो आप अपना अमूल्य समय अब एक मिनट भी नहीं खोवे । जितना शीघ्र आप अध्ययन कार्य कर सके, अच्छा है । हमे विश्वास है जो आपकी आत्मासे आप ही का नही अनेकोका कल्याण होगा । वर्षा ऋतुके योग्य यह क्षेत्र नही । यहाँ प्राय उस ऋतुमें मलेरिया हो जाता है । अत इस ओर शीतकालमे आना अच्छा है । हम २७ माससे मलेरियाके मित्र बन रहे है । कभी १० दिन बाद तो कभी १५ दिन बाद और कभी एक मासमे अपनी प्रभुता दिखा जाता है । अस्तु, आपको जो इष्ट हो सो करना । परन्तु हम आपका हित चाहते है । आपका क्षयोपशम अच्छा है और हमे आशा है जो उसका सदुपयोग होगा । अब भी कुछ नही गया है । पारसनाथ नही लिखना चाहिए ।

ईसरी,
बैसाख सुदी ५ स २०००

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४)

श्रीयुत भव्यमूर्ति पं मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपके विचार प्रशस्त है । उस विषयमे हम आपको कुछ नहीं कहना चाहते है । व्रतग्रहण के पहिले एक बार आप सागारधर्मामृतको देखे । परिग्रहका प्रसार दु खमूलक शल्य है यह जो लिखा सो ठीक है । परन्तु इतनी मूर्च्छा भी तो नहीं गई जो उसके बिना जीवन निर्वाह हो सके । सर्वोत्तम पद तो निर्ग्रन्थ ही है । किन्तु उस योग्य परिणाम भी तो होना चाहिये । बातको कह देना जितना सरल है, उतना कार्यमे परिणत होना सरल नही । आप ब्रह्मचर्यव्रत पालो, इससे उत्तम और क्या है ? किन्तु उद्वेगसे कोई लाभ नहीं । एक बार आप आवेगे, सर्व व्यवस्था उस समय ही निश्चित होगी । हमारी तो यह सम्मति है कि अभी आपके जो विचार है, स्थिर रक्खे, किन्तु प्रकाशित मत करे । समय पाकर आप ही व्यक्त हो जावेगे । आप यदि कुछ काल अध्ययन करेगे तब बहुत कुछ परका उपकार

कर सकेंगे । अपना उपकार तो सर्व कोई कर सकता है, परका उपकार विशिष्ट पुण्यशाली ही कर सकता है । जायदादके विषयमे बाबू रामस्वरूपकी सम्मतिसे कार्य करना । श्री श्रेयाससे भी सम्मति लेना ।

ईसरी,
बैसाख शुक्ल ११ स २०००

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(५ - ५)

इच्छाकार,

सागरमे जितनी अधिक सस्था होगी, उतनी ही अधिक प्रबन्धादिकी असुविधा होगी । तथा जो मूल कारण धन है वह वहॉ अत्यन्त न्यून है । लोग उस प्रान्तमे वास्तविक कार्योमे धन नहीं देना चाहते । हमने कई पत्र वहॉ दिये हैं ? यदि उनकी पूर्ति होनेकी चेष्टा हुई तब हम एक बार उस प्रान्तमे आवेगे और बनारस छोडते ही परिग्रहके भारसे मुक्त होगे । केवल वस्त्र और पुस्तकोको छोड सर्व द्वन्द्वसे छूट जावेगे । देखे, कौन धर्मात्मा इसमे सहायक होता है । आप मत्री, सिघईजी आदिसे मिलकर उत्तर देना ।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण १, स २०००

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(५ - ६)

दर्शनविशुद्धि

जिसमे आपकी आत्मा निरन्तर पवित्रताकी ओर जावे वही यत्न करिये । जहाँ आपको शान्ति मिले वही रहो । यदि सागर मे हमारी अभिलाषाकी पूर्ति होनेकी चेष्टा होगी तब एक बार उस प्रान्तमे आवेगे । मेरी सम्मति सागरमे उदासीनाश्रम की नहीं, फिर जो भगवानने देखा होगा । सागरमे जिज्ञासु १० भी हो, भोजन मिल सकता है ।

फिर भोजनशाला खोलना अच्छा नहीं । यह उदासीनाश्रम कुछ काल बाद भट्टारकोंकी गद्दी धारण करेगे ।

ईसरी,
आश्विन कृष्ण २, स २०००

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५ - ७)

श्रीयुत महाशय पं मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मै कोडरमा आ गया और यहाँ से अगहन वदि ३ को चलूगा और अगहन वदि १० या ११ तक गया जाऊँगा । सागर समाजकी इच्छा । हम इस अभिप्रायसे नहीं आते जो किसीको कष्ट हो । केवल अन्तरङ्ग भावना देशके बालकोके उद्धार की हो गयी । याचना तो हम भगवानसे भी नहीं करते । हाँ, उनके चरणोमे दृढ अनुराग है, किन्तु लौकिक कार्य के लिये नही । बनारस कब पहुँचेगे, गया जाकर लिखेंगे । हम वहाँ आते है सो प्रान्त भरमे भ्रमण करेगे । सर्व मनुष्योसे लाभ उठायेगे । सागर अधिकसे अधिक ८ दिन रहेगे ।

कोडरमा,
कार्तिक सुदि ११ स २०००

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(५ - ८)

श्रीयुत ब्र मनोहरलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपकी इच्छा जहाँ चाहे जाओ । जिसमे आपकी आत्माको शान्ति मिले, करो । करते भी वही हो । हमने लिखा सो मोहसे लिखा । हमारा विश्वास है - कोई किसीका न मित्र है न शत्रु, न हितकारी न विपरीत । मोहमे सर्व दिखा रहा है । मेरा निजका विश्वास है - वीतराग सर्वज्ञ भी किसीके हितकर्ता

नहीं । विशेष क्या लिखूँ । सिघईजी से दर्शन विशुद्धि । हमने जो लिखा था उसका उत्तर तुमने उनसे नहीं पूँछा । श्रुतपञ्चमीका उत्सव कर जाना अच्छा है ।

शुभ मिति ज्येष्ठ वदि १३, स २००२

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५ - ९)

श्रीयुत महाशय ब्र मनोहरलाल जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मुझसे कल सागरके महाशयोने जबरन सागर आनेके लिये वचन ले लिया । पहले तो मोटरमे चलो, नहीं तो डोलीमे चलो । युक्तियो की कमी नही थी । आपको चलना चाहिये - चाहे सुखसे पहुँचो, चाहे दुखसे पहुँचो । अस्तु मै कल चलूँगा । प्रबन्ध क्या है सो दैव है । मेरा भाव जो है सो आप जानते हैं । आप यदि मेरी सम्मति माने तब, मानोगे तो नहीं । जो मनमे आवेगी, करोगे । फिर भी गृहस्थोके चक्र मे न पडना तथा निरपेक्ष त्यागी रहना । पत्थर पर सोना पर चटाई न मॉगना । लॅगोटी न मिले तब द्रव्य मुनि ही बन जाना पर लॅगोटी न मागना । सूखी रोटी मिल जावे पर घी की इच्छा मत करना । मैं इन कष्टोको जानता हूॅ । यदि गर्मीके प्रकोपने न सताया तब दश दिन बाद आप त्यागी वर्गके क्षुल्लक महाराजोके दर्शन करूँगा । तथा विद्वानोके भाषण सुनूँगा । विद्वदगणसे मेरी जो उनके योग्य हो, कहना । कहना - विद्वत्ताकी प्राप्ति भाग्यसे होती है । जितना उसका उपयोग बने करलो । स्थायी वस्तु नहीं परन्तु स्थायी पदका कारण है । प्रात कालसे लू चलती है । फिर सागरवालोंने मेरे ऊपर परम अनुकम्पा की जो परीषह सहनेका अवसर दिया । क्या कहूँ, मेरी मोहकी सत्ता इतनी प्रबल है कि जो मै झटिति चक्रमे आ जाता हूॅ । मेरी जो भावना है सो वहीं पर कहूँगा ।

शाहगढ,

ज्येष्ठ सुदि ४, स २००४

आ.शु चि.

गणेश वर्णी

(५ - १०)

श्रीयुत महाशय ब्र मनोहरलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । उपदेश क्या लिखे - निरपेक्षता ही परम धर्म है । हम और आपको यही उपादेय है । मै पहिले सागरके लिये उन्हीं लोगो की सापेक्षताका पक्षपाती था । सिंघई जीसे बहुत कुछ आशा रखता था । परन्तु अब यही निश्चय किया जो हो अपनेको तटस्थ रखना । मै तो द्रोणगिरिसे बरुवासागर ही जाता था । साधनोके अभावसे यही 'पुनर्मूषको भव' की कथाको चरितार्थ करनेके लिये आ रहा हूँ। परन्तु उपयोग बरुआसागर पर है । आषाढ वदि ३ तक सागर पहुँचूँगा । २४ घण्टे गर्मी रहती है परन्तु इस गर्मीका तो प्रतिकार प्रतिदिन हो जाता है । जो आताप आत्मस्थ है, उसका प्रतिकार पास होने पर भी अभी दूर है । यह आताप जो बाह्य है उसका तो सरल उपाय है । प्राय सर्व ही उपकार कर देते है । जो आभ्यन्तर आताप है उसको दूर करनेके लिये किसीकी अपेक्षा को आवश्यकता नहीं । परकी सहायता न चाहना ही इसका मूल उपाय है । परन्तु हम लोग इसके विरुद्ध चलते है, यही महती भूल है । आने पर जो मेरा भाव है व्यक्त करूँगा ।

ज्येष्ठ सु १३, स २००४

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ११)

श्रीयुत प मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अब उत्तम है । अच्छे सयमका इतना भी फल न होगा क्या ? आप मेरी सर्व धर्मानुबन्धुओसे दर्शनविशुद्धि कहना । मेरा तो जबलपुरमे रहनेसे आभ्यन्तर लाभ नहीं हुआ । हाँ, इतना अवश्य हुआ, जनता प्रतिदिन ३००० से कम नही आती थी । श्रद्धापूर्वक शास्त्रमे बैठती थी । विशेष वक्ता प कस्तूरचद जी, प शिखरचन्द्र जी तथा ब्र चम्पालाल जी व हम भी प्रात सामान्य वक्ता हो जाते थे । शान्तिका उदय जब हममे ही नहीं, तब समाजको हमारे द्वारा शान्ति मिलना दुर्लभ है ।
जबलपुर

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - १२)

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहर वर्णी जी, योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे मुझे परम आनन्द हुआ । आप मेरे निमित्तका कोई भी विकल्प न करे । आपके प्रबन्धसे गुरुकुल की उन्नति हो यही हमारी भावना है । मै प्राय · सरल प्रकृतिके द्वारा प्रत्येक व्यक्तिके चक्रमे आ जाता हूँ । फल उसका विपरीत ही होता है । मेरा स्वास्थ्य अवस्थाके अनुरूप पक्पानसदृश है । परन्तु इससे मेरे चित्तमे अशान्ति नहीं । जब मेरी अन्तिम दशा होगी, आप को बुलाऊँगा । मुझे हृदयसे विश्वास है, जो आप मेरे समाधिमार्गमे आचार्यका कार्य करेगे । पवनकुमार निर्मल व्यक्ति है । वैयावृत्त्य तपके अधिकारी हैं । मेरा आशीर्वाद कहना । श्री जीवानन्दसे इच्छाकार तथा अन्य मण्डली महाशयोसे यथायोग्य इच्छाकारादि कहना ।

सागर

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५ - १३)

श्रीयुत ब्र मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

सुमेरचन्दजीका समागम आपको अचल बनावेगा । श्री चम्पालाल तो चम्पाकी सुगन्ध है । थिरताकी आवश्यकता कार्य जननी है । यहाँ से आप लोग चले गये, इसका हमे अणुमात्र भी खेद नहीं । आप कृतसफलीभूत है यह भावना है । इसका अर्थ परिणामोमें कर्तृत्वका अभिमान नहीं आना चाहिए । जितना दो लाखका होना कठिन नहीं उतना कर्तृत्वका अभिमान जाना कठिन है । दो लाख होने पर लौकिक प्रतिष्ठा मिल सकती है । कर्तृत्वभावनाके जानेसे अलौकिक सुख की प्राप्ति होना सरल है । यद्यपि आप तीनों (ब्र मनोहर, ब्र सुमेरचन्द तथा ब्र चम्पालाल) रत्नत्रय मिलकर, जो चाहे, सो कर सकेगे, किन्तु तीनोकी एकता न विघटना चाहिये । प्रतिज्ञाका निर्वाह करना तथा ऐसा करना जो कार्यमे सहायक होते हुए भी धर्मके पात्र हो ।

मढियाजी जबलपुर

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५- १४)

श्री महाशय १०५ क्षुल्लक सदानन्द जी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होंगे । ऑखके ऊपर फुडिया शान्त हो गई होगी । जीवानन्द वास्तव नित्यानन्द है । सन्तोषी हैं । और सर्व आनन्दोंसे इच्छाकार । विशेष क्या लिखें ? सहजानन्दके सामने अन्य सर्व आनन्द फीके हैं ।

कार्तिक सुदी १५, स २००५

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५ - १५)

श्रीयुत वर्णी जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । निरुद्देश्य बुलाना कोई तत्त्व नहीं रखता । निरुद्देश्य दिल्ली गये उसका कोई फल नहीं । ऐसे ही मुजफ्फरनगर बुलाकर क्या लाभ मिलेगा यह बुद्धिमे नहीं आता । केवल बाह्य धन्यवाद प्रणालीसे कृतकृत्य मान लेना मै उचित नहीं मानता । अभी आप वहॉ पर है और आपकी शान्तिसे वहॉका वातावरण अच्छा है हमको इसमे प्रसन्नता है, किन्तु हमारे आनेसे विशेष क्या होगा यह हमारे ज्ञानमें जब तक न आ जावे हम वहॉ आवें बुद्धि मे नहीं आता । अत आप पञ्च महाशयोंसे स्पष्ट कह दो - यदि कोई विशेष कार्य हो तब हमको लिखिए जो हम गयावालोसे इन्कार करनेका प्रयत्न करे, अन्यथा ऐसे उष्णकालमे यात्रा करे यह उचित नहीं ।

शास्त्र सुनते जावो, चौथा काल वर्त्त रहा है बोलते जावो, धन्य धन्यकी झकार करते जावो । मै तो इन बाह्य आडम्बरोसे ऊब गया हूँ । मैं तो उस दिनसे अपनेको मनुष्य मानूँगा जब पञ्चपरमेष्ठीका स्मरण भले ही न करे किन्तु उनने जो मार्ग बताया है उस पर अमल करे । तभी इस धर्मके मर्मको समझूँगा, अत हमारे अर्थ प्रयास न करना । हम अब इच्छापूर्वक जहाँ जावे जाने दो । वहाँ भी आ सकते हैं परन्तु आपकी प्रतिबन्धकता नहीं चाहते ।

जेष्ठ वदी ९, स २००६

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - १६)

श्रीयुत महाशय वर्णी मनोहरलालजी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । स्वास्थ्य बहुत ही बिगड़ गया था, एक पैर चलना कठिन था । अब अच्छा है । आज ५० हाथ चले । ज्वर प्रतिदिन आता है । अब आशा है वह भी शान्त हो जावेगा । मैं तो आपके प्रति निरन्तर यही भावना भा रहा हूँ जो आपकी वैयावृत्त्य किसीको न करना पडे तथा ऐसी वृत्ति शीघ्र ही हो जावे जो मांके स्तन न चूसने पडे । आप विज्ञ हैं । हमारी शल्य न करिये । बा जीवरामजीसे इच्छाकार तथा बा मूलचन्द जी से इच्छाकार ।

माघ वदी १, स २००६

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५ - १७)

श्रीयुत महाशय वर्णी मनोहरलालजी साहब, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मेरा तो यह विश्वास हैं कि ससारमें कोई किसीका नहीं, यह तो सिद्धान्त है । साथ ही यह निश्चय है कि कोई किसीका उपकारी नहीं । इसका यह अर्थ नहीं जो मैंने आपका उपकार किया हो और न यह मानता हूँ जो आप मेरा उपकार करेगे । हाँ यह व्यवहार अवश्य होगा जो वर्णीजीकी वर्णी मनोहरने सम्यक् सल्लेखना करायी । परन्तु मेरा तो यह कहना है - जो आपने गुरुकुलकी नींव डाली है उसे पूर्ण करिये । हमारी चिन्ता छोडिये । हमारी सल्लेखना हमारे भवितव्यके अनुकूल हो ही जावेगी । वहाँ पर जो ब्रह्मचारी सुन्दरलालजी उनसे इच्छाकार, श्री जीवारामजी से इच्छाकार । वहाँकी समाजसे यथायोग्य । वहाँ जो हकीमजी हैं उनसे आशीर्वाद ।

इटावा,
प्रथम आषाढ वदी १३, स २००७

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५ - १८)

श्रीयुत महानुभाव क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आप कैराना गये, अच्छा किया । मेरी सम्मत्ति तो यह है - वहॉ गर्मीके १० दिन या १५ दिन बिताकर आपको मुजफ्फरनगर ही रहना चाहिये । वहॉकी जनता बहुत ही धर्मापिपासु है । तथा धर्मापिपासुके साथ साथ उदार भी है । गुरुकुलकी रक्षा होगी तब उससे ही होगी । सहारनपुरका तो है ही, उनकी तो उस पर सदा देखरेख रहेगी ही । गुरुकुलसे उदासीन रहना सर्वथा ही अनुचित है । अत आप सर्व विकल्प छोड मुजफ्फरनगर जाइए । हम तो १५० मील दूर है । इस वर्ष तो किसी भी प्रकार नही आ सकते । बीचमे ही रहनेसे कुछ लाभ नही तथा अब हमारी शक्ति भी नही जो १ घटा भीडमे शास्त्र पढ सके । लोगो का प्रेम शास्त्र पढनेसे है, होना ही चाहिए । अगर शास्त्र न सुनाया है जावे तब वह क्यो इतना कष्ट उठावे । मेरी तो यही धारणा है - आज कल आदर्श मनुष्य तो विरला ही होगा । आदर्श और वक्ता यह तो अतिकठिन है । मेरी धारणा है, मिथ्या भी हो सकता है । अस्तु, अभी आपकी अवस्था इसके अनुरूप है । अत एक स्थानको लक्ष्य करके उसका उपयोग कर लो । उत्तरप्रान्तका गुरुकुल आपकी अमर कीर्ति रहेगी । इसका यह अर्थ नही कि आपको इच्छा यशकी है, परन्तु जनता तो यही कहेगी - वर्णी मनोहर हमारे प्रान्तका उपकार कर गए । हमारा तो न अब उपकारमे मन जाता है और न अनुपकारमे ही जाता है । इसका यह अर्थ नहीं जो इससे परे है । शक्तिहीनसे उपकार अनुपकार नहीं बन सकते । अन्तरङ्गसे तो कषाय अनुरूप परिणाम होते ही है ।

प्रथम आसाढ वदी १४, स २००७

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - १९)

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने प्रसन्नता हुई और आपका समागम मुझे इष्ट है । परन्तु आप जानते है - मै स्वप्नमे भी गुरु नहीं बनना चाहता । परमार्थसे है भी नहीं । सर्व आत्माएँ स्वतन्त्र है । जिसमे आपको शाति मिले सो करे ।

कार्तिक सुदी १, स २००७

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २०)

श्रीयुत महाशय वर्णी जी मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, हमारा स्वास्थ्य अच्छा है इसकी कोई चिन्ता न करो । आप सब विकल्प त्यागो । कोई प्रसन्न हो या कोई अप्रसन्न हो, अपनी आत्मा प्रसन्न रक्खो । आत्मीय परिणति ही कल्याणका प्रयोजक है । फिर आप तो जिनागमके मर्मज्ञ है । इतनी आकुलता क्यो रखते हो ? यदि गुरुकुल चलानेकी इच्छा है तब उस प्रान्तके जो विज्ञ पुरुष है उनके साथ परामर्श कर जो मार्ग निकले उस पर अमल करो । अन्यथा विकल्प छोडो ।

आ शु.चि.
गणेश वर्णी

(५ - २१)

श्रीयुत वर्णीजी क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्दसे है बॉचकर प्रसन्नता हुई । हम चैत्र सुदी १५ तक यहीं रहेगे और फिर भी ८ दिन और रहेगे । आप निर्विकल्प रहो और आत्मशुद्धि करो । कोई शक्ति न तो आत्मीय कल्याणमे बाधक है और न साधक है । हम स्वय साधक बाधक अपने परिणाम द्वारा उसे मान लेते है । इसका अर्थ यह नही कि निमित्त कोई नही - अर्थात् मोक्ष भी जब होगा तब उस समय क्षेत्रादि भी तो होगे, उन्हे कोन निवारण कर सकता है ? अत आनन्दसे धर्म साधन करो और किसीसे भय न करो । परिणाम मलीन न हो यही चेष्टा करो । हम क्या लिखे ? स्वय गल्पवादमे पडे है । हमको तो इसकी प्रसन्नता होती है जो कोई शुद्ध मार्गमे रहे ।

चेत्र सुदी १०, स २००८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २२)

श्रीयुत महाशय क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

अपवाद मार्ग भी है परन्तु उत्सर्ग निरपेक्ष नही । उत्सर्ग भी है परन्तु वह भी अपवाद निरपेक्ष नही । वह कब और किस प्रकार होता है इसका कोई नियम नही, साधकके परिणामो के ऊपर निर्भर है । आपने लिखा - मै अगहनमे आऊँगा । मुझे आपका सहवास सदा इष्ट है । इससे विशेष क्या लिखूँ ? मेरा वृद्ध शरीर चल नही

सकता । ४ मील चलना कठिन है । अस्तु जहाँ तक बनेगा निर्वाह करूँगा । मेरा श्रीयुत जीवारामजीसे स्नेह इच्छाकार कहना । वह बहुत ही सज्जन व्यक्ति हैं ।

बरुआसागर,
वैसाख बदी ४, स २००९

आ.शु.चि.
गणेशवर्णी

(५-२३)

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

मेरा तो यह विश्वास है जो परके कल्याण मार्गका कर्तृत्वभाव भी मोक्षमार्गका साधक नहीं । मोक्षमार्गका साक्षादुपाय रागादि दोषनिवृत्ति है । रागादिककी अनुत्पत्ति ही सवर है । रागादि निवृत्ति तो प्राणिमात्रके होती है । कितु रागादिकी अनुत्पत्ति सम्यग्ज्ञानी ही के होती है । अभी तो हम बरुवासागर हैं । अब तो पक्वपान है, न जाने कब झड जावे । श्रीजीवारामजीसे हमारा इच्छाकार कहना ।

बरुवासागर,
वैसाख वदी ९, स २००९

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५-२४)

श्रीयुत महाशय १०५ क्षुल्लक मनोहर वर्णी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । हमारा स्वास्थ्य अवस्थाके अनुकूल अच्छा है । पक्वपान हैं । हमको तो आपके उत्कर्ष मे आनन्द है । हमारा उपदेश न कोई माने, न हम देना चाहते हैं । हम स्वय अपनी आज्ञा नहीं मानते, अन्य पर क्या आज्ञा करे ? आप जहाँ तक बने चेतन परिग्रहसे तटस्थ रहना । जितना परिग्रह जो त्यागेगा सुखी होगा । विशेष क्या लिखे ? आप स्वय विज्ञ है । विज्ञ ही नहीं विवेकी है । जितने त्यागी हो सबको इच्छाकार ।

बरुवासागर,
वैसाख वदी ९, स २००९

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(५-२५)

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, हमारी तो श्रद्धा यह है - न हमारे द्वारा किसीका उपकार हुआ और न अन्यके द्वारा हमारा हुआ । निमित्त-नैमित्तिक सम्बम्धका हम निषेध नहीं करते । हम क्या कोई नहीं निषेध कर सकता । बोलना और बात है । आपका हमारा अन्तरङ्गसे सम्बन्ध है परन्तु यह भी एक कल्पना है । आपका बोध निर्मल है, अत जो आपका अन्तरङ्ग साक्षी देवे वही अगीकार करो । न तो हमारी बात मानो और न मित्रवर्गकी मानो । हम क्या कहें, होता यही है, परन्तु मोहकी कल्पनामें जो चाहे कहो। हमारा अब यही अभिप्राय है - एक स्थानमे शातिसे कालयापन करना । यह भी एक मोहकी कल्पना है । यदि आप हमारा अन्तरङ्गसे हित चाहते हो तब यह पत्रव्यवहार छोडो । दूसरी सम्मति यह है - इन मित्रवर्गोंको यही उपदेश दो कि त्यागमार्गमें आवे । केवल गल्पवादसे जल विलोलन सदृश कुछ तत्त्व नहीं । मुनि महाराजका स्वरूप तो आगममे है उसीसे सन्तोष करो । चरणानुयोगमें जानें । अ सु १४ को प्रात काल ललितपुर पहुँचेगे ।

आषाढ़ सुदी ११, स २००८

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५-२६)

श्रीयुत महाशय क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप स्वय योग्य हैं । कल्याणका आचरण कर रहे हैं । व्यर्थ की चिन्तामे कुछ लाभ नहीं । हम तो आपके सदा शुभचिन्तक ही नहीं शुद्धचिन्तक हैं । श्री जीवारामजीसे इच्छाकार ।

भाद्र बदी ११, स २००९

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५-२७)

श्रीयुत महाशय क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । ज्ञान पानेका फल यही है जो स्वपरोपरकार करना । मेरे वहाँ आने की अपेक्षा आप उसी प्रान्त मे रहे । आपके पास सम्यग्ज्ञान है और चारित्र भी है । हम तो कुछ उपकार नहीं कर सकते, क्योकि वृद्ध है । आप अभी तरुण है । सर्व कुछ कर सकते हो । हम का सु ३ को पपोरा जावेगे ।

ललितपुर

आ शु.चि.
गणेश वर्णी

(५-२८)

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक सहजानन्द जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । आप सानन्द पहुँच गये । यह सर्व जीवानन्दकी महिमा है । यह प्रसन्नताकी कथा है जो आपका फोडा अच्छा हो गया । हमारा अच्छा हो रहा है । उदयकी बलवत्ता मानना व्यर्थ है । यदि श्रद्धानमे विपरीतता आवे तब मै उसे उदयकी बलवत्ता मानता हूँ । या तो शारीरिक वेदना प्रतिदिन होती ही रहती है । आपके आनेमे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई । मेरा धार्मिक पुरुषो से यह कहना है जो यदि कल्याणका लाभ इष्ट है तब इन पर पदार्थो से मूर्च्छा त्यागो । कल्याणका सर्व से प्रचण्ड बाधक परममता है । जिसने इसे त्यागा उसने अनन्त ससारको मिटा दिया । मेरा सर्व आनन्दमूर्तियो से इच्छाकार कहना ।

ललितपुर,
अगहन बदी १, स २००८

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५-२९)

श्रीयुत क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे ? हमारा फोडा अब अच्छा है । २ मास पूर्ण सतत प्रयत्न करने पर उत्तम हुवा । यद्यपि हमारे मे उसकी योग्यता थी परन्तु कुछ कारणकूट भी थे ।

जिस समय डाक्टरने उसे चीरा उस समय सर्वके व्यापार पृथक् २ थे । फिर भी एक दूसरे का निमित्त था । हम अष्टमी तक आहार रहेगे ।

ललितपुर
पौष वदी ४, स २००८

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५-३०)

श्रीयुत क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

जहॉ पर विरुद्ध कारण के सद्भावमे शान्ति रहे प्रशसा तो तब है और जहाँ हाँ मिले वहॉ आत्मोत्कर्षकी वृद्धि नहीं होती । अस्तु, विशेष क्या लिखे ? आप तत्त्वज्ञ है । जिसमे आपको शान्ति मिले सो करिये । हमारा तो जीवन यो ही गया । शान्ति का स्वाद न आया, परन्तु रुदन करने से क्या लाभ ? श्रद्धा अटल रहनी चाहिये । चरणानुयोग के अनुसार आत्माको बनाना कल्याणप्रद नहीं । किन्तु हमारी प्रवृत्ति ऐसी हो जो उसे देखकर अनुमान करे कि व्रत तो यह है । भोजनादिके त्यागसे आत्महित नहीं, आत्महित तो अन्तरङ्ग निर्मल अभिप्रायसे है । श्री जीवानन्दजीसे इच्छाकार कहना ।

आ सु ९, स २००९

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(५-३१)

महाशय श्री १०५ क्षु मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपको मैं ज्ञानी और विरक्त मानता हूँ । मै अपने को कुछ नहीं मानता । मैने जिन बालको को पढाया था वे मुझे १० वर्ष पढा सकते है । मै उनको महान् मानता हूँ। मै तो कुछ जानता ही नहीं और न इससे मुझे दु ख है । आपको यही सम्मति दूगा जो तुम्हे समक्ष कहे उसको मानो, पर की सुनी मत मानो और शान्तभावसे कार्य करो । हमको गुरु मत मानो । अपनी निर्मल परिणतिको ही अपना कल्याणमार्ग मे साथी

मानो। रेलके यातायातमे विकल्प मत करो । जहाँ पर विशेष लाभ समझो जावो, न समझो मत जावो । हमसे आपका हित हुआ यह लिखना तुम्हारी कृतज्ञता है । यह भी भूषण है । किन्तु बात मर्यादित ही हितकर होती है । आत्मा ही गुरु है । वह जिस कार्य मे सम्मति देवे, करो ।

आ सु १०, स २००९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५-३२)

श्री वर्णी मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । जिसमे आपका कल्याण हो वही करो, आप ज्ञानी है । किसी के द्वारा कुछ नहीं होता । हमारी दुर्बलता जिस दिन चली जावेगी अनायास कल्याण हो जावेगा । मेरी तो यह श्रद्धा है जो दो द्रव्योका परिणमन एकरूप नहीं होता। हॉ सजातीय द्रव्यो मे एक स्कन्ध पर्याय अनेक पुद्गल परमाणुओ की हो जाती है फिर भी दो परमाणुको अन्य परमाणुओ के साथ तादात्म्य नहीं होता - ''तदात्वे व्यतिरेकाभावात् ।'' बद्धस्पृष्टत्वादि व्यवहारमे कोई बाधा नही । यदि इसको ही लोक तादात्म्य माने तब कोई आपत्ति नही । यही जीव और पुद्गलकी बद्धावस्थामे तादात्म्य मान ले तब लोको की इच्छा । किन्तु दो एक नहीं हो जाते । यदि ऐसा होता तब इसकी क्या आवश्यकता थी -

मिच्छत्त पुण दुविह जीव तहेव अण्णाणं ।।८७।।
जीवस्स दु कम्मेण सह परिणामा हि होंति रागादि ।।

इत्यादि, कर्त्ता-कर्म अधिकारकी गाथा देखो ।

हमारी तो यह श्रद्धा है - राग दूर करने की चेष्टा करना रागादि की निवृत्ति नहीं करता । रागमे जो कार्य हो उसमे हर्ष विषाद न करना ही उसके विनाशका कारण है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

नोट - जितनी उपेक्षा करोगे उतनी शान्ति पाओगे । सुख शान्ति का लाभ परमेश्वरकी देन नहीं, उपेक्षाकी देन है । परमात्मामे उपेक्षा करो - **इसका यह अर्थ नहीं** जो परसे सम्बन्ध छोड दो । छोड़ना वश की बात नहीं । वश की बात है यदि इस पर दृढ रहो । वासना तो और है करना कुछ और है । इसे त्यागो । अब विशेष पत्र देने का कष्ट न करना । विकल्प त्यागना अच्छा । हमको निज मानना अच्छा नहीं ।

(५-३३)

श्रीयुत महाशय क्षु मनोहरजी, योग्य इच्छाकार

क्या लिखू । यही भावना होती है - एकत्व अन्यत्व भावना जो है वही आत्मा को कल्याणपथप्रदा है, अत किसी एक स्थानमे रहकर उसी का ध्यान करु, क्योकि आज तक कुछ भी नही किया । अब कोईका आश्रय चाहना या किसीको देना दोनो ही विरुद्ध विचार है । अवस्था अनुकूल नहीं, कोई साथी नहीं, यह धारणावाला एकत्व अन्यत्व भावनाका पात्र नहीं । मेरी तो यह श्रद्धा है जो सम्यग्दृष्टि दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओ को नहीं चाहता, हो जाती है । मेरी तो अन्तरङ्गसे यह श्रद्धा है - वह शुभोपयोग को नहीं चाहता, हो जाना अन्य बात है । मुनिव्रत भी नहीं चाहता । वह तो कुछ नहीं चाहता । क्या आपको लिखू, क्योकि आप जो है सो मै उसका निर्वचन ही नहीं कर सकता । यह जानता हूँ जो आप हमें रमण करनेवाले है । कुछ मोहके नशेमें लिख मारा - जो मुझे कुछ उपदेश लिखिये । आप जो प्रतिदिन उपदेश करते हो वही अपनी ओर लावो । इससे अधिक क्या लिखू । तत्त्वसे मुझसे पूछिये तो इन गृहस्थो को उचित यह है जो ये अब स्वोन्मुख होवे । जो ५० वर्ष के हो गये, लडका आदि से पूर्ण है, एकदम निवृत्तिमार्ग के पथिक बने । धन्य धन्य वक्ता को दान देने मे कुछ न मिलेगा । मिलना तो उस मार्गमे गमन करने से होगा । मेरा जन्म तो यो ही गया । अब कुछ उस मार्गकी सुध आई सो शक्ति विकल हूँ परन्तु कुछ भयकी बात नहीं । आत्मद्रव्य तो वही है जो युवावस्था मे थी । दृष्टि परिवर्तन की आवश्यकता है । आपका जिसमे कल्याण हो सो करो, और क्या लिखे । परमार्थसे परोपकारी कोई नहीं। श्री जीवाराम जी को इच्छाकार ।

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(५-३४)

श्रीयुत महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप अब विकल्प न करे और न यह चिन्ता करे जो महारनपुरवाले द्रव्य न देवेगे । हमारा तो विश्वास है न कोई देनेवाला है और न कोई दिलानेवाला है और न कोई लेनेवाला है । व्यर्थ ही सकल्प विकल्पके जालसे यह नृत्य हो रहा है । इन्दौर जाने का विचार किया सो अति उत्तम है । आपको क्या लिखे वहाँ क्या करना, किन्तु यह अवश्य ध्यान रखना जो निरपेक्ष रहना । इस शब्दका अर्थ व्यापक लेना । ससार के काम चले चाहे न चले स्वय इसके कर्त्ता न बनना ।

जेठ सुदी ६

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५-३५)

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

दश लक्षण पर्व सानन्दसे गया । मैने आपका अपराध किया नहीं और न आपने मेरा किया, अत क्षमा मागना सर्वथा ही अनुचित है । हॉ यह अवश्य अपराध है जो मै आपको और आप मुझको अपना हितू समझते है । एतदर्थ ऐसी भावना भावो जो यह मान्यता समाप्त हो । तथा इतने नि शक रहो जो हमारा न कोई सुधार करता है और न इसके विरुद्ध करनेवाला है । मेरा यह विश्वास है जो सम्यग्दृष्टि श्रद्धासे तो केवली सदृश है । चारित्र-मोहकृत तरतमताका कोई लोप नहीं कर सकता । वह गुणस्थान परिपाटीसे होती है । मेरा आपके साथ जो भी ब्रह्मचारी हो उनसे इच्छाकार कहना ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५-३६)

श्रीयुत १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार,

पत्र आया, समाचार जाने । मुझे तो आनन्द इस बात का है जो आप अपने स्वरूपमे ही रत रहते है । श्रीमान् प बशीधर जी तो एक ही व्यक्ति है जो पदार्थो के अन्तस्तल को स्पर्श करते है । उनके विषयमे क्या लिखू ? उनके सद्भावसे प्राय बहुत

जीवो का कल्याण होगा । हमारा इच्छाकार कहना । तुम्हारी प्रतिभा ही तुम्हारे कल्याणमें सहायक होगी, अन्यके आश्रयकी आवश्यकता नहीं । हम वर्षायोग बाद कहा जावेगे निश्चय नहीं । जावेगे अवश्य । पैरो में विशेष शक्ति नहीं, अत ३ मील या ४ मील चलेगे । प्राय इसी प्रान्तमे जावेगे । आषाढ मास तक ललितपुर पहुँचेगे या आपके प्रान्तमे पहुचे असम्भव नहीं, परन्तु शक्ति पतितोन्मुख है ।

कार्तिक बदी ३, स २००९

आ.शु चि.
गणेश वर्णी

(५-३७)

श्रीयुत १०५ महाशय क्षुल्लक मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । पदार्थ का निरूपण विवक्षाधीन है । नयो के विषयमे लिखा सो ठीक । मेरी समझमे वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है । जो सामान्य को कहता है वह द्रव्यार्थिक है जिसका विषय केवल द्रव्य है । दूसरा विशेषको विषय करनेवाला है । उसे व्यवहारनय कहते है । इसमे अनेक विकल्प है । अस्तु, निमित्तको न माननेवाले ही निमित्त से काम ले रहे हैं । वहा निमित्तको न माननेवालों की प्रचुरता है, फिर आपको किस अर्थ ले गये कुछ समझमे नहीं आता । अस्तु, फोकट चर्चा निमित्त की है । मेरा तो यह विश्वास है जो यथार्थ निरूपण करनेवाला है वही सम्यक्त्वका निमित्त हो सकता है । सम्यक्त्व जिसके होगा उसकी श्रद्धा होगी तभी तो होगा । विशेष क्या लिखे ?

कार्तिक वदी १२, स २००९

आ शु चिं
गणेश वर्णी

(५-३८)

श्रीयुत महाशय क्षु. मनोहरजी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे निर्मल रहना चाहिये । परके लिये उपसर्गों से आत्माकी क्षति नहीं । आत्मीय निर्मलताकी त्रुटिसे आत्माकी क्षति होती है । एव परकी प्रशसासे आत्माकी कोई उत्कर्षता नहीं है केवल स्वशुद्धि ही कल्याणका मार्ग है । हम तो आज तक अपनी दुर्बलतासे ही फँसे, कोई फसानेवाला नहीं । अत जहॉ तक बने परकृत उपद्रवो

को उपद्रव न मानो, जो मनमे सक्लेशता होती है उसका मूल कारण मिटाओ । परमार्थ से वह भी औदायिक भाव है । सुतरा नाशमान है । कोई भी कुछ नहीं । निर्विकल्प रहना ही अच्छा है ।

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(५-३९)

श्रीयुत महाशय क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । जिसमे आपको शान्ति मिले वह करो । मेरा तो यह विश्वास है जो भी कार्य किया जाता है शान्ति अर्थ किया जाता है, तथा अपने ही हितके लिये किया जाता है । कार्य चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो । भद्र मानुष वही है जो लोकेषणासे परे है । मै तो रेल आदिके विकल्प को अनुपादेय समझता हू । जब आवश्यकता प्रतीत हुई बैठ गए, नहीं हुई नहीं बैठे । जगत कुछ कहे इसका विकल्प ही व्यर्थ है । मै तो चरणानुयोग इतना ही मानता हूँ - जिससे सक्लेश परिणाम हो मत करो। प जी से हमारी इच्छाकार । अतियोग्यतम् व्यक्ति है ।

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(५-४०)

श्रीयुत क्षु मनोहरलालजी, योग्य इच्छाकार

आपके २ पत्र मिले, मैने उत्तर दे दिया । आप सानन्द धर्म साधन करते है मुझे आनन्द है । ससारमे जिसने आत्मीय कल्याणको कर लिया यही महती महत्ता है । प्रशसा निन्दा तो कर्मकृत विकार है । जो मोक्षमार्गी है वह दोनो से परे है । यहा पर सरदी बहुत पडती है । अत मैने यही निश्चय किया जो दो मास एक स्थान ही पर बिताऊ ? आप भी मेरठ मुजफ्फरनगर आदि स्थानो पर ही बिताइए । यहा आना अच्छा नहीं । फागुन मासमे मै आपको लिखूगा । साथमे ब्रह्मचारी हो उनसे इच्छाकार। गृहस्थो से दर्शनविशुद्धि ।

अगहन बदी ८, स २००९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५-४१)

श्री १०५ क्षु मनोहरलालजी, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आत्मा की निर्मल परिणति ही स्वमार्ग मे सहायक होती है । अन्य सर्व व्यवहार है । अब इस प्रान्तमे आवो तब शीतऋतु बाद आना । तथा आपके पास जो त्यागी वर्ग हो उससे हमारा इच्छाकार कहना । स्वावलम्बन ही तो श्रेयोमार्ग है । आपका स्वास्थ्य अच्छा रहे इसमे आपका ही नहीं जनता का भी कल्याण है । हमारी तो अब वृद्धावस्था है । एक स्थान पर ही निवासकी इच्छा है, क्योकि अब विशेष भ्रमण नहीं कर सकते ।

अगहन सुदी ४, स २००९

आ शु.चि
गणेश वर्णी

नोट - हमारी तो यह भावना है - आप उसी प्रान्तमे एक केन्द्र बनावे जहाँ मुमुक्षु जीवो को स्थान मिल सके । ज्ञानचरित्र पाने का यही फल है ।

(५-४२)

श्रीयुत १०५ मनोहरलालजी क्षुल्लक, योग्य इच्छाकार

सानन्दसे धर्मसाधन करो, कोई किसी का नहीं । आत्मा सर्व रूपसे स्वतन्त्र है । आपने जो निर्मलता पायी है वह तुम्हारे ससारतट सान्निध्यताका कार्य है । इसका सदुपयोग कर ही रहे हो । विशेष क्या लिखे ? हम तो यही चाहते है जो किसीकी परतन्त्रता न हो । अब हमारा विचार एक स्थान पर रहनेका है । अभी यहीं पर ही हैं । यहा से प्रस्थान करेगे, लिखेगे ।

अगहन सुदी १३, स २००९

आ.शु चि.
गणेश वर्णी

(५ - ४३)

श्री १०५ क्षु मनोहरलाल वर्णी, योग्य इच्छाकार

यह तो ध्रुव सत्य है जो मोह के सद्भाव मे आत्मकल्याण असम्भव है । तथा मोह का अभाव कैसे हो इस चिन्ता से कुछ कार्य की सिद्धि नहीं । तत्त्वदृष्टिसे यह स्वाभाविक परिणमन तो है नहीं फिर भी तद्वत् ही अनादिसे आ रहा है । अनादि होने पर भी पर्य्यायोका अन्त देखा जाता है । अत इसके विषयमे चिन्ता करना मै उपयुक्त नहीं मानता । अब मेरा विचार एक स्थान पर रहनेका है । क्या होगा कुछ नहीं कह सकता ।

पौष वदी ३, स २००९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४४)

महाशय श्री १०५ क्षु मनोहरलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप स्वय बहुज्ञानी है किन्तु जहाँ तक बने उपेक्षास्त्र को न भूलना । रागाश भी राग ही है, अत प्रत्येक समयका भी बन्ध करनेवाला है । वैसे तो एक समय जो औदायिक राग होगा वह जितना होगा बन्धक और विकारी ही होगा । मेरी भावना अब गिरिराज पर ही रहने की हो गयी । यह प्रान्त छोड दिया है । आप को अब कुछ काल जबलपुर और सागरको भी देना चाहिये । मै आदेश नहीं करता । किन्तु प्रान्तका ध्यान जब तक राग है रखना ही चाहिये । विशेष क्या लिखू । मैं वैसाखमे जहा हूँगा आपको लिखूगा । मेरी तो वृद्धावस्था है, पक्वपान हूँ।

कटनी, का वदी ३०, स २००९

आ शु.चि
गणेश वर्णी

ब्र. चम्पालालजी सेठी

(श्रीमान् ब्र चम्पालाल जी सेठी का जन्म वि स १९५८ मे मन्दसौर मे हुआ था । पिताका नाम मुन्नालालजी और जाति खण्डेलवाल थी । सस्कृत शिक्षाके साथ इन्होने राजवार्तिक और पञ्चाध्यायी आदि उच्चकोटिके ग्रन्थोका अध्ययन किया था ।

गृहस्थावस्थामे रहते हुए भी इनका चित्त आत्मकल्याणकी ओर विशेष था, इसलिए धीरे धीरे ये गृहस्थावस्थासे निवृत्त होकर मोक्षमार्गमे लग गये । ये ब्रह्मचर्य प्रतिमाका उत्तम रीतिसे पालन करते थे ।

पूज्य वर्णीजी की चर्या और उपदेशोका इनके जीवन पर बडा प्रभाव पडा । उन्हीकी सलाहसे बहुत समय तक ये और श्रीमान् ब्र सुमेरचन्द्रजी भगत श्री १०५ क्षु मनोहरलालजी वर्णीके साथ रह कर उत्तरप्रान्तीय जैन गुरुकुल हस्तिनापुरकी सेवा करते रहे । कुशल वक्ता होने से इनका समाज पर स्थायी प्रभाव दृष्टिगोचर होता था ।

सम्भवत इनका स्वर्गवास वी नि २४८० मे कुण्डलपुरमे हुआ था । ऐसे योग्य व्यक्तिके असमयमे उठ जानेसे समाजकी महती क्षति हुई है । यहा पर पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे और इनके अन्य साथियोको सयुक्तरूपमे लिखे गये पत्र दिये जाते है ।)

(६ - १)

श्रीयुत महाशय पं मनोहरलालजी व ब्र श्रीयुत चम्पालालजी योग्य इच्छाकार

बनारस मे सर्वार्थसिद्धि उत्तम सस्करण मे छप रही है । अत आप भी गुरुकुल के वास्ते २५ पुस्तके ले लो । मूल्य पहले भेजने से जल्दी मुद्रित हो जावेगी । २००/- में २५ पुस्तके आजावेगी । प फूलचन्दजी छपा रहे है । पुस्तक अच्छी लिखी है ।

(६ - २)

योग्य इच्छाकार

आप लोग सानन्दसे रहे । कषायकी समानता ही मे लक्ष्य की सिद्धि होगी । एकजन्य मैत्रीभाव रखना क्या कठिन है, आप लोग विज्ञ है । उसका उपयोग करना ही

तो कल्याणपथका साधक है । हम ८ दिन बाद जबलपुर पहुँचेगे । इसका यह अर्थ न लगाना जो हम आपको उपदेश करते है । प्रत्युत यह अर्थ करना जो आपकी सद्भावनाको पुष्ट करते है । स्वास्थ्यके लिये द्वितीयेन्द्रिय पर विजय आवश्यक है । इन्द्रियोमे रसना, व्रतोमे ब्रह्मचर्य, गुप्तिमे मनोगुप्ति, कर्ममे मोहनीय प्रबल हैं । हम तो आजन्म असम्बद्ध मन रहे । उसका फल अच्छा नहीं पाया । अत अनुभवसे कहते है कि मनोवृत्ति स्वच्छ रखना शूरका काम है । आप दोनो शूर है । अत उसमे वृद्धि करना ।

शान्तिकुटी, मढियाजी जबलपुर

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(६ - ३)

श्रीयुत महाशय प मनोहरलालजी व श्रीयुत प चम्पालालजी व श्रीयुत त्यागी सुमेरुचन्द्रजी योग्य इच्छाकार

मेरी तो यह सम्मति है जो उस प्रान्तमे मेरठ की आव-हवा बहुत उत्तम है, परन्तु हम लोगो मे इतनी उदारता कहॉ जो अपने द्रव्यको दूसरी जगह प्रदान करे ? परकी मूर्च्छा ही परिग्रह है । अपने रागादिको दूर करने का उपाय यही है जो इन पर पदार्थोके साथ उपेक्षा का व्यवहार किया जावे । जिस वस्तुको हम दु खकर जानते हैं उसको देकर भी अपनाते है ! इस त्यागका कोई महत्त्व नहीं । सबसे महती त्रुटि तो हम लोगो मे यह है जो हम दान देकर कर्त्ता बनते है । कर्त्ता ही नहीं यहॉ तक अभिमानकी मात्रा बढ जाती है जो अन्यको तुच्छ देखने लगते है । जो देकर मान चाहते हैं उनने लोभ का त्याग नहीं किया । यदि लोभ करते मान न मिलता । अस्तु, जो बने सो करो । दु खी न होना, पर पदार्थो का परिणमन स्वाधीन नही । हमको बडे वेगसे पुराने मित्रने वही रूप दिखाया जो ईसरीमे था । आज रात्रि बडे सानन्दसे बीती । नींद का नाम न था । ससारमे यही होता है । आप लोक व्यग्रतामे न पडना । जितनी विशुद्धि रखोगे उतना ही जल्दी काम बनेगा । और जितनी अहम्बुद्धि करोगे देर से काम होगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(६ - ४)

श्रीमान् महाशय ब्र मनोहरलालजी व श्रीमान् महाशय सेठी चम्पालालजी व महोदय सुमेरचन्द जी, योग्य इच्छाकार

आप लोग सानन्द कालका सदुपयोग कर रहे है, यह अपार हर्षका सुअवसर है। किन्तु इतनी हमारी आशा है जो आगामी चतुर्मास्यमे आप लोगो का शुभ समागम हमको प्राप्त हो । यद्यपि आप लोग विज्ञ है तथा साथमे ससारसे भयभीत भी है । शायद समागममे उसकी त्रुटि आप लोग देखे । तथापि जहॉ तक होगा हमसे त्रुटि न होगी ।

जगत एक जाल है । इसमें हम जैसे अल्प सत्त्ववालो का फॅसना कोई बड़ी बात नहीं आप सानन्दसे जीवन बिताओ ।

मडियाजी पो गढा (जबलपुर)

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(६ - ५)

योग्य इच्छाकार

आप लोगो का पत्र खूबचन्दजीके पास आया । बाचकर आनन्द हुआ । प्रारम्भ मे तो ऐसा ही होता है । अस्तु, यदि नगरवासियो का अन्तरङ्ग न हो, तब तो प्रयास न करना ही श्रेयस्कर होगा । यदि नगरवाले अन्तरङ्गसे इसे अपनावे तब जो विचार है, उपयोग मे लाना । यहॉ भी वही प्रश्न है - स्नातक होने बाद क्या करेगे, क्या भिक्षा मॉगेगे ? जो भिक्षा एक दिन अमृत माना जाता था आज वह विषरूप हो गया । जो वैयावृत्ति, एक दिन आभ्यन्तर तपकी गणनामे थी तथा निर्जराकी साधक थी, आज वही तप ग्लानिमे गणनीय हो गया। यह सब हमारी अज्ञानता का विलास है । जो सिद्धान्तका ज्ञान आत्म-परके कल्याण का साधक था आज उसे लोगोने आजीविकाका साधन बना रक्खा है । जिस सिद्धान्तके ज्ञानसे हम कर्मकलङ्कका प्रक्षालन करने के अधिकारी थे, आज उसके द्वारा धनिकवर्गोका स्तवन किया जाता है ! यह सिद्धान्तका दोष नहीं, हमारी मोहकी बलवत्ता है । अत हमको निज परिचयके साधक सिद्धान्तका सदुपयोग कर, कल्याणपथको सरल बनाना चाहिए ।

आप लोगोसे मेरा यह कहना है, जहाँ तक बने, चन्दा करना, परन्तु दैन्यभाव न आवे । आत्मा अनन्तज्ञानका पात्र है तथा अनन्तसुखका धनी है । परन्तु हम अपनी अज्ञानताके ही वशीभूत हो दुर्दशा के पात्र बन गए है । आपका समागम हमे इष्ट है; परन्तु आप लोग ही चले गए । हम प्रतिज्ञा करते हैं - आप लोग जो कहेगे, करेगे । किन्तु एक वर्ष एक प्रान्त मे रहनेका विचार है । अनन्तर जहाँ आप कहेगे, वहाँ ही चलेगे । किन्तु आप लोगोको स्थिर रहना चाहिए । अथवा जहाँ आप लोगोका उपयोग स्थिर हो, रहिए । कल्याणका लक्ष्य रखिए । मैं यह आग्रह नहीं करता जो यहीं ही आना चाहिए । उदयाधीन कार्य होता है । हम भी उसीके आधीन है । फिर विकल्प क्यो करना । जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे । अथवा जो भवितव्य होगा सो होगा, क्यो विकल्प करना ।

पौष वदी १०, स २००२

आ शु.चि.
गणेश वर्णी

(६ - ६)

योग्य इच्छाकार

भगवन् ! आपका सघ रत्नत्रयका कार्य करे । मै तो चम्पाको सम्यग्दर्शन, मनोहरको सम्यग्ज्ञान, भगतको सम्यकचारित्र समझता हूँ । यदि आप लोग सघशक्तिसे काम लेवेगे तब अवश्य सफलीभूत होगे, अन्यथा नहीं । हमारे प्राचीन मित्र (मलेरिया) दो घटेको आते है और यह उपदेश करते है - सचेत हो जाओ । तुम्हारी इतनी भी शक्ति नही जो हमसे सम्बन्ध छोड सको, तब भला ससारसे सम्बन्ध छोडोगे, दूर है । **कल्याणके पथमे सर्वसे बाधक लोकेषणा है, जिसको प्राय: त्यागी गण अपनाने लगे है ।** कहनेको तो हम भी कहते है, आप लोग भी कहते है । परन्तु यह गल्पवाद है । न मानो, हृदयसे पूँछ लो । आप लोगोसे जो हमारा सम्बन्ध है वह ही एक तरहकी बला है । मै तो इसे भी रोग मान रहा हूँ ।

पौष सुदि १३, स २००२

आ शु चि
गणेश वर्णी

(६ - ७)

योग्य इच्छाकार

आप जानते है, ससारकी पद्धति इतनी गम्भीर है जो इसका अनुभव प्रत्येकको नहीं हो सकता । व्यर्थ ही मायावी बनते हैं । सर्वसे प्रबल यही कषाय है । इसका जलाना अति कठिन है । मेरा तो यह विश्वास है जो मै अपनी रक्षा अभी तक इन कषायोसे नही कर सका । पत्र लिखनेमे सकोच होता है । केवल सस्कारके बलसे लिख देता हूँ । निर्मलता कुछ और है, कह देना कुछ और है । मेरी वहाँ के सर्व बन्धुओसे दर्शनविशुद्धि । यदि वास्तवमे गुरुकुल खोलना है तब वह छात्र उत्तरकालमे क्या करेगे, इस विकल्पको त्यागकर निर्ममत्वसे द्रव्यका सदुपयोग करिये और यथोचित करिये । उत्तम विद्वानको अध्यापक रखिए । वह छात्र प्रवेश करिये जो अपना जीवन इसमे लगा देवे । जिनको उत्तरकालमे आजीविकाकी चिन्ता रहेगी वह इस विद्यासे प्रेम न करेगे । तथा आप ऐसा प्रबन्ध करिये जो स्नातक निकलेगे, उन्हे आजन्म १००/- मासिक यह सस्था देगी इत्यादि । हम तो जबलपुर आकर फँस गए। कोई वास्तविक लाभ न हुआ । डेढ लाख देकर भी यही चिन्ता लोगोको है कैसा शिक्षण दिया जावे । हमारा स्वास्थ्य अब पक्वपत्रके सदृश है, परन्तु हमें चिन्ता नहीं ।

पौष सुदी ५, स २००२

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(६ - ८)

योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे । आज हम बाहर जा रहे हैं । ससारकी लीला देख ज्ञाता-दृष्टा रहना । कोई पदार्थका किसी पदार्थसे तात्त्विक सम्बन्ध नहीं । जो है उसे कोई वरण नहीं कर सकता यह हम भी जानते है । आप तो तीन है फिर भी मोहकी बलवत्ता प्रबल है जो बलात्कार परको आत्मीय मानता है तथा परको मनानेकी चेष्टा करता है । यही बात हममे है । इसीसे दु खी है, थे और रहेगे । परन्तु यह जो लिख रहे है सो अन्त करण से । इससे यह निश्चय है जो जिनवाक्यमे श्रद्धा है यही इस जालसे मुक्त होनेका मार्ग है ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(६ - ९)

योग्य इच्छाकार

कषायका परिणमन जिस समय आत्मामे हो रहा है उसका ज्ञान सम्यग्दृष्टिके है तब उस समय भेदज्ञानमे कौन सी बाधा है । जिस समय मुनि अपने उपयोग द्वारा आर्त्तध्यानरूप हो रहा है उस समय क्या उसके भेदविज्ञान नहीं है ? कषायसे भेदज्ञानमें बाधा नही । वास्तवमे भेदविज्ञानका बाधक मिथ्यात्व है । उसका जिसके अभाव हो गया उसके सर्व अवस्थामे ज्ञान सम्यक् है ।

मेरा स्वास्थ्य यथा अवस्था कभी अच्छा और कभी विपरीत हो जाता है । सर्वसे बडी अनुकम्पा मलेरियाकी रहती है । वह चिरपरिचित है । अत उसके सद्भावसे मै प्रसन्न हूँ । एक प्रकारकी असाताकी उदीरणा अनेक प्रकारकी वेदनासे उत्तम है । जिस कार्यको प्रारम्भ किया उसे पूर्ण करना । हमारे सदृश अव्यवस्थित चित्त न होना । **जिनधर्मका विकास धार्मिक संस्थाओसे ही होगा** । स्वास्थ्यसे यह कार्य कम नही । निर्जराका कारण तो अन्तरङ्ग मोहकी कृशता है । सो कार्यके कर्त्ता अभिप्रायसे न बनो । वचनोमे कर्तृत्वव्यवहार बन्धका साधक नही ।

आप तीनोकी एकता ही कार्यकी साधक होगी । विशेष क्या लिखे - चपलता न करना । मेरा वकील सा व मुख्तार सा से दर्शनविशुद्धि कहना । यहाँसे क्षुल्लकजी व चिदानन्दजी चले गए । सागरमे श्री चिदानन्दजी है । आप किसीके कहनेमे न आना। यह उदासीनाश्रम कुछ नही, समाजका पैसा बर्बाद करने का एक यह भी फालतू कार्य है ।

माघ वदी १३, स २००२

आ शु चि
गणेश वर्णी

(६ - १०)

योग्य इच्छाकार

भेदविज्ञानका अनुभव हो, चाहे कषायका अनुभव हो, बन्ध का कारण अन्तरङ्ग अभिप्राय है । मेरा भी यही विश्वास है - जिस समय अविरतसम्यग्दृष्टि विषयानुभव करता है उस समय तथा जिस समय वह स्वात्मानुभव करता है उन दोनो अवस्थाओमे

चतुर्थगुणस्थान ही तो रहता है । कषायकी तरतमता रही, विशेष कुछ नहीं । तथा एक कालमे दो अनुभव नहीं होते । पत्र पहिले दिया है सो जानना । मेरा श्री नेमिचन्दजी वकील तथा रतनचन्दजी साहबसे दर्शनविशुद्धि ।

कार्तिक सुदी १५

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(६ - ११)

योग्य इच्छाकार

मैने आपसे आनेको कह दिया था, परन्तु पश्चात् आत्माने निषेध कर दिया । अत अब नही आऊँगा । देखो ! ससारमे सर्वसे बडा बन्धन स्नेहका है । यही मूल ससारकी है । ससारमे जिसने स्नेह त्याग दिया वही परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका पात्र होता है । मै बहुत विचार करता हूँ जो इन गृहस्थोके चक्रमें न आऊँ । परन्तु ऐसी परिस्थिति है जो इस चक्रसे निकलना कठिन है । यह विचार किया था जो गोदरेके बागमे इस आपत्तिसे बच जाऊँगा सो वहाँ भी वही आपत्ति । प्रथम तो गृहस्थका बाग एक चक्र, दूसरा भोजन आगमविरुद्ध, तीसरा जो चाहे जब चाहे आता है और उपदेश दे जाता है । जो आता है गुरु बनकर ही आता है, शिष्य कोई नहीं बनना चाहता । यही कहा जाता है कि आपकी सरलता ही आपके गुणोके विकासमे बाधक है, वास्तविक बात है । मनमे आता है कि निर्जन स्थानमे रहू । शक्तिविकलता रोक देती है । स्थान ऐसा नहीं जो ग्राममे आकर चर्चा करूँ, पश्चात् स्वतन्त्र धर्मसाधन करूँ । परन्तु मै अपने अनुभवसे कहता हूँ जो मै इनके चक्रमे पड गया हूँ, परन्तु आपको सम्मति देता हूँ जो इस चक्रमे न पडना ।

लाला सुमेरचन्दजी ! आप अधिष्ठाता पदके व त्यागीसम्मेलनके चक्रमे न पडो । श्री मनोहर तो निकल गये । आप लोगोको निकलने का मार्ग बता गए । कल श्री चिदानन्दजीके त्यागके अवसर पर अवश्य आऊँगा । आजके दिन ये भाव हैं । कभी स्थिर भी हो जावेगे ।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र. दीपचन्द्रजी वर्णी

(श्रीमान् ब्र दीपचन्द्रजीका जन्म होशगाबाद जिलेके नरसिहपुरमे माघ शुक्ला ५ वि स १९३६ को हुआ था । पिताका नाम बजाज नाथूरामजी और जाति परवार थी । इनकी शिक्षा हिन्दीमे नार्मल तक और इगलिशमे मिडिल तक हुई थी । अभ्यास द्वारा चित्रकला और सिलाई आदिमे तथा ब्रह्मचारी होनेके बाद धर्मशास्त्रमे इन्होने विशेष दक्षता प्राप्त की थी ।

इनके क्रमश दो विवाह हुए थे । किन्तु दोनो पत्नियोका वियोग हो जाने पर इनका चित्त प्रपञ्चसे हटकर आत्मसाधनाकी ओर गया । ब्रह्मचर्य व्रत लेनेके पूर्व कुछ दिन तो ये पिताजीके साथ व्यापार करते रहे और उसके बाद शिक्षकका कार्य करने लगे।

इनकी दूसरी पत्नीका वियोग वि स १९६० मे हुआ था । अनन्तर १९६३ मे इन्होने श्री १०५ ऐलक पन्नालालजीके पास ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ले ली और कुछ काल बाद पूज्य वर्णीजी या पूज्य बाबा भागीरथजीके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की ।

ये स्वभावके बडे निर्भीक और कर्तव्यनिष्ठ थे । लेखक और वक्ता भी उत्कृष्ट कोटिके थे । सागर विद्यालय व दूसरी सस्थाओ की सार सम्हाल करना और समाजकी सेवा करते रहना यही इनकी दिनचर्या थी । सक्षेपमे ऐसा निष्ठावान् समाजसेवी त्यागी होना दुर्लभ है । फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा वि स १९९४ को समाधिपूर्वक इन्होने इह लीला समाप्त की थी ।

पूज्य वर्णीजीमे इनकी विशेष भक्ति होनेसे अनका अधिकतर समय उन्हीके सानिध्यमे व्यतीत होता था । यदा कदा वियोग होने पर उसकी पूर्ति पत्रव्यवहारसे होती थी । उनमेसे उपलब्ध हुए पत्र यहा दिये जा रहे है ।)

(७ - १)

श्रीमान् वर्णीजी, योग्य इच्छाकार !

पत्र न देनेका कारण उपेक्षा नही किन्तु अयोग्यता है । मै जब अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो उपदेश देनेकी कथा तो दूर रही अभी मै सुनने और बाचनेका भी पात्र नहीं।

वचन चतुरतासे किसीको मोहित कर लेना पाण्डित्यका परिचायक नही । श्रीकुदकुदाचार्यने कहा है -

किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्तउववासो ।
अज्झयणमोणपहुदी समदारहियस्स समणस्स ।।

अर्थ - समताके बिना वननिवास और कायक्लेश तथा नाना उपवास तथा अध्ययन मौन आदि कोई उपयोगी नही । अत इन बाह्य साधनोका मोह व्यर्थ ही है । दीनता और स्वकार्यमे अतत्परता ही मोक्षमार्गका घातक है । जहॉ तक हो इस पराधीनताके भावोका उच्छेद करना ही हमारा ध्येय होना चाहिये । विशेष कुछ समझमे नही आता । भीतर बहुत कुछ इच्छा लिखनेकी होती है परन्तु जब स्वकीय वास्तविक दशापर दृष्टि जाती है तो अश्रुधाराका प्रवाह बहने लगता है । हा आत्मन् ! तूने यह मानव पर्यायको पाकर भी निजतत्त्वकी ओर लक्ष्य नहीं दिया । केवल इन बाह्य पचेन्द्रिय विषयोकी निवृत्तिमे ही सतोष मानकर ससारको क्या अपने स्वरूपका अपहरण करके भी लज्जित न हुआ ।

तद्विषयक अभिलाषाकी अनुत्पत्ति ही चारित्र है । मोक्षमार्गमे सवरतत्त्व ही मुख्य है । निर्जरा तत्त्वकी महिमा इसके बिना स्याद्वाद शून्यागम अथवा जीवनशून्य शरीर अथवा नेत्रहीन मुखकी तरह है । अत जिन जीवोको मोक्ष रुचता है उनका यही मुख्य ध्येय होना चाहिये कि जो अभिलाषाओके उत्पादक चरणानुयोगोंकी पद्धति प्रतिपादित साधनोकी ओर लक्ष्य स्थिर कर निरतर स्वात्मोत्थ सुखामृतके अभिलाषी होकर रागादि शत्रुओकी प्रबल सेनाका विध्वस करनेमे भागीरथ प्रयत्न कर जन्म सार्थक किया जावे किन्तु व्यर्थ न जावे इसमे यत्नपर होना चाहिये । कहॉतक प्रयत्न करना उचित है ? जहॉतक पूर्ण ज्ञानकी पूर्णता न होय ।

तावदेव भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया ।
यावत्तावत्पराच्च्युत्वा ज्ञान ज्ञाने प्रतिष्ठितम् ।।

अर्थ - तबतक ही यह भेदविज्ञान अखडधारासे है कि जब तक परद्रव्यसे रहित होकर ज्ञान ज्ञानमे (अपने स्वरूपमे) ठहरता है, क्योकि सिद्धिका मूलमत्र भेदविज्ञान ही है । वही श्रीआत्मतत्त्वरसास्वादी अमृतचन्द्र सूरिने कहा है -

भेदविज्ञानत: सिद्धा: सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ।।

अर्थ - जो कोई भी सिद्ध हुये हैं वे भेदविज्ञानसे ही सिद्ध हुये हैं और जो कोई बधे हैं वे भेदविज्ञानके न होनेसे ही बन्धको प्राप्त हुये हैं ।

अत अब इन परनिमित्तक श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके प्रयत्नमें समयका उपयोग न करके स्वावलबनकी ओर दृष्टि ही इस जर्जरावस्थामे महती उपयोगिनी रामबाण तुल्य अचूक औषधि है । तदुक्तम् -

इतो न किंचित् परतो न किंचित् यतो यतो यामि ततो न किंचित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित् स्यत्मावबोधादधिकं न किंचित् ।।

अर्थ - इस तरफ कुछ नहीं है और दूसरी तरफ भी कुछ नहीं है तथा जहा जहां मै जाता हूँ वहा वहा भी कुछ नहीं है । विचार करके देखता हूँ तो यह संसार भी कुछ नहीं है । स्वकीय आत्मज्ञानसे बढकर कोई नहीं है ।

इसका भाव विचार स्वावलबनका शरण ही ससारबधनके मोचनका मुख्य उपाय है । मेरी तो यह श्रद्धा है जो सवर ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका मूल है ।

मिथ्यात्वकी अनुत्पत्तिका नाम ही तो सम्यग्दर्शन है और अज्ञानकी अनुत्पत्तिका नाम सम्यग्ज्ञान तथा रागादिककी अनुत्पत्ति यथारव्यातचारित्र और योगानुत्पत्ति ही परम यथाख्यात चारित्र है । अत सवर ही दर्शन-ज्ञान-चारित्राराधनाके व्यपदेशको प्राप्त करता है तथा इसीका नाम तप है, क्योकि इच्छानिरोधका नाम ही तप है ।

मेरा तो दृढ विश्वास है जो इच्छा का न होना ही तप है । अत तप आराधना भी यही है । इस प्रकार सवर ही चार आराधना है, अत परसे श्रेयोमार्गकी आकाक्षाका त्याग ही श्रेयोमार्ग है ।

सागर

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(७ - २)

श्रीयुत् महानुभाव प दीपचन्दजी वर्णी, इच्छाकार

कारणकूट अनुकूलके असद्भावमे पत्र नहीं दे सका । क्षमा करना । आपने जो पत्र लिखा वास्तविक पदार्थ ऐसा ही है । अब हमे आवश्यकता इस बातकी है कि

प्रभुके उपदेशके अनुकूल प्रभुकी पूर्वावस्थावत् आचरण द्वारा प्रभु इव प्रभुताके पात्र हो जावे यद्यपि अध्यवसान भाव पर निमित्तक हैं । यथा-

न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः ।
तस्मिन् निमित्तं पर संग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ।।

आत्मा आत्मा सबधी रागादिककी उत्पत्तिमें स्वय कदाचित् निमित्तताको प्राप्त नहीं होता है । अर्थात् आत्मा स्वकीय रागादिकके उत्पन्न होनेमे अपने आप निमित्त कारण नहीं है किन्तु उनके होनेमे परवस्तु ही निमित्त है । जैसे अर्ककान्त मणि स्वय अग्निरूप नहीं परणमता है किन्तु सूर्यकिरण उस परिणमनमे कारण है । तथापि सत्ता परमार्थकी गवेषणामे वह निमित्त क्या बलात्कार अध्यवसान भावके उत्पादक हो जाते हैं ? नहीं, किन्तु हम स्वय अध्यवसानमे उन्हे विषय करते हैं । जब ऐसी वस्तु मर्यादा है। तब पुरुषार्थकर उस ससारजनक भावोके नाशका उद्यम करना ही हम लोगोकी इष्ट होना चाहिये । चरणानुयोगकी पद्धतिमे निमित्तकी मुख्यतासे व्याख्यान होता है और अध्यात्मशास्त्रमे पुरुषार्थकी और उपदानकी मुख्यतासे व्याख्यान पद्धति है और प्राय हमे इसी परिपाटीका अनुसरण करना ही विशेष फलप्रद होगा । शरीरकी क्षीणता यदि तत्त्वज्ञानने बाह्यदृष्टिसे कुछ बाधक है तथापि सम्यग्ज्ञानियोकी प्रवृत्तिमें उतना बाधक नहीं हो सकती यदि वेदनाकी अनुभूतिमे विपरीतताकी कणिका न हो तब मेरी समझमें हमारी ज्ञानचेतनाकी कोई क्षति नहीं है ।

विशेष नहीं लिख सका । आजकल यहा मलेरियाका प्रकोप है । प्राय बहुतसे इसके लक्ष्ये हो चुके हैं । आप लोगोकी अनुकम्पासे मैं अभी तक तो कोई आपत्तिका पात्र नहीं हुआ । कलकी दिव्य ज्ञान जाने । अवकाश पाकर विशेष पत्र लिखनेकी चेष्टा करूँगा ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(७ - ३)

श्रीयुत महाशय दीपचन्दजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया । आपके पत्रसे मुझे हर्ष होता है और आपको मेरे पत्रसे हर्ष होता है यह केवल मोहज परिणामकी वासना है । आपके साहसने आपमे अपूर्व स्फूर्ति

उत्पन्न कर दी है । यही स्फूर्ति आपको ससार यातनाओसे मुक्त करेगी । कहने और लिखने और वाकचातुर्य्यमे मोक्षमार्ग नहीं । मोक्षमार्गका अकुर तो अत करणसे निज पदार्थमे ही उदय होता है । उसे यह परजन्य मन, वचन, काय क्या जाने । यह तो पुद्गल द्रव्यके विलास है । जहा पर इन पुदगलकी पर्यायोने ही नाना प्रकारके नाटक दिखाकर उस ज्ञाता दृष्टाको इस ससारचक्रका पात्र बना रक्खा है । अत अब तमोराशिको भेदकर और चन्द्रसे परपदार्थ जन्य आतापको शमन कर सुधासमुद्रमे अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होनेकी योग्यताके पात्र बनिये । वह पात्रता आपमे है । केवल साहस करनेका विलम्ब है । अब इस अनादि ससार जननी कायरताको दग्ध करनेसे ही कार्य सिद्धि होगी । निरन्तर चिन्ता करनेसे क्या लाभ, लाभ तो आभ्यन्तर विशुद्धि से है । विशुद्धिका प्रयोजन भेदज्ञान है । भेदज्ञानका कारण निरन्तर अध्यात्मग्रन्थोकी चिन्तना है । अत इस दशामे परमात्म-प्रकाशग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा । उपयोग सरल रीति से इस ग्रन्थमे सलग्न हो जाता है । उपक्षीण कायमे विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्यका बाधक होता है, अत आप सानन्द निराकुलतापूर्वक धर्मध्यानमे अपना समय यापन कीजिये । शरीरकी दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही हैं । जो दशा आपकी है वही प्राय सबकी है, परन्तु कोई भीतरसे दु खी है तो कोई बाह्यमे दु खी है । आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तवमे अघातिकर्म आसाताकर्मजन्य है । वह आत्मगुणघातक नही । आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है । जो कि आत्मगुणघातक है । अत आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दु खके पात्र नही । अत आपको अब बडी प्रसन्नता इस तत्वकी होनी चाहिये जो मै आभ्यन्तर रोगसे मुक्त हूँ ।

मढियाजी जबलपुर

आ शु चि
गणेश वर्णी

प छोटेलालमे दर्शनविशुद्धि । भाई साहब एक धर्मात्मा और साहसी वीर है उनकी परिचर्या करना वैयावृत्य तप है जो निर्जराका हेतु है । हमारा इतना शुभोदय नही जो इतने धीरवीर वरवीर दुखसीद बन्धुकी सेवा कर सके ।

(७ - ४)

श्रीयुत वर्णीजी, योग्य इच्छाकार

पत्र मिला । मै बराबर आपकी स्मृति रखता हूँ किन्तु ठीक पता न होनेसे पत्र न दे सका । क्षमा करना । पैदल यात्रा आप धर्मात्माओके प्रसाद तथा पार्श्वनाथ प्रभुके चरणप्रसादसे बहुत ही उत्तम भावोसे हुई । मार्गमे अपूर्व शाति रही । कटक भी नहीं लगा । तथा आभ्यन्तरकी भी अशान्ति नही हुई । किसी दिन तो १९ मीलतक चला । खेद इस बातका रहा कि आप और बाबाजी साथमे न रहे । यदि रहते तो वास्तविक आनन्द रहता । इतना पुण्य कहाँ ? बन्धुवर ! आप श्रीमोक्षमार्ग प्रकाश और समाधिशतक समयासारका ही स्वाध्याय करिये । और विशेष त्यागके विकल्प मे न पडिये । केवल क्षमादिक परिणामोके द्वारा ही वास्तविक आत्माका हित होता है । काय कोई वस्तु नही तथा आप ही स्वय कृश हो रही है । उसका क्या विकल्प ? भोजन स्वयमेव न्यून हो गया है । जो कारण बाधक है आप बुद्धिपूर्वक स्वय त्याग रहे है । मेरी तो यही भावना है - प्रभु पार्श्वनाथ आपकी आत्माको इस बधनके तोडनेमे अपूर्व सामर्थ्य दे । आपके पत्रसे आपके भावोकी निर्मलताका अनुमान होता है । स्वतत्र भाव ही आत्मकल्याणका मूल मत्र है । क्योकि आत्मा वास्तविक दृष्टिसे तो सदा शुद्ध ज्ञानानद स्वभाववाला है । कर्म कलकसे ही मलीन हो रहा है । सो इसके पृथक् करनेकी जो विधि है उस पर आप आरूढ है । बाह्य क्रियाकी त्रुटि आत्मपरिणामकी बाधक नही और न मानना ही चाहिये । सम्यग्दृष्टि जो निन्दा तथा गर्हा करता, वह अशुद्धोपयोगकी है न कि मन, वचन, कायके व्यापारकी । इस पर्यायमे हमारा आपका तभी सम्बन्ध हो । परन्तु मुझे अभी विश्वास है कि हम और आप जन्मान्तरमे अवश्य मिलेगे । अपने स्वास्थ्यसम्बन्धी समाचार अवश्य एक मासमे १ वार दिया करे ।

बरुवासागर,
चैत्र सुदी १, स १९९३

आ शु चि.
गणेश वर्णी

श्रीयुत पं. दीपचन्दजी धर्मरत्न, इच्छामि

पत्र पढकर सन्तोष हुआ । तथा आपका अभिप्राय जितनी मण्डली थी सबको श्रावणप्रत्यक्ष करा दिया । सब लोग आपके आशिक रत्नत्रयकी भूरिश प्रसशा करते है ।

प भूधरदासजी की कविता आपके ऊपर नहीं घटती । आप सूर हैं । देहकी दशा जैसी कविने प्रतिपादित की है तदनुरूप ही है परन्तु इसमे हमारा क्या घात हुआ ? यह हमारी बुद्धिगोचर नहीं हुआ । घटके घातसे दीपकका घात नहीं होता । पदार्थका परिचायक ज्ञान है । अत ज्ञानमें ऐसी अवस्था शरीर की प्रतिभासित होती है एतावत् क्या तदरूप हो गया ।

पूर्णैकाच्युतशुद्धबोधमहिमा बोधो न बोध्यादयम् ।
पायात्कामपि विक्रियां तत इतो दीप: प्रकाश्यादपि ।।

तद्वस्तुस्थितिबोधबन्ध्यधिषणा एते किमज्ञानिनो ।
रागद्वेषमपि भजन्ति सहजा मुंचत्युदासीनताम् ।।

पूर्ण अद्वितीय नहीं च्युत है शुद्ध बोधकी महिमा जाकी ऐसा जो बोध है वह कभी भी बोध्य पदार्थ के निमित्तसे प्रकाश्य (घटादि) पदार्थ से प्रदीपकी तरह कोई भी विक्रियाको प्राप्त नहीं होता है । इस मर्यादाविषयक बोधसे जिसकी बुद्धि बन्ध्या है वे अज्ञानी है । वे ही रागद्वेषादिकके पात्र होते हैं और स्वाभाविक जो उदासीनता है उसे त्याग देते है । आप विज्ञ हैं कभी भी इस असत्य भाव को अवलम्बन न देवेगे । अनेकानेक मर चुके तथा मरते है और मरेगे । इससे क्या आया । एक दिन हमारी भी पर्याय चली जावेगी । इसमे कौनसी आश्चर्यकी घटना है इसका तो आपसे विज्ञ पुरुषो को विचार कोटिसे पृथक् रखना ही श्रेयस्कर है । जो यह वेदना असाताके उदय आदि कारणकूट होने पर उत्पन्न हुई और हमारे ज्ञानमे आयी, क्या वस्तु है ? परमार्थसे विचारा जाय तो यह एक तरह से सुख गुणमे विकृति हुई वह हमारे ध्यानमे आयी, क्या वस्तु है ? उसे हम नहीं चाहते । इसमें कौनसी विपरीतता हुई ? विपरीतता तो तब होती है जब हम उसे निज मान लेते । विकारज परिणतिको पृथक् करना अप्रशस्त नहीं, अप्रशस्तता तो यदि हम उसीका निरन्तर चिन्तवन करते रहे और निजत्वको विस्मरण हो जावे तब है ।

अत· जितनी भी अनिष्ट सामग्री मिले, मिलने दो । उसके प्रति आदरभावसे व्यवहार कर ऋण मोचन पुरुषकी तरह आनन्दसे साधुकी तरह प्रस्थान करना चाहिये । निदान को छोड़ कर आर्त-भय षष्ठ गुणस्थान तक होते हैं । दूसरे क्या वह गुणस्थान पलायमान हो गया । थोड़े समय तक अर्जित कर्म आया, फल देकर चला गया । अच्छा हुआ आकर हलकापन कर गया । रोग का निकलना ही अच्छा है । मेरी सम्मतिमे निकलना, रहने की अपेक्षा प्रशस्त है । इसी प्रकार आपकी असाता यदि शरीरकी जीर्ण शीर्ण अवस्था कर निकल रही है तब आपको बहुत आनद मानना चाहिये । अन्यथा यदि वह अभी न निकलती तब क्या स्वर्गमे निकलती ? मेरी दृष्टिमें केवल असाता ही नहीं निकल रही साथ ही मोहकी अरति आदि प्रकृतिया भी निकल रही हैं, क्योंकि आप इस असाताको सुखपूर्वक भोग रहे है । शातिपूर्वक कर्मों के रसको भोगना आगामी दुखकर नहीं ।

बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ परन्तु ज्ञानकी न्यूनतासे लेखनी रुक जाती है । बन्धुवर ! मै एक बातकी आपसे जिज्ञासा करता हूँ जितने लिखनेवाले और कथन करनेवाले तथा कथन कर बाह्य चरणानुयोगके अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाले तथा आर्षवाक्यो पर श्रद्धालु यावत् व्यक्ति हुये है, अथवा हैं और होगे । क्या सर्व ही मोक्षमार्गी है ? मेरी तो श्रद्धा नहीं । अन्यथा कुन्दकुन्द स्वामीने लिखा है । 'हे प्रभो ! हमारे शत्रुको भी द्रव्यलिग न हो' इस वाक्यकी चरितार्थता न होती तो काहे को लिखते । अत पर की प्रवृत्ति देख रञ्चमात्र भी विकल्पको आश्रय न होना ही हमारे लिये हितकर है । आपके ऊपर कुछ भी आपत्ति नहीं, जो आत्महित करनेवाले है वह शिर पर आग लगाने पर तथा सर्वाङ्ग अग्निमय आभूषण धारण कराने पर तथा यत्रादिद्वारा उपद्रित होनेपर मोक्षलक्ष्मीके पात्र होते हैं । मुझे तो इस आपकी असाता और श्रद्धा देखकर इतनी प्रसन्नता होती है, प्रभो ! यह अवसर सबको दे । आपकी केवल श्रद्धा ही नहीं किन्तु आचरण भी अन्यथा नहीं । क्या मुनिको जब तीव्र व्याधिका उदय होता है तब बाह्य चरणानुयोग आचरण के असद्भावमे क्या उनके षष्ठ गुणस्थान चला जाता ? यदि ऐसा है तब उसे समाधिमरणके समय हे मुने ! इत्यादि सम्बोधन करके जो उपदेश दिया है वह किस प्रकार सगत होता ? पीडा आदि में चित्त चञ्चल रहता है इसका क्या यह आशय है पीडाका बारबार स्मरण हो जाता है । हो जाओ, स्मरण ज्ञान है और जिसकी धारणा होती है उसका बाह्य निमित्त मिलने पर स्मरण होना अनिवार्य है । किन्तु साथमे यह भाव तो रहता है - यह चञ्चलता सम्यक्

नहीं । परन्तु मेरी समझमे इसपर भी गभीर दृष्टि दीजिए । चञ्चलता तो कुछ बाधक नहीं। साथमे उसके अरतिका उदय और असाताकी उदीरणासे दु खानुभव हो जाता है। उसे पृथक् करने की भावना रहती है । इसीसे इसकी महर्षियोने आर्तध्यानकी कोटिमे गणना की है। क्या इस भावके होनेसे पञ्चम गुणस्थान मिट जाता है । यदि इस ध्यानके होने पर देशव्रत के विरुद्ध भावका उदय श्रद्धामे न हो तब मुझे तो दृढतम विश्वास है गुणस्थानकी कोई भी क्षति नहीं । तरतमता ही होती है वह भी उसी गुणस्थानमे । ये विचारे जिन्होने कुछ नही जाना कहा जावेगे - कहा जाओ । हमे इसकी मीमासासे क्या लाभ ? हम विचारे इस भावसे हम कही जावेगे ? इस पर ही विचार करना चाहिये ।

आपका सच्चिदानद जैसा आपकी निर्मल दृष्टिने निर्णीत किया है द्रव्यदृष्टिसे वैसा ही । परन्तु द्रव्य तो भोग्य नही, भोग्य तो पर्याय है, अत उसके तात्त्विक स्वरूपके जो साधक है इन्हे पृथक् करने की चेष्टा करना ही हमारा पुरुषार्थ है ।

चोर की सजा देखकर साधुको भय होना मेरे ज्ञानमे नही आता । अत मिथ्यात्वादि क्रियासयुक्त प्राणियो का पतन देख हमे भय होने की कोई बात नहीं । हमको तो जब सम्यक् रत्नत्रय की तलबार हाथमे आ गई है और वह यद्यपि वर्तमान मे मौथरी धारवाली है परन्तु है तो असि, कर्मेन्धनको धीरे धीरे छेदेगी । परन्तु छेदेगी ही बडे आनन्द से । जीवनोत्सर्ग करना, अस मात्र भी आकुलता श्रद्धामे न लाना । प्रभुने अच्छा ही देखा है । अन्यथा उसके मार्ग पर हम लोग न आते । समाधिमरणके योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव क्या परनिमित्त ही हैं ? नहीं ।

जहा अपने परिणामो मे शान्ति आई वहीं सर्व सामग्री है । अत हे भाई ! आप सर्व उपद्रवो के हरणमे समर्थ और कल्याणपथके कारणो मे प्रमुख जो आपकी दृढतम श्रद्धा है वह उपयोगिनी कर्मशत्रुवाहिनी को जयनशीला तीक्ष्ण असिधारा है । मै तो आपके पत्र पढकर निश्चय कर चुका हूँ कि समाधिमरणकी महिमा अपने ही द्वारा होती है । क्या आप इससे लाभ न उठावेगे ? अवश्य ही उठावेगे । बाबाजी का इच्छाकर ।

आषाढवदी १, स १९९४

आ शु.चि
गणेश वर्णी

नोट - मै विवश हो गया । अन्यथा अवश्य आपके समाधिमरणमे सहकारी हो पुण्यलाभ करता । आप अच्छे स्थान पर ही जावेंगे । परन्तु पचम काल है । अत. हमारे सम्बोधनके लिये आपका उपयोग ही इस ओर न जावेगा अथवा जावेगा ही । तब कालकृत असमर्थता बाधक होकर आपको शाति न देगा । इससे कुछ उत्तरकालकी याचना नहीं करता ।

(७ - ६)

श्रीयुत महाशय पं दीपचन्द जी वर्णी, योग्य इच्छाकार

बन्धुवर ! आपका पत्र पढकर मेरी आत्मामे अपार हर्ष होता है कि आप इस रुग्णआवस्थामे दृढश्रद्धालु हो गये है । यही ससार से उद्धार का प्रथम प्रयत्न है । कायकी क्षीणता कुछ आत्मतत्त्वकी क्षीणतामे निमित्त नहीं । इसको आप समीचीनतया जानते है । वास्तवमे आत्माके शत्रु तो राग द्वेष और मोह है । जो उसे निरतर इस दु खमय ससारमे भ्रमण करा रहे है । अत आवश्यकता इसकी है कि रागद्वेषके आधीन न होकर स्वामोत्त्थ परमानदकी ओर ही हमारा प्रयत्न सतत रहना ही श्रेयस्कर है ।

औदयिक रागादि होवे इसका कुछ भी रञ्ज नहीं करना चाहिये । रागादिको का होना रुचिकर नहीं होना चाहिये । बडे बडे ज्ञानी जनो के राग होता है । परन्तु उस रागमे रञ्जके अभाव से अग्रे उसकी परिपाटीरोधका आत्माको अनायास अवसर मिल जाता है । इस प्रकार औदयिक रागादिको की सन्तानका अपचय होते होते एक दिन समूलतल से उसका अभाव हो जाता है और तब आत्मा अपने स्वच्छ स्वरूप होकर इन ससारकी वासनाओ का पात्र नहीं होता । मै आपको क्या लिखू । यही मेरी सम्मति है कि अब विशेष विकल्पो को त्यागकर जिस उपायसे रागद्वेषका आशयमे अभाव हो वही आपका व मेरा कर्त्तव्य है, क्योकि पर्यायका अवसान है । यद्यपि पर्यायका अवसान तो ******** किन्तु फिर भी सम्बोधनके लिये कहा जाता है तथा मूढोको वास्तविक पदार्थ का परिचय न होनेसे बडा आश्चर्य मालूम पडता है ।

विचारसे देखिये तब आश्चर्यको स्थान नहीं । भौतिक पदार्थों की परिणति देखकर बहुतसे जन क्षुब्ध हो जाते हैं । भला जब पदार्थमात्र अनन्त शक्तियो का पुञ्ज है तब क्या पुद्गलमें वह बात न हो, यह कहा का न्याय है । आजकल विज्ञानके प्रभाव को देख लोगो की श्रद्धा पुद्गलद्रव्यमे ही जाग्रत हो गई है । भला यह तो विचारिये

उसका उपयोग किसने किया । जिसने किया उसको न मानना यही तो जडभाव है ।

बिना रागदिकके कार्मण वर्गणा क्या कर्मादि रूप परिणमन को समर्थ हो सकती हो ? तब यो कहिये - अपनी अनन्तशक्ति के विकाशका बाधक आप ही मोहकर्म द्वारा करा रहा है फिर भी हम ऐसे अन्धे है जो मोहकी महिमा आलाप रहे हैं । मोहमे बलवत्ता देनेवाली शक्तिमान वस्तुकी ओर दृष्टि प्रसार कर देखो तो धन्य उस अचिन्त्य प्रभाववाले पदार्थ को कि जिसकी वक्र दृष्टिसे यह जगत अनादिसे बन रहा है और जहा उसने वक्रदृष्टि को सकोच कर एक समय मात्र सुदृष्टिका अवलम्बन किया कि इस ससारका अस्तित्व ही नहीं रहता । सो ही समयसारमे कहा है -

कषायकलिरेकत: शान्तिरस्त्येकतो ।
भवोपहतिरेकत: स्पृशति मुक्तिरप्येकत: ।।
जगत्त्रितयमेकत: स्फुरति चिच्चकास्त्येकत: ।
स्वभावमहितात्मनो विजयतेऽद्भुतादद्भुत: ।।

अर्थ - एक तरफसे कषायकालिमा स्पर्श करती है और एक तरफ से शान्ति स्पर्श करती है । एक तरफ ससार का आघात है और एक तरफ मुक्ति है । एक तरफ तीनो लोक प्रकाशमान है और एक तरफ चेतन आत्माका प्रकाश रहा है । यह बडे आश्चर्यकी बात है कि आत्मा की स्वभाव महिमा विजयको प्राप्त होती है । इत्यादि अनेक पद्यमय भावो से यही अन्तिम करन प्रतिमा का विषय होता है जो आत्मद्रव्य ही की विचित्र महिमा है । चाहे नाना दु खाकीर्ण जगतमे नाना वेष धारण कर नटरूप बहुरुपिया बने । चाहे स्वनिर्मित सम्पूर्ण लीलाको सम्वरण करके गगनवत् परमार्थिक निर्मल स्वभावको धारण कर निश्चल तिष्ठे । यही कारण है । **''सर्वं वै खल्विद ब्रह्म'' अर्थ** - यह सपूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप है । इसमे कोई सन्देह नहीं, यदि वेदान्ती एकान्त दुराग्रह को छोडे देवे तब जो कुछ कथन है अक्षरश सत्य भासमान होने लगे । एकान्तदृष्टि ही अन्धदृष्टि है । आप भी अल्प परिश्रम से कुछ इस ओर आइये । भला यह जो पच स्थावर और त्रसका समुदाय जगत दृश्य हो रहा, क्या है ? क्या ब्रह्मका विकार नहीं ? अथवा स्वमतकी ओर कुछ दृष्टिका प्रसार कीजिये । तब निमित्त कारण की मुख्यतासे ये जो रागादिक परिणाम हो रहे है उन्हे पौद्गलिक नहीं कहा है । अथवा इन्हे छोडिये । जहा अवधिज्ञान का विषय निरूपण किया है वहा क्षयोपशम भावको भी अवधिज्ञानका विषय कहा है । अर्थात् रुपी पुद्गल द्रव्य सम्बन्धेन जायमानत्वात्

ज्ञायोपशिक भाव भी कथचित् रूपी है । केवलभाव अवधिज्ञानका विषय नहीं, क्योंकि उसमे रूपी द्रव्यका सम्बन्ध नहीं । अतएव यह सिद्ध हुआ - औदयिक भाववत् ज्ञायोपशमिक भाव भी कथचित् पुद्गलसम्बन्धेन जायमान होने से मूर्तिमत् है न कि रूप रसादिमत्ता इनमे है । तद्वत् अशुद्धताके सम्बन्ध से जायमान होने से यह भौतिक जगत भी कथञ्चित् ब्रह्मका विकार है । कथचित् का यह अर्थ है -

जीव के रागादिक भावो के ही निमित्त को पाकर पुद्गल द्रव्य एकेन्द्रियादिरूप परिणमन को प्राप्त है । अत यह जो मनुष्यादि पर्याय हैं असमान जातीय द्रव्यके सबधसे निष्पन्न है न केवल जीवकी हैं और न केवल पुद्गलकी हैं । किन्तु जीव और पुद्गल के सबधसे जायमान है । तथा यह जो रागादि परिणाम है सो न तो केवल जीवके ही है और न केवल पुद्गल के है किन्तु उपादान की अपेक्षा तो जीवके हैं और निमित्त कारण की अपेक्षा पुद्गलके है और द्रव्यदृष्टि कर देखे तो न पुद्गलके हैं और न जीवके है। शुद्ध द्रव्यके कथनमे पर्याय की मुख्यता नहीं रहती । अत यह गौण हो जाते हैं । जैसे पुत्र पर्याय स्त्री पुरुष दोनों के द्वारा सम्पन्न होती है । अस्तु इससे यह निष्कर्ष निकला कि यह जो पर्याय है वह केवल जीवकी नहीं किन्तु पौद्गल मोहके उदयसे आत्मा के चारित्रगुणमे विकार होता है । अत हमे यह न समझना चाहिये कि हमारी इसमे क्या क्षति है ? क्षति तो यह हुई कि जो आत्मा की वास्तविक परिणति थी वह विकलताको प्राप्त हो गई । वही तो क्षति है । परमार्थ से क्षतिका यह आशय है कि आत्मा में रागादिक दोष हो जाते हैं वह न होवे । तब जो उन दोषो के निमित्तसे यह जीव किसी पदार्थ मे अनुकूलता और किसीमें प्रतिकूलताकी कल्पना करता था और उनके परिणमन द्वारा हर्ष विषाद कर वास्तविक निराकुलता (सुख) के अभाव मे आकुलित रहता था शान्ति के आस्वादकी कणिकाको भी नहीं पाता था । अब उन रागादिक दोषो के असद्भावमे आत्मगुण चारित्र की स्थिति अकम्प और निर्मल हो जाती हो जाती है । उसके निर्मल निमित्तको अवलम्बन कर आत्मा का चेतना नामक गुण है वह स्वयमेव दृश्य और ज्ञेय पदार्थो का तद्रूप हो दृष्टा और ज्ञाता शक्तिशाली होकर आगामी अनन्त काल स्वाभाविक परिणमनशाली आकाशादिवत् अकप रहता है । इसी का नाम भावमुक्ति है । अब आत्मामे मोह निमित्तक जो कलुषता थी वह सर्वथा निर्मूल हो गई किन्तु अभी जो योग निमित्तक परिस्पन्दन है वह प्रदेश प्रकम्पनको करता ही रहता है । तथा तन्निमित्तक ईर्यापथास्रव भी सातावेदनीय का हुआ करता है । यद्यपि इसमे आत्मा के स्वाभाविक भावकी क्षति नहीं । फिर भी निरपवत्य आयु के सद्भावमे यावत्

आयुके निषेक हैं तावत् भवस्थितिको मेंटने को कोई भी क्षम नहीं । तब अन्तर्मुहूर्त आयुका अवसान रहता है । तथा शेष जो नामादिक कर्मकी स्थिति अधिक रहती है, उस कालमे तृतीय शुक्लध्यान के प्रसादसे दड कपाटादि द्वारा शेष कर्मो की स्थितिको आयु समकर चतुर्दश गुणस्थानका आरोहण कर अयोग नामको प्राप्त करता हुआ लघु पचाक्षर के उच्चारण के काल सम गुणस्थान का काल पूर्णकर चतुर्थध्यानके प्रसादसे शेष प्रकृतियो को नाश कर परम यथाख्यातचारित्रका लाभ करता हुआ एक समय मे द्रव्य मुक्ति व्यपदेशताको लाभकर मुक्ति साम्राज्य लक्ष्मी का भोक्ता होता हुआ लोक शिखरमे विराजमान होकर तीर्थङ्कर प्रभुके समवशरणका विषय होकर हमारे कल्याणमे सहायक हो । यही हम सबकी अन्तिम प्रार्थना है ।

श्रीमान् बाबा भागीरथजी महाराज आ गये । उनका सस्नेह आपको इच्छाकार। खेद इस बात का विभावजन्य हो जाता है जो आपकी उपस्थिति यहाँ न हुई । जो हमे भी आपका वैयावृत्ति करने का अवसर मिल जाता परन्तु हमारा ऐसा भाग्य कहाँ ? जो सल्लेखनाधारी एक सम्यग्ज्ञानी पचमगुणस्थानवर्ती जीवकी प्राप्ति हो सके । आपके स्वास्थ्यमे आभ्यतर तो क्षति है नहीं, जो है सो बाह्य है । उसे आप प्राय वेदन नहीं करते, यही सराहनीय है । धन्य है आपको जो इस रुग्णआवस्थामे भी सावधान है । होना ही श्रेयस्कर है । शरीरकी अवस्था अपस्मार वेगवत् वर्धमान हीयमान होने से अध्रुव और शीतदाह ज्वरावेश द्वारा अनित्य है । ज्ञानी जनको ऐसा जानना ही मोक्षमार्गका साधक है । कब ऐसा समय आवेगा जो इसमे वेदनाका अवसर ही न आवे । आशा है एक दिन आवेगा जब आप निश्चल वृत्तिके पात्र होवेगे । अब अन्य कार्यो से गौण भाव धारण कर सल्लेखना के ऊपर ही दृष्टि दीजिये और यदि कुछ लिखने की चुलबुली उठे तब उसी पर लिखने की मनोवृत्ति की चेष्टा कीजिये । मै आपकी प्रशसा नही करता । किन्तु इस समय ऐसा भाव, जैसा कि आपका है, प्रशस्त है । जेष्ठ वदी १ से फा सु ५ तक मौन का नियम कर लिया है । एक दिन मे १ घण्टा शास्त्रमे बोलूगा । पत्र मिल गया । पत्र न देने का अपराध क्षमा करना ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(७ - ७)

श्रीयुत महाशय दीपचंद जी वर्णी साहब, योग्य इच्छाकार

पत्र से आपके शारीरिक समाचार जाने । अब यह जो शरीर पर है शायद इससे अल्प ही कालमे आपकी पवित्र भावनापूर्ण आत्माका सम्बन्ध छूटकर वैक्रियकशरीरसे सम्बन्ध हो जावे । मुझे यह दृढ श्रद्धान है कि आपकी असावधानी शरीरमे होगी न कि आत्मचितवनमे । असातोदयमे यद्यपि मोह के सद्भाव से विकलता की सम्भावना है तथापि आशिक भी प्रबल मोह के अभाव मे वह आत्मचितन का बाधक नहीं हो सकती । मेरी तो दृढ श्रद्धा है कि आप अवश्य इसी पथ पर होगे और अन्त तक दृढतम परिणामो द्वारा इन क्षुद्र बाधाओ की ओर ध्यान भी न देगे । यही अवसर ससारलतिकाके घातका है ।

देखिये जिस असातादि कर्मो की उदीरणाके अर्थ महर्षि लोग उग्रोग्र तप धारण करते-करते शरीरको इतना कृश बना देते है जो लावण्य का अनुमान भी नहीं होता । परन्तु आत्मदिव्यशक्तिसे पूर्ण भूषित ही रहते है । आपका धन्य भाग्य है जो बिना ही निर्ग्रन्थ पद धारण के कर्मो का ऐसा लाघव हो रहा है जो स्वयमेव उदयमे आकर पृथक् हो रहे है । इसका जितना हर्ष मुझे है, मै नहीं कह सकता, वचनातीत है ।

आपके ऊपरसे भार उठ रहा है फिर आपके सुख की अनुभूति तो आप ही जाने। शाति का मूल कारण न साता है और न असाता, किन्तु साम्यभाव है जो कि इस समय आपके हो रहा है । अब केवल ब्रह्मानुभव ही रसायन परमौषधि है । कोई कोई तो क्रम क्रमसे अन्नादिका त्याग कर समाधिमरणका यत्न करते है । आपके पुण्योदयसे स्वयमेव वह छूट गया । वही न छूटा साथ ही साथ असातोदय द्वारा दुखजनक सामग्रीका भी अभाव हो रहा है ।

अत हे भाई ! आप रचमात्र क्लेश न करना । जो वस्तु पूर्व अर्जित है यदि वह रस देकर स्वयमेव आत्मा को लघु बना देती है तो इससे विशेष और आनन्द का अवसर होगा । मुझे अतरगसे इस बात का पश्चात्ताप हो जाता है जो अपने अतरग बन्धुकी ऐसी अवस्थामे वैयावृत्त्य न कर सका ।

माघ व १४ स ९४

आ.शु.चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र. शीतलप्रसादजी वर्णी

(श्रीमान् ब्र शीतलप्रसादजी का जन्म सन् १८७९ ई को लखनऊमे हुआ था। पिताका नाम लाला मक्खनलालजी और माताका नाम नारायणी देवी तथा जाति अग्रवाल थी । प्रारम्भमे ये रुडकी इञ्जीनियरिग कालेजसे एकाउन्टेटशिपकी परीक्षा पास कर सरकारी नौकरी करने लगे थे ।

इनका विवाह कलकत्ताके वैष्णव अग्रवाल छेदीलालजी की सुपुत्रीके साथ हुआ था । किन्तु सन् १९०४ की महामारीमे इनकी पत्नीका देहावसान हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और १९ अगस्त सन् १९०५ मे सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र देकर स्वाध्याय और समाज सेवामे लग गये । इन्होने ३२ वर्षकी आयुमे सन् १९११ ई के मार्गशीर्षमे श्री १०५ ऐलक पन्नालालजी के समक्ष सोलापुरमे ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की थी ।

ब्रह्मचारीजी की साधना बडी थी । इन्होने अपने जीवन कालमे समाज और धर्मकी अपूर्व सेवा की है । वैदिक परम्परामे स्वामी दयानन्द सरस्वतीका जो स्थान था जैन समाजमे ब्र शीतलप्रसादजी का वही स्थान रहा है । दि जैन परिषदके सस्थापकोमे ये प्रमुख थे । बहुत काल तक ये श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके अधिष्ठाता रहे है और अनेक सस्थाऐ स्थापना की है । धर्म और समाजके हितमे इनकी कलम दिन-रात चलती रहती थी । ये जैन समाजके नेता और समाज सुधारके अग्रणी थे ।

इनका देहावसान १० फरवरी सन् १९४२ को लखनऊमे समाधिपूर्वक हुआ था । पूज्य श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णीसे इनका चिरकाल तक सम्पर्क रहा है । फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते है।)

(८ - १)

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी प शीतलप्रसाद जी !

आप सानन्द तथा नि शल्य होकर ही आइये । आपके धर्म ध्यान के लिये हम यथाशक्ति त्रुटि न करेगे । यह क्षेत्र निर्वाण की प्राप्ति के लिये प्रसिद्ध है । आजन्म समयसार का मनन कर ऐसा अध्ययन अध्यापन करके भी यदि हमारा और आपका मतभेद बना रहा तब हम दोनोमे से अन्यतर मिथ्यात्व का पात्र है ऐसी मेरी दृढ प्रतीति

है । यद्यपि हम और आप दोनों ही अपने अपने सम्यग्दृष्टि होनेका दावा करते है किन्तु उभयमे अन्यतर ही उस गुणका पात्र हो सकता है । यह निर्णय तो दिव्य ज्ञानमे ही है जो अमुक इसका पात्र है । लौकिक जन आपके अनुयायी आपको और मेरे अनुयायी मुझे कहेंगे । जो हो इस चर्चाका अवसर नहीं । कल्पना कीजिये दो मनुष्य ४० सेरका ही मन मानते है, परन्तु उनमे एक कहता है ८० रुपये भरका सेर होता है और एक कहता है कि नहीं एक पैसे कम ८० रु भरका सेर होता है । एक पैसा भरका भेद कोई भेद नहीं। परन्तु विज्ञजन इसको कभी भी तथ्य नहीं मान सकते । श्वेताम्बर कवलाहार केवलीके मानते है, दिगम्बर नहीं मानते । तब क्या अन्य सिद्धान्तमे समानता होने पर कदापि दोनोका मत एक हो सकता है ? कर्तृत्व, अकर्तृत्व, द्वैत, अद्वैत, शुद्ध, अशुद्ध इत्यादि एक बातके भेद होने पर ही नाना मतके निर्माण ससारमे हो गए । महासभा और परिषदमे क्या बात है ? क्या सर्व नियमोमे भेद है ? एक ही नियमकी कृपासे समाजका जैसा उत्थान हो रहा है, किसीसे अव्यक्त नहीं । यदि दोनो पक्षमे कोई पक्ष अपनी हठको छोड दे, तब क्या समाजका उत्थान न हो ? अस्तु, इस अरण्यरोदनसे कुछ भी लाभ नहीं । आपका जो अभिप्राय है सुरक्षित रखिये । उससे न मेरी क्षति है और न अक्षति । उस सिद्धान्तसे क्षति व अक्षति आपकी होगी । अन्यतरमे क्या होगा सो वीरप्रभु जाने । विपक्षी क्षति और अविपक्षी अक्षति कह ही रहे है । अन्तिम आपसे यही नम्र निवेदन है जो मेरा आपसे बहुत प्राचीन व धार्मिक प्रेम है उसे आप भी स्वीकार करेगे । मैं यह भी मानता हूँ जो आप विशिष्ट ज्ञानी है और कर्मठ हैं, अत आपमे विशेष धर्मानुराग होने से फिर भी लिखना पडता है ।

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम्
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुत: स्यात् ।।
तत्किं प्रमाद्यति जन: प्रयतन्नधोऽध: ।
कि नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमाद: ।।

यह कुछ वाद करनेकी नियतसे नहीं लिखा है । केवल स्वकीय अभिप्रायको सक्षिप्ततया व्यक्त करने का प्रयास है । इसको बाचकर आप स्वकीय शुभागमनके अभिप्रायको परिवर्तन करनेकी बात स्वप्नमे भी मनमे न लाइये । आपके आनेका मुझे हर्ष है । विशेष क्या लिखे ? कोई किसीको परिणमन करनेमे समर्थ नहीं ।

३०-८-३९

आ. शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(८ - २)

श्रीयुत ब्रह्मचारीजी, योग्य इच्छाकार

आपका यहाँ दिवाली बाद आनेका विचार है, सो आइये । हमसे जो कुछ बनेगा आपकी वैयावृत्त करनेमे त्रुटि न करेगे । आपको कुछ सन्देह मालूम होता है, उसकी कुछ आवश्यकता नहीं । अब तो अन्तिम पथकी ओर जा रहे हो सो अभ्रान्त रहना चाहिये । स्पष्ट उत्तर आपकी श्रद्धाके ऊपर है । आपने जो लिखा है कि कम्पारोग हो गया है सो असाताके तीव्रोदय या उदीरणामे ऐसी अनेक अवस्था होती है, किन्तु यदि उसके साथ मोहोदयकी बलवत्ता नहीं तब वह कुछ दु खानुभवमे आत्मगुणका घातक नहीं, क्योकि "घादी व वेयणीय मोहस्स बलेण घाददे जीव" अत आप विज्ञ हैं, उसे अकिंचन ही समझते होगे । जरा रोगमे भी यही चरितार्थ है । "जैन मित्र" की सम्पादकी छोड दी या छूट गई यह आपके अनुभवगम्य है । किन्तु "सनातन जैन" के अभिप्रायको छोड दिया होगा । उसे भी इस समय छोडनेका अवसर है । "जैनमित्र" की सम्पादकी छोड दी यह तो उचित ही किया, क्योकि अब अवस्था भी तो अन्यथा हो गई । साथमे "सनातन जैन" की भी सम्पादकी छोड दीजिये । अब आपका अन्तिम काल है । क्या ही अच्छा सुवर्ण अवसर आपके हाथ है । सर्वप्रकारकी शल्यको छोडकर परम पथके पथिक बनिये । किसीके कहनेमे न आकर 'विधवा विवाहादि शास्त्र असम्मत है' यदि इसको आप लिख देवे तब अतिउत्तम हो ।

आ. शु चि

गणेशप्रसाद वर्णी

वर्णी-विचार

१३ फरवरी १९४५

* आज दिन सानद से बीता । वास्तव मे तो हम मोही है । कल्याण की कथा जानते है, उसे बड़ी सुन्दरता के साथ कर लेते है । कर्तव्य मे उसको लाते नहीं। इससे कल्याण होना अभी दूर है । देखो जगत की रचना कर्मकृत विकार है ।

ब्र. नेमिसागरजी वर्णी

(श्रीमान् ब्र नेमिसागरजी वर्णीका जन्म वि. स १९३३ को दक्षिण प्रान्तमे हुआ है । पिताका नाम श्री दुग्गण अधिकारी और माताका नाम जाकम्म था । जन्मसे ये क्षत्रिय है । शिक्षा ग्रहण करने के बाद सात वर्ष तक ये कन्नड स्कूलमे शिक्षक रहे और उसके बाद चार वर्ष तक कारकल जैन मठके व्यवस्थापक रहे ।

बचपनसे ही इनकी वृत्ति त्यागमय थी, इसलिए विवाह न कराकर वि स १९५८ मे इन्होने ललितकीर्ति महाराजके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की । गृहत्यागी होनेके बाद विशेषरूपसे इनका ध्यान सस्कृत शिक्षा की ओर गया और इस निमित्त इन्होने आरा, बनारस, मोरेना व मैसूरमे रहकर सस्कृत व्याकरण, साहित्य व धर्मशास्त्रकी विशेष शिक्षा ग्रहण की ।

इनके आचार और व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर श्रवणबेल्गोल के व्यवस्थापकोने इन्हे वि स १९८५ मे भट्टारकके पदपर प्रतिष्ठित किया । इसका इन्होने बडी योग्यता और निस्पृहताके साथ निर्वाह किया ।

अपनी उदासीन परिणतिके कारण अन्तमे इन्होने इसका त्याग कर दिया है और वर्तमानमे जैन गुरुकुल उज्रे (दक्षिण कन्नड) मे स्वाध्याय और आत्मचिन्तनमे रत रहते हुए जीवन यापन कर रहे है ।

पूज्य श्री वर्णीजी के प्रति इनकी विशेष आस्था है । उसीके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी के इन्हे जो सारगर्भित पत्र प्राप्त होते रहे है उनमेसे उपलब्ध हुआ एक पत्र यहा दिया जाता है ।)

(९ - १)

श्रीयुत महाशय नेमिसागरजी ब्रह्मचारी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द पञ्चकल्याणक देखकर आनेका प्रयत्न करना । हमारा प्रबलतम पुण्योदय नहीं, अन्यथा ऐसी प्रतिज्ञा न होती । हमारा तो दृढ निश्चय है कि प्रभुके ज्ञानमे देखा गया होगा, वही होगा । किसीकी सुश्रूशा करनेमे कोई लाभ नहीं । जिसको आत्मकल्याण करना हो वह आत्मसम्बन्धी रागादिक छोडे । लोग अन्यकी समालोचना करनेमे समय लगाते हैं । कल्याणका इच्छुक आत्म-सम्बन्धी दोषोको दूर करनेका प्रयत्न करता है और वही ससार दु खोसे दूर हो जाता है । आप लोगोकी जो

कुछ मशा हो, आप जाने, परन्तु ऐसा उत्तम क्षेत्र धर्म साधनके अर्थ अन्यत्र नहीं । सामने श्री पार्श्व प्रभुकी निर्वाणभूमिके दर्शन, प्रान्तमे तपोभूमि, अथ च यहॉके मनुष्य सरल और दम्भसे रहित हैं । यदि इनमे मद्य-पीनेका दोष न होता तब सहजमे ये धर्म धारणके पात्र हो जाते । परन्तु पञ्चमकालमे ऐसा होना असम्भव है । हम तो अपनी बात कहते है - इतने दिन बाह्य क्रिया करते हो गये, मृत्युके सन्निहित आ पहुँचे, परन्तु हृदयकी कुटिलता नहीं गई । यह मेरा लिखना अपने वास्ते है, क्योकि मुझे अपने हृदयका भाव ज्ञात है । आप महाशयोकी वृत्ति आप जाने । धर्मका परमार्थरूप बाह्य व्यापारमे परे है । वचनकी सुन्दरतासे अन्तरङ्गकी वृत्ति भी सुन्दर हो यह नियम नहीं । वहॉ पर अच्छे अच्छे श्रीमान् पण्डित और श्रीमान् सेठ आवेगे । आप उनसे यह कहना - केवल व्याख्यानकी रोचकतासे समाजको खुश करके धन्यवाद लेकर न चले जाना, किन्तु उस क्षेत्र और विद्यालयका उद्धार करके जाना ही आपकी विद्वत्ताकी सफलता है। उनके हृदयमे निरन्तर स्मरण रहे ऐसा जाना ही अच्छा है । धनिकवर्गसे भी यही मेरा कहना है - केवल उत्सवकी शोभा सम्पादन करके न चले जाना, किन्तु क्षेत्र और पाठशालाका उद्धार करके जाना । आपके बुलानेका प्राय यही उद्देश्य प्रमुख कार्यकर्त्ताओका था । या न हो तो वे जाने । परन्तु आप श्रीमानोका कर्तव्य है कि योग्य क्षेत्रमे दान करके स्वकीय विवेकका समाजको अनुकरण करनेका पाठ पढा करके शुभ प्रस्थान करके जाना ।

ऊषरे सरसि शाल्मलिवने दावपावकचितेऽपि चन्दने ।
तुल्यमर्पयसि वारि वारिद कीर्तिरस्तु गुणविज्ञता गता ।।

अन्यथा -

"वितर वारिद वारि तृषातुरे चिरपिपासितचातकपोतके ।
प्रचलति मरुति क्षणमन्यथा क्व च भवान् क्व च पयः क्व च चातकः ।"

विशेष क्या लिखू ? वहॉपर जो उत्तम वक्ता आवे, उनसे यह मेरा सन्देश अवश्य उचित समयपर समाजको सुनानेके लिए कह देना । मुझे लिखनेका अभ्यास कम है । अत जो मेरा भाव है उसे अपने शब्दोमे लाकर समाजके हृदयमे अकित करनेकी अवश्य चेष्टा करे ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

ब्र. प्यारेलालजी भगत

(श्रीमान् ब्र प्यारेलालजी भगतका जन्म मगसिर शु ६ वि स. १९४१ को दिघी (राजाखेडा) मे हुआ है । पिताका नाम लाला नाथूरामजी और माताका नाम सुमित्रादेवी तथा जाति जैसवाल है । प्रारम्भिक शिक्षा अक्षर ज्ञान तक सीमित होते हुए भी इनका धर्मशास्त्रका ज्ञान उच्चकोटिका है ।

प्रारम्भसे ही आत्मकल्याणकी ओर विशेष लक्ष्य होनेसे इन्होने पहले व्रत प्रतिमाके और उसके बाद वि स १९९१ मे इन्दौरमे श्री १०८ कुन्थुसागर महाराजकी उपस्थितिमे स्वय सातवीं प्रतिमाके व्रत धारण किये ।

त्यागधर्मके साथ इनकी सामाजिक सेवा भी सराहनीय है । अधिष्ठाता पद पर रहते हुए ईसरी और इन्दौर उदासीनाश्रमकी ये बहुत कालसे सम्हाल करते आ रहे है । राजाखेडा और कोडरमा की शिक्षा सस्थाए भी इन्होने स्थापित की है ।

कलकत्तामे हिन्दू-मुस्लिम दङ्गाके समय इन्होने हजारो स्त्री-पुरुषोको वेलगछियाके जैन-मन्दिरमे आश्रय देकर उनकी रक्षा की थी । अहिसाके प्रचारकी ओर भी इनका निरन्तर ध्यान रहता है । फलस्वरूप इन्होने देश-विदेशके अनेक माससेवी स्त्री-पुरुषोको मासका परित्याग कराकर धर्ममार्ग पर लगाया है । इतना सब होते हुए भी स्वाध्याय और आत्मचिन्तन इनका मुख्य व्रत है । समाजमे ये चुने हुए कुछ प्रतिष्ठित त्यागियोमेसे एक है ।

ये पूज्य श्री १०५ वर्णीजी द्वारा निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करते रहते है । फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते हैं ।)

(१० - १)

महानुभाव भगतजी साहब, इच्छाकार

मै दीपमालकोत्सव पर श्री वीरनिर्वाणके पूजन होने अनन्तर प्रस्थान कर दूँगा । सर्वकी सम्मति है राजगृही होकर चलो । २५ मीलका अन्तर है । तीन क्षेत्रोकी वन्दना अनायास हो जायगी । मार्ग भी अच्छा है । अन्तमे पार्श्वचरणमे तो रहना ही है । आपकी निर्मल परिणति ही कल्याणमार्गकी जननी है, अत मेरी भावना भी यही है जो जगतकी चिन्ता उसकी ही मिटती है जो अपनेको जाने ।

जो निज आत्माका कल्याण करनेमें प्रमादी वह जगतका कल्याण क्या कर सकता है, अत ऐसे अकर्मण्य मनुष्योके ससर्गसे अपनेको बचावे ।

का ब ३, स २०१०

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१० - २)

श्रीयुत महाशय सर्वहितैषी भगतजी, योग्य इच्छाकार

आपका समय समयानुकूल ही बीत रहा है, क्योकि सामग्री अनुकूल है । कल्याणका मार्ग स्वतत्र है परन्तु वह भी द्रव्यादि चतुष्टयाधीन ही है । वह चतुष्टय भी उपादान निमित्तके भेदसे द्वेधा है । अस्तु, विशेष तो यह है जो स्वीय रागादिकी हानि ही स्वात्मकल्याणकी जननी है । केवलज्ञान भी उसीके सद्भावमे होता है । मेरी तो यह श्रद्धा है जो ज्ञानकी महिमा वही जानता है जो रागादि दोषोसे कलकित न हो । ज्ञानका फल अज्ञाननिवृत्ति है । स्वामी समन्तभद्रका कहना है -

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानिधी: ।
पूर्वावाज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ।।

अत कल्याणके इच्छुकोको ज्ञानार्जनके साथ-साथ रागादि निरसन भी करना परमोपकारी है । यही बात सर्वत्र लागू है । क्रियाकाण्डवालोको यह भूलना न चाहिये। बिना रागादि निरसन के उस क्रियाकाण्डका कोई मूल्य नहीं । आप तो ऐसे समागममे है जहॉ निरन्तर इसका परामर्श होता रहता है । मेरा सेठजी सा को यथायोग्य कहना । उनको क्या पत्र लिखे ? वे तो स्वय कल्याणमार्गके पथिक है । केवल आप ही नहीं, आपका डब्बा बहुतोको साथमे लिये जा रहा है और उनके उदयसे उसको ले जानेवाले निपुण है जो हर विघ्नसे उसकी रक्षा करनेवाले हैं । आज सेठजीका अनुकरण प्रत्येक धनाढ्य करे तब अनायास जैनधर्मका विकास हो जावे । जैनधर्मका विकास वही कर सकता है जो अष्ट कर्मरूप शरीरके मुख्याग मोहको भग कर देता है । उसके भग होते ही शेष खडका अनायास पतन हो जाता है । हम तो श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमे रहनेके इच्छुक है ।

फा सु १५, स २०१०

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१० - ३)

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

आपके पत्र आये । परम आह्लादके कारण थे । वही मनुष्य कल्याणका पात्र हो सकता है जो आत्मीय लक्ष्यसे च्युत न हो । यही फल साधु समागमादि कारणोंसे हो सकता है । न भी हो परन्तु होनेका निमित्त है तो यही है । आजकल यहाँ ३ मुनि, ३ क्षुल्लक, २ आर्या हैं । हम भी आश्रममे है । न जाने कैसा समय है जो ३६ के अककी दशाका प्रत्यक्ष होता रहता है । यद्यपि ससारके साथ ३६ का होना अच्छा है परन्तु यहाँ तो कुछ और ही बात है जो लिखनेमे सकोच होता है । ६३ होनेकी बात करते है, परन्तु उसका अश नहीं । हमको प्रसन्नता इसकी है कि आपके समयका सदुपयोग हो रहा है । **जहाँ पर तत्त्वचर्चा हो तथा विरागताकी वृद्धि हो वही स्थान तो तीर्थ है।** सेठजी महोदय इसीमे सलग्न हैं । यह उनके भावी सुकल्याणका चिह्न है । वर्तमानमे तो शान्ति है ही इसमे शका नहीं । तदुक्त -

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा ।
एभ्य: संसारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मन: ।।

यही कारण है जो सेठजी चतुर्थ पुरुषार्थमे लग गये । हमारा दिवस भी आप लोकोकी निर्मल भावनासे सानन्दसे जाता है । श्री पतासीबाई जी वहाँ पर पहुँच गई होगी । शारीरिक व्याधि जब शान्त हो इसका तो हमे परिचय नही, परन्तु यह बात तो हम भी कह सकते है जो अन्तरग व्याधि अवश्य कृश हुई होगी ।

बाह्य औषधि तो प्राय सर्वत्र ही मिल जाती है, परन्तु आभ्यन्तर व्याधिको शमन करनेकी औषधि सर्वत्र सुलभ नहीं । इसका सेठजी को धन्यवाद है जो इस आभ्यन्तर रोगको दूर करने के अर्थ औषधालय खोल रखा है और उसमे अनुकूल परिचारक और वैद्य है । अत मेरी तो पतासीबाईको यही सम्मति कह देना । अब सानन्दसे आभ्यन्तर रोगका निराकरण करके ही इन्दौर छोडना । सेठ सा से मेरी यही भावना है जो आपने ससार व्याधि अपहरण करनेका औषधालय खोला है वह चिरकाल रहे, जिसमे ससार सतप्तोको कल्याणमार्ग सुलभ रहे । ऐसा औषधालय केवल धनसे नहीं खुलता, किन्तु स्वय उसपर चले तभी वह चलता है । सेठजी सा को क्या लिखूँ ? उनका पत्र पढकर यही भावना होती है जो ऐसे पुरुषरत्न ही धर्मके

पात्र चिरजीवी रहे । चिरजीवीका अर्थ सर्व जानते है । **विकृतभावका अभाव जिनके है वे ही चिरजीवी है ।**

ईसरी बजार,
वैशाख सुदी १५, स २०११

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१० - ४)

श्रीमान् पडित प्यारेलालजी भगत, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द इन्दौर पहुँच गये, परन्तु ऐसा श्रवणपथ हुवा जो आपको कुछ अस्वस्थता हो गई । सभव है मार्गमे कुछ अननुकुल स्थानादिप्रयुक्त बाधा हो गई हो । अब आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा; क्योकि वहॉ पर बाह्य और आभ्यन्तर कारण अनुकूल हैं । मेरी तो यह सम्मति है - अब आपको अवस्थाके अनुकूल एक ही क्षेत्र पर रहना चाहिये । कहॉ रहे यह आपकी इच्छा पर निर्भर है । कही रहिये, आपको सर्वत्र अनुकूलता है । सर्वसे उत्तम स्थान तो वह है जहॉ पर तत्त्वज्ञानके विशेष साधन हो । आप तो स्वय विज्ञ है, क्या आपको लिखे । श्रीयुत सेठजी सा को मेरा यथायोग्य कहना । सेठजी सा तो स्वकार्यमे सलग्न है । उसका फल भविष्यमे अच्छा होगा, यह तो निर्विवाद है । वर्तमानमे कितनी शान्ति उन्हे है इसका स्वसवेदन स्वय वे कर रहे हैं । विशेष क्या लिखे ।

वैशाख सुदि १३, स २०१२

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१० - ५)

श्रीयुत महाशय भगतजी सा , योग्य इच्छामि

मै सागरसे इतनी दूर आया सो सिद्धक्षेत्र आदि विचार कर ही तो आया हू । इसमे जितना आपका समागम इष्ट है वह मैं ही जानता हू । परन्तु आप पर मेरा उतना ही तो अधिकार है जितना हो सकता है । मै तो निरन्तर भावना भाता हूॅ जो आपसे

साधर्मियोका एक क्षणमात्र वियोग न हो । परन्तु मेरे वशकी बात नहीं । यह तो आपके उदार हृदयकी बात है । जो एक वृद्धकी समाधिमे समय देना चाहिये । विशेष क्या लिखू । श्रीपतासीबाई को क्या लिखे वह दो वर्ष पहिले क्या कहती थी उन्हींसे पूछना। परन्तु किसीको बलात्कार करना - तुम आओ ही यह उनकी दया पर निर्भर है । हम तो पार्श्वनाथके चरण रजमें पडे है । सम्भव है उनके ज्ञानमे हमारे अन्तिम कालमे सर्व अनुकूल समागम मिल जावे । श्री सेठ सा तो अत्यन्त दयालु हैं । उन्हे क्या लिखू । उनकी दृष्टि तो समयानुकूल होती है ।

जेष्ठ बदि १० स २०१२

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१० - ६)

श्रीयुत महाशय भगतजी सा , योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । ससारमे स्वास्थ्य काहेका । परन्तु आप उस स्वास्थ्यका लाभ ले चुके है जो इस स्वास्थ्यका कारण ही कुछ कालमे निर्मूल हो जावेगा । मै तो निरन्तर आपके अभ्रान्त विचारोको स्मरण करता हूँ । मुझे इस बातकी महती प्रसन्नता है जो आप यथार्थ बातको व्यवहारमे लाते है । हॉ मे हॉ मिलानेवाले प्राय अनेक है, तत्त्वके कथनमे रुचि तक नहीं रखते । अस्तु, चमेलीबाईजी और उनकी मॉसे मेरा धर्मस्नेह कहना । श्री नन्दलाल बाबू बहुत ही भद्र हैं ।

प्र भाद्र बदि १, स २०१२

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१० - ७)

श्रीयुत महाशय भगतजी सा , योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । प्रसन्नता इस बातकी है जो आपका स्वास्थ्य अच्छा है । मेरा तो विश्वास है - जिनको यथार्थ ज्ञान हो गया वे यथार्थ पथप्रदर्शक हैं और जिसे भेदज्ञान नहीं हुवा वह जो बोले परमार्थपदका साधक नहीं । आपके निवाससे

यहाँ भी अच्छा रहता है और वहाँ जो आपके सहवासमे रहता होगा, सुमार्गरुचिया ही होगा । श्री नन्दलालजीसे हमारा धर्मस्नेह । महान् भद्र मानुष है । श्री चमेलाबाई व उनकी माँसे इच्छाकार कहना । धन्य है उन आत्माओंको जिन्होने परको पर और अपनेको अपना जाना ।

भाद्रबदि ६, स २०१२

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१० - ८)

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी प्यारेलालजी भगत, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे । फोडा आदि शान्त होगे । मेरा निजका विश्वास है जो आपका मोहरूपी फोडा फूट चुका है । तब औदयिक फोडा कील निकलने के बाद कुछ आपत्तिजनक नही । आपका विशद बोध जगतके उपद्रवोको शान्त कर देता है । दीपक प्रकाशवत् क्या वह निज आपत्तिको शमन करनेमे समर्थ न होगा । यहाँ पर हम लोक सानन्दसे है । सानन्दका कारण तो परको न अपनानेमे है । जहाँ पर अपनाया अशान्ति आई । कोई कुछ करे उसमे तटस्थ रहे । अन्तमे तटस्थता ही रखना पडेगी । श्री चमेलाबाई व उनकी माँसे इच्छाकार । भगतजीका समागम तत्त्वज्ञानमे मूल कारण है । श्री नन्दलालजीसे कल्याणभाजन हो, श्रीयुत छोटेलालजीसे दर्शनविशुद्धि । स्याद्वाद विद्यालयमे जो महापद है उसकी सार्थकता आपके निमित्तसे होगी । फिर जो हो ।

द्वि भाद्रबदि २, स २०१२

आ शु चि
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

१७ फरवरी १९४५

* कोई समय व्यर्थ मत जाने दो । इसका यह अर्थ नहीं जो २४ घण्टे पुस्तकावलोकन किया करो और न यह भी अर्थ है जो सर्वदा कुछ न कुछ सद्विचार रखने चाहिए । बल्कि इसका यह प्रयोजन है जो मन मे कोई भी कल्पना न आने दो ।

ब्र. सुमेरचन्द्रजी भगत

(श्रीमान् ब्र सुमेरचन्द्रजी भगतका जन्म कार्तिक सुदि ९ वि स १९५३ को जगाधरी (पजाब) मे हुआ है । पिताका नाम श्री लाला मूलराजजी और माताका नाम सोनादेवी तथा जाति अग्रवाल है । स्कूलमे हिन्दी मिडिल तक शिक्षा ग्रहण करनेके बाद ये घरके व्यवसायमे लग गये ।

प्रारम्भसे ही इनकी धार्मिक रुचि विशेष थी । पूजा, दान और व्रतोका पालन करना आदि क्रिया मुख्य होनेसे बाल-बच्चेवाले होकर भी ये जनता द्वारा 'भगत' पद द्वारा सम्बोधित किये जाने लगे । इन्होने अपनेको कभी नहीं भुलाया । यही कारण है कि अवसर मिलते ही ये कौटुम्बिक जीवनसे उदासीन हो मोक्ष मार्गकी ओर झुके । इस समय ये आठवीं प्रतिमाके व्रत पालते हैं । इनके शिक्षागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री १०५ वर्णीजी महाराज स्वय है । इन्होने यह प्रतिमा वि स २००१ मे स्वीकार की थी।

इतना सब होते हुए भी इन्होने समाज और राष्ट्रहितके कार्यो से कभी भी उपेक्षा धारण नहीं की । स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए देशमे जो आन्दोलन हुआ है उसमे भी इन्होने सक्रिय भाग लेकर देशहितके कार्यको आगे बढाया है ।

यदि हम इनके विषयमे शरीर और उसकी छायाका जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध इनका पूज्य श्री १०५ वर्णीजी महाराज के साथ कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी । जब कभी कर्त्तव्य विशेष की पूर्तिके लिए उनकी आज्ञासे इन्हे अलग रहना पडा है तब भी पत्र व्यवहार द्वारा इन्होने उसे बनाये रखनेका प्रयत्न किया है । यो तो इनका पत्र व्यवहार बहुत बडा है पर उसमेसे प्राप्त हुए कुछ उपयोगी पत्र यहा दिये जाते है ।)

(११ - १)

शान्तिप्रकृति प्रिय श्रीलाला सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

आपके द्वारा भेजी हुई वस्तु जो आतप निवारणके लिए जलसयोग चाहती है आयी । अम्तु, अब आपको और हमको वही कार्य करना हितकर होगा जो इस आतपादिसे आत्मा सुरक्षित रहे । अब तो ऐसी परिणति बनाओ कि यह हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे । यह भला वह बुरा यह वासना मिट जावे, क्योकि यही वासना

बन्धकी जननी है । आजतक इन्हीं पदार्थोमे ऐसी कल्पना करते-करते ससार ही के पात्र रहे । बहुत प्रयास किया तो इन बाह्य वस्तुओको छोड दिया किन्तु इनसे कोई तत्व न निकला । निकले कहाँ से ? वस्तु तो वस्तुमे है, परमे कहाँसे आवे ? परके त्यागसे क्या, क्योकि वह तो स्वय पृथक् है । उसका चतुष्टय भी स्वय पृथक् है । किन्तु विभाव दशामे जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है उस पर्यायका त्याग ही शुद्ध चतुष्टयका उत्पादक है, अत उसकी ओर दृष्टिपात करो । लौकिक चर्चाको तिलाञ्जलि दो । आजन्मसे वही आलाप तो रहा । अब एक बार निज आलापकी तान लगाकर तानसेन हो जाओ । अनायास सर्व दुखोकी सत्ताका अभाव हो जावेगा । विशेष क्या लिखे ? जिसके हाथ इलायची भेजी वह जीव अत्यन्त भद्र है । ऐसे मनुष्यका समाज सुखकर है । इनके साथ स्वाध्याय बहुत ही लाभप्रद होगा तथा यह जीव आपका तो अतिप्रेमी है । आप अपने साथीको समझा देना । यदि अब द्वन्द्वमे न पडे तो बहुत ही अच्छा होगा । द्वन्द्वके फलकी रक्षाके लिए फिर द्वन्द्व मे पडना कहाँ तक अच्छा होगा सो समझमे नहीं आता । इससे शान्ति न मिलेगी, प्रत्युत बहुत अशान्ति मिलेगी । परन्तु अभी ज्ञानमे नहीं आती । धतूरेके नशेमे धतूरेका पत्ता भी पीला दीखता है । आपका अनुरागी है, समझा देना ।

ईसरी
फाल्गुन सु १४, स १९९४

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(११ - २)

श्रीयुत लाला शान्तिप्रकृति प्रिय सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी बुद्धिमे तो प्राय हम ही लोक स्वकीय शान्तिके बाधक है । जितने भी पदार्थ ससारमे है वह एक भी शान्त स्वभावके बाधक नहीं । बर्तनमे रक्खी हुई मदिरा अथवा डिब्बीमे रक्खा हुआ पान पुरुषमे विकृतिका कारण नहीं, एव परपदार्थ हमे बाध्य करके विकारी नहीं करता । हम स्वय अपने मिथ्याविकल्पोसे उनमे इष्टानिष्ट कल्पना कर सुखी और दुखी होते है । कोई भी पदार्थ न तो सुख देता और न दु ख देता है । जहाँ तक बने आभ्यतर परिणामोकी विशुद्धितावृद्धि पर सदैव सावधान रहना चाहिए । गृहस्थोका सर्वथा अहित ही होता हो यह नियम नहीं । हित और अहितका

सम्बन्ध सम्यक्त्व और मिथ्याभावसे है । जहाँ पर सम्यक्त्वभाव है वहॉ हित और जहाँ मिथ्याभाव है वहाँ पर अहित है । मिथ्याभाव तथा सम्यक्त्वभाव गृहस्थ व मुनि दोनो अवस्थाओमे होता है । हॉ साक्षान्मोक्ष मार्गका साधक दिगम्बरत्व जो है सो गृहस्थके उस पदका लाभ परिग्रहके अभावमे ही होता है । अत जहॉ तक हमारा पुरुषार्थ है, श्रद्धानको निर्मल बनाना चाहिए तथा विशेष विकल्पोको त्याग त्यागमार्गमे रत रहना चाहिए । पदके अनुसार शान्ति आती है । इस अवस्थामे वीतरागावस्थाकी शान्तिकी श्रद्धा तो हो सकती है परन्तु उसका स्वाद नहीं आ सकता । भोजन बनानेसे उसका स्वाद आजावे यह सम्भव नहीं । रसास्वाद तो चखनेसे आवेगा । आप जानते है जो इस समय घरको त्याग कर मनुष्य कितना दम्भ करता है और वह अपनेको प्राय जघन्य मार्गमे ही ले जाता है, अत जब तक आभ्यन्तर कषाय न जावे घर छोडनेसे कोई लाभ नही । कल्याणकी प्राप्ति आतुरतासे नहीं, निराकुलतासे होती है । वैद्यराजजीसे कह देना ऐसी औषधि सेवन रोगियाको बताओ जो इस जन्मज्वरसे छूटे । शरीर तो पर ही है । जब आप आवे तो एक माह पहले सूचना दीजियेगा ।

ईसरी,
अगहन सु ५, स १९९५

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(११ - ३)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । पत्रादिकके पढनेसे क्या होता है । होनेकी प्रकृति तो आभ्यन्तरमे है । जलमे जो लहर उठती है वह ठडी है, बालूमे वह बात नहीं । शान्तिका मार्ग मूर्छाके अभावमे है । जहॉ पर शान्ति है वहाँ पर मूर्छा नहीं और जहॉ मूर्छा है वहाँ शान्ति नहीं । बाह्य पदार्थ मूर्छामे निमित्त होते हैं । यह मूर्छा दो तरह की है - एक शुभोपयोगिनी दूसरी अशुभोपयोगिनी । उनमे पदार्थ भी दो तरहके निमित्त हैं । अर्हद्भक्ति आदि जो धर्मके अग है उनमे अर्हदादि निमित्त हैं और जो विषय कषायादिक हैं वे पापके अग है । उनमे स्त्री, पुत्र, कलत्रादि निमित्त कारण हैं । अत इन बाह्य पदार्थो पर ही यदि अवलम्बित रहे तब कहॉ तक ठीक हैं, समझमे नहीं आता । ऐसा भी देखा गया है जो बाह्य पदार्थ कुछ भी नहीं । यह जीव स्वयमेव कल्पना कर

शुभाशुभ परिणामोका पात्र हो जाता है । इससे श्रीस्वामी कुदकुद महाराजका मत है कि अध्यवसान भाव ही बन्धका जनक है । अध्यवसानमे बाह्यद्रव्य निमित्त पडते है, अत उनके त्यागका उपदेश है फिर भी बुद्धिमे नहीं आता । जैसे अशुभोपयोगके कारण बाह्य पुत्रादिक है, उनका त्याग कैसे करे ? उन्हे छोड देवे, फिर क्या छोडनेसे त्याग हो गया ? तब यही कहना पडेगा कि उनके द्वारा जो रागादिक परिणति होती थी वही त्यागना चाहिए । अथ च स्त्री आदि तो दृश्य पदार्थ है उन्हे छोड भी देगा, परन्तु अर्हदादिक तो अतीन्द्रिय है उन्हे कैसे छोडे ? क्या उन्हे ज्ञानमे न आने देवे, क्या करे ? कुछ समझमे नहीं आता । अन्ततोगत्वा यही निष्कर्ष निकलता है जो ज्ञानमे भले ही आवो, रुचिरूप ज्ञेय न होना चाहिए । तो अरुचि रूप इष्ट है, अरुचि भी तो द्वेषका अनुमापक है, तब क्या करे, जड बन जावे ? यह भी नहीं हो सकता । ज्ञानका स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है । ज्ञेय उसमे आता ही रहेगा । तब यही बात आई जो स्वपरप्रकाशक ही रहे, इससे अगाडी न जावे अर्थात् राग-द्वेषरूप न हो । यह भी समझमे नही आता जो ज्ञान रागादिक रूप होता है, क्योकि ज्ञान ज्ञेयका ज्ञाता है, ज्ञेयसे तादाम्य नही रखता, तब क्या करे ? यही करो कि अपनी परिणति रागादिक रूप न होने दो । क्या यह हमारे बसकी बात है ? हम लाचार है, दुखी है, इस जालसे नही बच सकते । यह सब तुम्हारी कायरता और अज्ञानताका ही कटुक फल है जो रागादिकोको दु खमय, दु खके कारण जानकर भी उनसे पृथक् होनेका प्रयत्न नहीं करते । अच्छा अब आपसे हम पूछते है कि क्या रागादिक होनेका आपको विषाद है, उन्हे आप पर समझ रहे हो ? यदि हॉ तब तो आपको उनके दूर करनेका प्रयास करना चाहिए । और यदि केवल यही भीतरी भाव है कि हम तुच्छ न समझे जावे, इसीसे ऊपरी बाते बना देते है कि रागादिक अनिष्ट है, दु खदाई है, पर है, तो व्यर्थ है । परन्तु जिस दिन सम्यग्ज्ञानके द्वारा इनके स्वरूपके ज्ञाता हो जावोगे फिर इनके निर्मूल होनेमे अधिक विलम्ब न लगेगा । रागादिकके होनेमे तो अनेक बाह्य निमित्तोकी प्रचुरता है और स्वाभाविक परिणतिके उदयमे यह बाह्य सामग्री अकिचित्कर है । अत स्वाधीन पथको छोडकर पराधीन पथमे आनन्द मानना केवल तुम्हारी मूर्खता है । यावत् यह मूर्खता न त्यागोगे, कही भी चले जाना तुम्हारा कल्याण असभव है । क्या लिखे ? इन विकल्पजालोने सन्निपातकी तरह मूर्छाका उदय आत्मामे स्थापित कर दिया है जिससे चेत ही नहीं होता । यह सब बाते मोहके विभव की है । यदि भीतरसे हम जान जावे तब सन्निपात ज्वर क्या काल-ज्वर तक चला जा सकता है । अत बाह्य प्रक्रिया छोड कर आभ्यन्तर प्रक्रियाका अभ्यास करो । अनायास एक दिन नि सग हो जाओगे ।

नि सग तो पदार्थ है ही, परन्तु तुम्हारी जो बन्धमे एकत्वकी कल्पना है उसका अभाव हो जावेगा ।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ४)

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप स्वय विज्ञ है । मेरी तो यह सम्मति है कि कल्याणका मार्ग अपनी आत्माको त्यागकर अन्यत्र नही । जबतक अन्यत्र देखनेकी हमारी प्रकृति रहेगी तबतक कल्याणका मार्ग मिलना दुर्लभ है । हम लोगोकी अन्तरङ्ग भावना अतिदुर्बल हो गई है । अपने आत्मबलको तो एक तरहसे भूल ही गये है । पञ्च परमेष्ठी का स्मरण इसलिये नहीं था कि हम माला फेरकर कृतकृत्य हो जावे । उसका यह प्रयोजन था जो आत्मा ही के वह पाच प्रकार के परिणमन है, उनमे एक सिद्धपर्याय तो अन्तिम अवस्था है । यह वह अवस्था है जिसका फिर अन्त नहीं होता । ४ अवस्थाए औदारिक शरीरके सम्बन्धसे मनुष्य पर्यायमे ही होती है । उनमे अरहन्त भगवान् तो परम गुरु है जिनकी दिव्यध्वनिसे ससारके आताप शान्त होनेका उपदेश जीवोको मिलता है और ३ पद है सो साधक है । यह सर्व आत्माकी ही पर्याये है । उनके स्मरणसे हमारी आत्मामे यह ज्ञान होता है जो यह योग्यता हमारी आत्मा मे है । हमे भी यही उपाय कर चरम अवस्थाका पात्र होना चाहिये । लौकिक राज्य जब पुरुषार्थसे मिलता है तब मुक्तिसाम्राज्य का लाभ अनायास हो जावे यह नहीं । लोक कहावत है-

मांगे मिले न भीख, बिन मांगे मोती मिले ।

अत अरहन्तादि परमेष्ठीके भिक्षा मागनेसे हम ससारबधन से नहीं छूट सकते । जिन उपायोको श्रीगुरुने दर्शाया है उनके साधनसे अवश्यमेव वह पद अनायास प्राप्त हो जावेगा । **ज्ञान ही मोक्षका हेतु है** । यदि वह नहीं है तब बाह्यमे व्रत, नियम, शील, तपके होने पर भी अज्ञानी जीवोको मोक्षका लाभ नहीं । **अज्ञान ही बंधका कारण है**। उसके अभाव होनेपर बाह्यमे व्रत, नियम, शील, तप आदिका अभाव भी है तब भी ज्ञानी जीवोको मोक्षका लाभ होता है । अत निमित्त कारणोको उतना ही आदर देना योग्य है जितनेसे अन्तरङ्गमे बाधा न पहुँचे । सर्वोत्तम तो यह उपाय सर्वसे उत्कृष्ट और सरल है जो निरन्तर अपनी दिनचर्या की प्रवृत्ति देखता रहे । जो आत्माको

अनुचित **जान पड़े** उसे त्यागे और जो उचित जान पडे किन्तु परमार्थसे बाह्य हो उसे भी त्यागे । **सीडी**का उपयोग वहीं तक उपादेय है जबतक महलमे नहीं पहुँचा है । **भोजन**का उपयोग क्षुधा निवृत्तिके लिये है । **एवं ज्ञानका उपयोग रागादि निवृत्तिके लिये है** । केवल अज्ञान निवृत्ति ही नहीं, अज्ञान निवृत्तिरूप तो वह स्वय है । इसी तरह बाह्य व्रतका उपयोग चारित्रके लिये है । यदि वह न हुआ तब जैसा व्रती वैसा अव्रती । मन्द कषाय व्रतका फल नहीं । वह तो मिथ्यात्व गुणस्थानमे भी हो जाता है। अत व्रतका फल वास्तव मे चरित्र है । उसीसे आत्मामे पूर्ण शान्तिका लाभ होता है ।

ईसरी बाजार,
अगहन सुदी १२, स १९९५

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(११ - ५)

श्री सुमेरचन्द जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

परोपकारकी अपेक्षा स्वोपकारमे विशेषता है । परोपकार तो मिथ्यादृष्टि भी कर सकता हे । अपितु यह कहिए कि परोपकार मिथ्यादृष्टिसे ही होता है । सम्यग्दृष्टिसे परोपकार हो जावे यह बात अन्य है । परन्तु उसके आशयमे उपादेयता नहीं, क्योकि यावत् औदयिक भाव है उनका सम्यग्दृष्टि अभिप्रायसे कर्ता नहीं, क्योकि वे भाव अनात्मज है । इसका यह तात्पर्य है जो यह भाव अनात्म जो मोहादि कर्म उनके निमित्तसे होते है अतएव अस्थायी है । उन्हे क्या सम्यज्ञानी उपादेय समझता है ? नहीं समझता है । इसके लिखनेका यह तात्पर्य है जैसे सम्यग्दृष्टिके यह श्रद्धा है जो मै परका उपकारी नही इसी तरह उसकी यह भी दृढ श्रद्धा है जो पर मेरा भी उपकारी नही । निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे उपकार हो जाना कुछ अन्तरग श्रद्धानका बाधक नहीं । इसी प्रकार अनुपकारादि भी जानना । **सत्य पथके अनुकूल श्रद्धा ही मोक्षमार्गकी आदि जननी है ।**

ईसरी,
पौष कृष्ण ४, स १९९५

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ६)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाना । आपके भाई सा अच्छे है यह भी आपके पुण्योदयकी प्रभुता है । शान्तिका कारण स्वच्छ आत्मामें है स्थानोमे नहीं । बाहर जाकर भी शान्ति यदि अन्तरङ्ग मे मूर्छा है, नहीं मिलती । केवल उपयोग दूसरी जगह अन्य मनुष्योके सम्पर्कमे परिवर्तित हो जाता है और वह उपयोग उस समय अन्यके सम्बन्धकी चर्चासे आकुलित ही रहता है । निराकुलताका अनुभव न घरमे है और न बाहर । यदि शान्तिकी इच्छा है तब निरन्तर यह चेष्टा होना श्रेयस्करी है जो यह हमारे रागादिक हैं यही ससारके कारण है, अन्य नहीं । निमित्त कारणमे दोषारोपण स्वप्नमे भी नहीं होना चाहिए । यहाँ का व वहाँ का वातावरण एकसा हैं, चाहे नागनाथ कहो चाहे सर्पनाथ कहो ।

आ शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ७)

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी योग्य दर्शनविशुद्धि

बन्धुवर ! कल्याणपथ निर्मल अभिप्रायसे होता है । इस आत्माने अनादिकालसे अपनी सेवा नहीं की । केवल पर पदार्थोके सग्रहमे ही अपने प्रिय जीवनको भुला दिया। भगवान् अर्हन्तका यह आदेश है जो अपना कल्याण चाहते हो तो इन परपदार्थोमे जो आत्मीयता है वह छोडो । यद्यपि परपदार्थ मिलकर अभेदरूप नहीं होते, किन्तु हमारी कल्पनामे वह अभेदरूप ही हो जाते है । अन्यथा उनके वियोगमे हमे क्लेश नहीं होना चाहिये । धन्य उन जीवोको है जो इस आत्मीयताको अपने स्वरूपमे ही अवगत कर अनात्मीय पदार्थोसे उपेक्षित होकर स्वात्मकल्याणके भोगी होते है । आपका अभिप्राय यदि निर्मल है तब यह बाह्यपदार्थ कुछ भी बाधक नहीं और न साधक हैं । साधक-बाधक तो अपनी ही परिणति है । ससारका मूल हेतु हम स्वय हैं । इसी प्रकार मोक्षके भी आदि कारण हम ही है और जो अतिरिक्त कल्पना है, मोहज भावोकी महिमा है । और जबतक उसका उदय रहेगा, मुक्ति-लक्ष्मीका साम्राज्य मिलना असम्भव है । उसकी कथा तो अजेय है । सो तो दूर रही, उसके द्वारा जो कर्म सग्रहरूप हो गये है उनके अभाव बिना भी शुद्ध स्वरूपात्मक मोक्षप्राप्ति दुर्लभ

है, अत· जहॉ तक उद्यमकी पराकाष्ठा इस पर्यायसे हो सके केवल एक मोहके कृश करनेमे ही उसका उपयोग करिये । और जहॉ तक बने परपदार्थके समागमसे बहिर्भूत रहनेकी चेष्टा करिये । यही अभ्यास एक दिन दृढतम होकर ससारके नाशका कारण होगा । विशेष क्या लिखूँ ? विशेषता तो विशेष ही मे है । आज कलका वातावरण अति दूषित है । इससे सुरक्षित रहना ही अच्छा है ।

ईसरी
पूस सुदी ६, स १९९५

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ८)

श्री लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मै क्या उपदेश लिखू ? उपदेश और उपदेष्टा आपकी आत्मा स्वय है । जिसने अपनी आत्मपरिणतिके मलिन भावोसे तटस्थता धारण कर ली वही ससार समुद्रके पार हो गया । यह बुद्धि छोडो । परसे न कुछ होता है, न जाता है । आपहीसे मोक्ष और आपहीसे ससार है । दोनो पर्यायोका उदय होता है । आवश्यकता इस बातकी है जो हममे ससारमे भ्रमण करानेवाली कायरता है उसे दूर करे । जो मनुष्य पराधीन होते है वह निरन्तर कायर और भयातुर रहते हैं । पराधीनतासे बढकर कोई पाप नहीं । जो आत्मा पराधीन होकर कल्याण चाहेगा, मेरी समझमे वह कल्याणसे वञ्चित रहेगा । अत अपने स्वरूपको देखो । ज्ञातादृष्टा होकर प्रवृत्ति करो । चाहे भगवत् पूजा करो चाहे विषयोपभोगमे उपयोग हो, किन्तु उभयत्र अनात्मधर्म जान रत और अरत न हो । अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्मा ही पर लक्ष्य रक्खो । पास होते हुए भी कस्तूरीके अर्थ कस्तूर मृगकी तरह स्थानान्तरमे भ्रमण कर आत्मशुद्धिकी चेष्टा न करो।

ईसरी,
आषाढ शु ७ स १९९६

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ९)

श्रीयुत महाशय, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपने जो आस्राव्य और आस्रवकके विषयमे प्रश्न किया उसका उत्तर इस प्रकार है -

आत्मा और पुद्गलको छोडकर शेष ४ द्रव्य शुद्ध है । जीव और पुद्गल ही दो द्रव्य है जिनमे विभावशक्ति है । और इन दोनोमे ही अनादि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्वारा विकार्य्य और विकारकभाव हुआ करते है । जिस कालमे मोहादि कर्मके उदयमे रागादिरूप परिणमता है उस कालमे स्वय विकार्य हो जाता है और इसके रागादिक परिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गल मोहादि कर्मरूप परिणमता है, अत उसका विकारक भी है । इसका यह आशय है - जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप होते है और पुद्गल कर्मका निमित्त पाकर जीव स्वय रागादिरूप परिणम जाता है । अत आत्मा आस्रव होने योग्य भी है और आस्रवका करनेवाला भी है । इसी तरह जब आत्मामे रागादि नहीं होते उस कालमे आत्मा स्वय सम्वार्य्य और सवरका करनेवाला भी है । अर्थात् आत्माके रागादि निमित्तको पाकर जो पुद्गल ज्ञानावरणादि रूप होते थे, अब रागादिकके बिना स्वय तद्रूप नहीं होते, अत सवारक भी है ।

अत मेरी सम्मति तो यह है जो अनेक पुस्तकोका अध्ययन न कर केवल स्वात्मविषयक ज्ञानकी आवश्यकता है और केवल ज्ञान ही न हो किन्तु उसके अन्दर मोहादिभाव न हो । ज्ञानमात्र कल्याण मार्गका साधक नहीं किन्तु रागद्वेषकी कल्मषतासे शून्य ज्ञान मोक्षमार्गका साधक क्या स्वय मोक्षमार्ग है । जो विष मारक है वही विष शुद्ध होनेसे आयुका पोषक है । अत चलते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, यद्वा तद्वा अवस्था होते जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको कलकित नहीं करता वही जीव कल्याण मार्गका पात्र है ।

बाह्य परिग्रहका होना अन्य बात है और उसमे मूर्छा होना अन्य बात है । अत बाह्य परिग्रहके छोडनेकी चेष्टा न करो । उसमें जो मूर्छा है, ससारकी गतिका वही है उसको निर्मूल करनेका भगीरथ प्रयत्न करो । उसका निर्मूल होना अशक्य नहीं । अन्तरङ्गकी कायरताका अभाव करो । अनादि कालका जो मोहभावजन्य अज्ञानभाव हो रहा है उसे पृथक् करनेका प्रयत्न करो । अहर्निश इस चिन्तामे लौकिक मनुष्य सलग्न रहते हैं कि हे प्रभो ! हमारे कर्मकलक मिटा दो । आप बिना मेरा कोई नहीं,

कहा जाऊ, किससे कहूँ इत्यादि करुणात्मक वचनो द्वारा प्रभुको रिझानेका प्रयत्न करते है । प्रभुका आदेश है - यदि दु खसे मुक्त होनेकी चाह है तब यह कायरता छोड़ो और अपने स्वरूपकी चितना करो । ज्ञाता दृष्टासे बाह्य मत जाओ । यही मोक्षका पथ है । तदुक्तम् -

य: परमात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्तत: ।
अहमेव मयोपास्य: नान्य: कश्चिदिति स्थिति: ।।

जो परमात्मा है वही मै हूँ और मै हूँ सो परमात्मा है । अत मै अपने द्वारा ही उपास्य हूँ, अन्य कोई नहीं, ऐसी ही वस्तु मर्यादा है ।

यह अत्युक्ति नहीं । जो आत्मा रागद्वेष शून्य हो गया वह निरन्तर स्वस्वरूपमे लीन रहता है तथा शुद्ध द्रव्य है । उपकार अपकारके भाव रागी जीवोमे ही होते है । अत परमात्माकी भक्तिका यही तात्पर्य है जो रागादि रहित होनेकी चेष्टा करो । भक्तिका अर्थ गुणानुराग, सो यह भी अनुराग यद्यपि गुणोके विकासका बाधक है फिर भी उसका स्मारक होनेसे निचली दशामे होता है, किन्तु सम्यग्ज्ञानी उसे अनुपादेय ही जानता है । अत आत्माके बाधक कारणोमे अरुचि होना ही आत्मतत्त्वकी साधक चेष्टा है । अत परमात्माको ज्ञानमे लाकर यह भावना भावो - यही तो हमारा निजरूप है । यह परमात्मा और मै इसका आराधक इस भेदभावनाका अन्त करो । आप ही तो परमात्मा है । आत्मा परमात्माके अन्तरको स्पष्टतया जान अन्तरके कारण मेट दो अर्थात् अन्तरका कारण रागादिक ही तो है । इन्हे नैमित्तक जान इनमे तन्मय न हो । यही इनके दूर होनेका उपाय है । जहातक अपनी शक्ति हो इन्हीं रागादिक परिणामोके उपक्षीण होनेका प्रयास करना । जब हमे यह निश्चय होगया जी आत्मा परसे भिन्न है तब परमे आत्मीयताकी कल्पना क्या हमारी मूढताका परिचायक नहीं है ? तथा जहा आत्मीयता है वहा राग होना अनिवार्य है । अत यदि हम अपनेको सम्यग्ज्ञानी मानते है तब हमारा भाव कदापि परमे आत्मीयताका नहीं होना चाहिए । रागादिकोका होना चारित्रमोहके उदयसे होता है, होओ, किन्तु अहबुद्धिके अभाव होनेसे अल्पकालमे निराश्रित होनेसे स्वयमेव नष्ट हो जावेगा ।

तीर्थङ्कर प्रभु केवल सिद्धभक्ति करते हैं । अत उनके द्वारा अतिथिसविभागरूप दान होनेकी सभावना नहीं ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

श्री सुमेरचन्द्रजी, दर्शनविशुद्धि

जिस जीवकी आत्मकल्याण करनेकी प्रबल आकाक्षा हो उसे सबसे पहले अपने आत्म-पदार्थका दृढ निश्चय करना चाहिये कि जो मै ससारदु·खसे भयभीत हो रहा हूँ वह क्या है ? जिसमे ये भाव उत्पन्न होते है वही आत्मा है, क्योकि उसीमे यह ज्ञान द्वारा प्रतीतिमे आ रहा है कि मै दुखी हूँ । दु ख क्या वस्तु है ? जो अपने अन्तरङ्गमे रुचता नहीं वही दु ख है और जो अन्तरङ्गसे रुचता है वही सुख है । यद्यपि यह सभी जीवोके ज्ञानमे आ रहा है परन्तु मोहके विषयमे इसमें कुछ अज्ञानता मिलती है । इससे यह जीव इन दोनो तत्त्वोकी विपरीततासे अनुभूति कर रहा है । दु ख तो अपने अन्तरगमे असाताके उदयसे व अरति कषायके द्वारा अरुचि परणति-रूप होता है । उसे हमे पृथक् करनेका उपाय करना चाहिये । परन्तु हम, जिन पदार्थोंके बन्धसे हमारी यह दशा हुई उन्हे दूर करनेका प्रयास नहीं करते । वास्तवमे बाह्य पदार्थ न तो सुखद है न दु खद । हम अपने रागादि भावोके द्वारा उन्हे सुखदायी और दुखदायी कल्पना कर लेते है । कोई कहे कि निमित्तकारण तो है पर यह भी कहना सगत नहीं । वे तो तटस्थ ही है । वे कुछ व्यापार (क्रिया) करके हमे दु ख नहीं देते । किन्तु हमारे ज्ञानमे जो वे भासमान हो रहे है, वे क्या भासमान हो रहे है ? उनके निमित्तसे जो ज्ञानमे परिणमन हो रहा है वह परिणमन ही हमारा अन्तर ज्ञेय है और वही ज्ञेय हमे कल्पनाके अनुसार सुख-दु खकी उत्पत्तिमे कारण नहीं । केवल अन्त कलुषता परिणति ही आकुलताकी जनक है । हम उस कलुषताके पृथक् करनेका तो प्रयास ही नहीं करते जिससे सुख और दु ख होता है, किन्तु उस ज्ञेयके सद्भाव और असद्भावका प्रयास करते है । अथवा ऐसे उपाय करते है कि वह वस्तु हमारे उपयोगमे न आवे । इसके लिए कोई तो मन्दकषायी है जो शुभ भावोके कारण ज्ञेयोके ज्ञानमे आनेका प्रयास करते है । तीव्रकषायी जीव इसके लिए मादकादि द्रव्यका सेवन कर उन्मत्त हो दु ख मेटना चाहते है । कोई नाटक-थियेटर या वेश्यानृत्यमे अपने उपयोगको लगाकर उस दु खके नाशका उपाय करते है । ये सर्व प्रयत्न विपरीत हैं, क्योकि **दु:खकी जननी अन्तरगमें रागादिपरिणतिकी सत्ता जब तक रहेगी, दु:ख नही जा सकता अत: जिन्हें इन दु:खोंसे छूटनेकी आकाक्षा हो वे रागादिकोंके नाशका उपाय करें ।** आप सानन्द जीवन बिताइये । जो सामग्री मिली है, उसे साम्यभावसे जानने-देखनेका अभ्यास करिये । इस कालमे आपको जो समागम है, उत्तम है । इससे उत्तम मिलना

कठिन है । हमारा विचार प्राय बाहर जानेका नही होता, क्योकि कारणकूट सर्वत्र अनकूल नहीं मिलते ।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ११)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चारित्रमोहका गलना इस पर्यायसे होना कठिन है । परिग्रहका जो त्याग आभ्यन्तरसे होता है वही तो कल्याणका मार्ग है । जो त्याग ऊपरी दृष्टिसे होता है वही क्लेशकर है । वर्तमानमे वह सुखजनक नही और न आगामी सुखका जनक है । कौन आत्मा दु खको चाहता है ? परन्तु इतने ही भावसे दु खकी निवृत्ति नहीं होती । तत्त्वज्ञानपूर्वक राग-द्वेषकी निवृत्ति ही इसका (दु.ख-निवृत्तिका) मूल कारण है । मेरी सम्मति तो यह है कि आप जो परस्पर दो मनुष्योको मिलानेकी चेष्टा करते है और उसमे विफल प्रयत्न रहते है और फिर विफल होने पर भी गुरुताका अनुभव करते है यह सब छोडिये और एकदम सबसे कह दीजिये - जिसमे आपको सुविधा हो करो । हम कोई करनेवाले नहीं । जितना आप उन्हे मनाओगे उतना ही वे आसमान पर चढेगे । ''कौन किसका'' यही सिद्धान्त रखिये । मेरा यह तात्पर्य नहीं कि ग्रहवास छोड दीजिये, परन्तु भीतरसे अवश्य छोड दीजिये । ससारमे मानव पर्यायकी दुर्लभतापर ध्यान दीजिये । अपने परिणामो पर दृष्टि रखनेसे ही सबका भला होगा । आप रचमात्र भी व्यग्र न हो । परपदार्थ व्यग्रताका कारण नहीं । हमारी मोहदृष्टि व्यग्रताका कारण है। उसे हटाओ । उसके हटनेसे जगाधरी ही शिखरजी है । आत्मामे मोक्ष है, स्थानमे मोक्ष नहीं ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(११ - १२)

श्रीयुत् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मोही जीवका कल्याण तो इसीमे है कि बाह्यमे जो मोहके प्रबलतम निमित्त है उन्हे छोडे । अनन्तर जो तदपेक्षा कुछ न्यून निमित्त है उन्हे छोडे । पश्चात् राग-द्वेषकी

निवृत्तिके हेतु चारित्र गुणके साधन बाह्य व्रतादिक अगीकार करे । यह तो आगमकी आज्ञा है। आत्माका सबसे प्रबल शत्रु मिथ्यात्व है, जिसके द्वारा ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्ररूप रहता है । और मिथ्यात्व क्या वस्तु है ? सम्यकत्वकी तरह अनिर्वचनीय है । केवल उसके कार्यको देखकर ही हम प्रशमादि द्वारा सम्यक्त्वके सद्भावकी तरह उसका अनुमान कर सकते हैं । उसके कार्य स्थूलरूपसे तो नाना प्रकार है । जैसे - शरीरादिक परद्रव्योमे स्वात्मतत्त्वकी कल्पना करना तथा आत्माकी सत्ता ही न स्वीकार करना । अथवा पृथ्वी आदिके मिलनेसे मदिरावत् आत्मतत्त्वकी सत्ता मानना । अथवा सच्चिदानन्द व्यापक आत्माकी सत्ता स्वीकार करना । अथवा सर्वथा शुद्ध तथा ज्ञानादि गुणोसे सर्वथा भिन्न आत्माकी सत्ता मानना आदि नाना प्रकार है ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(११ - १३)

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजी चले गये है । उनके स्थान पर कुञ्जीलालजी अधिष्ठाता है । आप सानन्द स्वाध्याय करते होगे । कुछ करने कही जावो, परन्तु कल्याण तो भीतरी मूर्च्छाकी ग्रन्थिके भेदन करनेसे ही होगा और वह स्वय भेदन करनी पडेगी, चाहे समवसरणमे चले जावो ।

ईसरी,
आषाढ शु ९, स १९९६

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(११ - १४)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । अब मेरा स्वास्थ्य अच्छा है । मेरा विचार अब यहा से बनारस जाने का है और उस समय आपको पत्र दूगा । यद्यपि शरीर धर्म का साधक है, परन्तु साधकतम नहीं । अन्तरङ्ग निर्मल परिणामोंके बिना कल्याण होना असम्भव है । आत्मा निर्मल होनेसे मोक्षमार्गका साधकतम है और आत्मा ही मलिन

होनेसे ससारका साधकतम है । अत सर्वथा एकान्त नहीं । अत जहा तक बने आत्माकी मलिनताको दूर करनेका प्रयास करना हमारा कर्तव्य है । आप अपने परिणामोको निर्मल करनेका प्रयास करें । अन्यकी चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं । पर की चिन्ता करना व्यर्थ है । हमारे उदयमे जो आया उसे सहर्ष भोगनेका भाव है । कायरता करनेसे कोई लाभ नही । अतएव मेरी भावना सदैव यह रहती है जो अर्जित कर्म है उन्हे समताभावसे भोग लेना ही कल्याणके उदयमे सहायक है । विशेष क्या लिखू - हम लोग अति कायर है और पराधीनताके जालमे अपनेको अर्पित कर चुके है। इसीसे ससारी यातनाओके पात्र हो रहे है । जब तक अपनी स्वाधीनताकी उपासनामे तल्लीन न होगे, कदापि इस जालसे मुक्त न होगे । मेरा मलेरिया, विकृत परिणामो का फल है । जब तक उन परिणामोका अभाव न होगा, मलेरियाका जाना असम्भव है । औषध हमारे पास है, परन्तु हम उसे उपयोगमे नहीं लाते सो दूर कैसे हो। आशा है कुछ कालमे प्रयोग करूगा, अभी योग्यता नहीं । आप सानन्द अपनी निर्मलताका पत्र दिया करिये । यही आपका सुभागमन है । । सयुक्तावस्था यदि अनुकूल है, सुखद है । **प्रतिकूलता दु:खकी जननी है ।**

गया,
भाद्रपद शु ९, स १९९६

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - १५)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपने लिखा शाति नहीं मिलती सो ठीक ही है, ससारमे शान्ति नही और अविरत अवस्थामे शान्तिका मिलना असम्भव है । बाह्य परिग्रह ही को हम अशान्तिका कारण समझ रहे है । वास्तवमे अशान्तिका कारण अन्तरङ्गकी मूर्छा है । जब तक उसका अभाव न होगा तब तक बाह्य वस्तुओके समागममे भी हमारी सुख दु खकी कल्पना होती रहेगी । जिस दिन वह शान्ति हो जावेगी बिना प्रयासके शान्तिका उदय स्वयमेव हो जावेगा । अत हठात् कोई शान्ति चाहे तब होना असम्भव है । एक तो मूर्छाकी अशान्ति, एक उसके दूर करने की

अशान्ति । अत जो उदयके अनुकूल सामग्री मिली है उसीमें समतापूर्वक कालको बिताना श्रेयस्कर है ।

ईसरी,
कार्तिक शुक्ल १२, स १९९६

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - १६)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । क्या लिखे ? कुछ अनुभवमें नहीं आता । वास्तव जो वस्तु है वह मोहके अभावमे होती है जो कि वीतरागोंके ज्ञानका विषय है और जो लेखनी द्वारा लिखनेमे आता है उसे उस तत्त्वका अनुभव नहीं । जैसे रसनेन्द्रिय द्वारा रसका ज्ञान आत्मामे होता है उसको रसना निरूपण करे यह मेरी बुद्धिमे नहीं आता । अत क्या लिखू ? जितनी इच्छा है आकुलताकी जननी है । जो जानने और लिखनेकी इच्छा है यह भी आकुलताकी माता है । यह क्या परमानन्दका प्रदर्शन करा सकती है ? परन्तु जैसे महान् ग्रन्थोमे लिखा है कि जीवका मूल उद्देश्य सुख प्राप्ति है तथा उसका मूल कारण मोह परिणामोकी सन्ततिका अभाव है । अत जहा तक बने इन रागादिक परिणामोके जालसे अपनी आत्माको सुरक्षित रक्खो । इन पराधीनताके कार्योसे मुख मोडो । **अपना तत्त्व अपनेमें ही है** । केवल उस ओर हो जावो और इस परकी ओर पीठ दो । ३६ पना जो आपसे है उसे छोडो और जगसे जो ६३ पना है उसे छोडो जगतकी तरफ जो दृष्टि है वह आत्माकी ओर कर दो इसीमे श्रेयोमार्ग है । दोहा -

''जगतैं रहो छत्तीस ३६ हो राम चरण छै तीन ६३ ।
तुलसीदास पुकार कहें है यही मतो प्रवीण ।।''

जहाँ तक आत्मकैवल्यकी भावना ही उपादेय रूपसे भावनाद्वैत भावना ही जगतकी जननी है । शारीरिक क्रिया न तो साधक है और न बाधक है । इसी तरह मानसिक तथा वाचनिक जो व्यापार है उनकी भी यही गति । इनके साथ जो कषायकी वृत्ति है यही जो कुछ है सो अनर्थकी जड़ है । इनके पृथक् करनेका उपाय एकत्व

भावना है । मै पोस्टेज नही रखता, अत जब पत्र डालो तब टिकट रख दीजियेगा । क्या कहे रात्रि दिन मोहके सद्भावसे आत्मामे चैन नही, अत बाह्य परिग्रहके त्यागसे शान्तिकी गन्ध भी नहीं ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - १७)

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चि मुन्नालालजी से आशीर्वाद । हमारी अनादिकालसे जो यह धारणा बनी हुई है कि परपदार्थ ही हमारा उपकार और अनुपकार करता है यह धारणा ही भवपद्धतिका कारण है । आज ससारमे जितने मत प्रचलित है अथवा प्राक् थे या भविष्यमे होगे, सर्व ही का यह अभिमत है जो हमारी ससार यातनाका अन्त हो और उसके हेतु नाना युक्तियो और आगम-गुरुपरम्पग, स्वानुभव द्वारा उपाय दिखानेका प्रयत्न करते है । जो हो, हम और आपकी आत्मा, चैतन्यस्वरूप आत्मा है । कुछ विचारसे काम लेवे तब यही अन्तमे अनुभवसाक्षी निर्णय होगा जो बन्धसे छूटने का मार्ग हमारे मे ही है, केवल पर-पदार्थोसे निजत्व हटाना है । आपको उचित है - अपने दु खमे अपनी कषायपरणतिको ही कारण समझे । कल राजगृही जावेगे । १५ दिन बाद पहुँचेगे ।

ईसरी,
अगहन सुदि ४, स १९९७

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - १८)

योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने, रागद्वेष के कारणो से सुरक्षित रहना । कल्याणका पथ आपमे है। पर से न हुआ, न होगा । शुभाशुभ उदयमे समभाव रखना यही जीवनका लक्ष्य है । स्वाध्यायमे लक्ष्य रखियेगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - १९)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे । अबकी बार मलेरियाने बहुत ही सताया । अब तक निर्बलता है । किन्तु स्वाध्यायादि अब सानन्दसे होता है ।

१ - मनुष्य वही है, जो अपनी आत्मा की प्रवृत्ति को निर्मल करता है ।

२ - सत्सगामका अर्थ यही है जो निजात्मा को बाह्य पदार्थों से भिन्न भावनाके अभ्याससे कैवल्यपद पानेका पात्र हो ।

३ - जिस समागमसे मोह उत्पन्न हो वह समागम अनर्थ की जड है ।

४ - आज कल वीतरागकथाका प्रचुररूपसे प्रचार है, वीतरागताकी गन्ध नहीं ।

परिग्रहमे यही अनर्थ होता है । यह बात किसीसे गुप्त नहीं, अनुभूत है । अत उदाहरणकी आवश्यकता नही, आवश्यकता उससे विरक्त होनेकी है ।

आवश्यकता तो इतनी है कि यदि ससारके सर्व पदार्थ भी मिल जावे तो भी उसकी पूर्ति नहीं हो सकती । अत 'आवश्यकता न हो' यही आवश्यकता है । यदि यह हो जावे तब न आपको यहाँ आनेकी आवश्यकता है और न हमे पत्र देनेकी आवश्यकता है । परन्तु वही कठिन है यही अन्धेर है । सो आप व हम सर्व इसीके जालमे है । केवल सन्तोष कर लेने के सिवाय कुछ हाथ नहीं आता । पानी विलोनेसे घी की आशा तो असम्भव है ही, छाछ भी नहीं मिल सकती । जल व्यर्थ जाता है । विलोनेसे पीनेके योग्य भी नहीं रहता है । प्रयत्नसे कार्य सिद्ध होता है । यदि कोई मोक्षमार्गका प्रयत्न करे तब कुछ असाध्य नहीं । परन्तु उस ओर उपयोग नहीं ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(११ - २०)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्दजी, दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होंगे, पत्र आया समाचार जाने । ८ दिन से फिर मलेरिया आ गया। अस्तु, ऋण लिया, देने मे दु ख मानना बेईमानी है । अत देने में ही भला है ।

आजकल सर्वत्र परिणामो की मलिनता है । इसी से दु खमय ससार हो रहा है । बाईयों को ज्वर आता है । मधुवन की महिमा है । मधुवन तो निमित्त है । अपने ही

कर्मों का विपाक है । सुखपूर्वक सहन करनेमे ही आत्मस्वाद का आनन्द है, अन्यथा 'हाय' सिवाय कुछ नहीं । कल्याणका मार्ग सन्मतिमे है, अन्यथा जैनधर्मका दुरुपयोग है । कोई भी वस्तु हो, सदुपयोगसे ही लाभदायक होती है । मानुस पर्यायका भी सदुपयोग किया जावे तब देवोंको भी सुख नहीं । जो एक तिर्यञ्च सदुपयोग कर तृप्ति पाता है वह मनुष्यपदवी धारण कर भी नहीं पा सकता । अत इसीमे आत्मगौरव है जो श्रीमुन्ना व सुमति विषयोकी तृष्णासे बचे तथा परस्परमे पाण्डव बने । एक कौरव और पाण्डव न बने । बात थोडी है, परन्तु न करने से बडी है ।

पौष कृष्ण १४, स १९९८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - २१)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हमारा उदय अच्छा है जो मलेरियाके प्रकोपमे निरन्तर जागृत अवस्था रहती है । इतना ही नहीं, परमेष्ठीका स्मरण भी निरन्तर रहता है। कर्मविपाक द्वारा धर्मध्यानकी पूर्ति होती रहती है । हमेशा ससारकी अनित्यताका ध्यान रहता है । एकत्वभावनाकी तो यह मलेरिया जननी है । आगामी अभक्ष्यसेवनसे यह बचाता है । यही तो सवर है । कर्मोदयमे आकर खिर जाता है । इससे निर्जरा का भी सहायक है । निरन्तर धर्मका स्मरण कराता है । बोधिदुर्लभका तो मूल उपदेष्टा है । तथा कायक्लेश इसके कारण अनायास हो जाता है । अत समाधिमरणमे सहायक है। धर्मी लोग निरन्तर समाधिपाठ सुनाते है । सर्व लोग चाहते है । अत मलेरियाके प्रकोपसे मुझे लाभ ही है । इतना सुअवसर पाकर यदि हम मार्गच्युत हो गये तब हमसा मूर्ख फिर कौन होगा ? विशेष बाबाजीको भी उस मलेरियाका कोपभाजन बनना पडा है। श्रीमुन्नालाल, सुमति प्रसादसे सुभाशीस । अब पत्र लिखनेमे उत्साह नहीं होता, क्योंकि नवीन बाते आती नहीं । १०-५ दिनमे वायुपरिवर्तन करेंगे ।

माघ
बदि ५, स १९९८

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(११ - २२)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । अब मलेरिया शान्त है । पैरका दर्द भी अब शान्त है तथा सिरका भी । परन्तु वह वस्तु शान्त नहीं जिसके सद्भावमे यह सर्व उपद्रव आकुलताके कारण है और जिसके अभावमें धानी पेलना, अग्निमे पटकना, शिरपर सिगडी जलाना, स्यालिनी द्वारा भक्षण करना आदि भी आकुलताके कारण नहीं । प्रत्युत आत्मकैवल्यमे सहायक हुये । अत जिस महानुभावने उन रागादिका को जीत लिया है वही तो मनुष्य है । यो तो अनेक जनमते हैं और मरते हैं । उनकी गणना मनुष्योमे करना व्यर्थ है । ऑख वही है जिसमें देखनेकी शक्ति हो, अन्यथा नहीं के तुल्य है । एव ज्ञान वही है जो स्वपर विवेक उत्पन्न करा देवे । अन्यथा उस ज्ञानका कोई मूल्य नहीं जिसने स्वपर भेद न कराया । अथवा उस त्यागका कोई महत्व नहीं जिससे आकुलता न जावे । एव उस दान की कोई प्रशसा नहीं जिसके करने पर लोभ न जावे । विशेष क्या लिखे - सर्व कार्यो की यही प्रणाली हैं । अत जो कार्य करो उसमे आकुलताके अभाव को देखो । यदि वह न हो तब समझो उस कार्यमे आत्मीय लाभ कुछ नही । अभी यहीं रहनेका विचार है । जहॉ जावेंगे, आपको सूचना देवेंगे । एक लिफाफा इसके पहिले भेजा था, पहुॅचा होगा । शेष कुशल है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - २३)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द जी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । यहॉ गर्मी बहुत पडती है । अत गर्मी शान्त होने के बाद पावापुरी जाऊँगा । वहीं चातुर्मास करने का विचार है । आत्मा चिदानन्द है, किन्तु उसमे बाधक मोहादि भाव है । उनकी कृशता के होने पर ही आनन्द गुण का विकाश होता है । उसके होने मे हम स्वय उपादान हैं । निमित्त तो निमित्त ही है । जिस काल मे हमारी आत्मा रागादि रूप न परिणमे वही काल आत्माके उत्कर्षका है । उचित मार्ग तो यही है जो हम पुरुषार्थ कर रागादि न होने देवे, परन्तु उन पदार्थों को हटाते है जिन्हें रागादि होने मे निमित्त मान रक्खा है । विशेष क्या लिखे । आषाढ़ वदीमे यहासे चला जाऊँगा ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(११ - २४)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । प्रथम आपने लिखा कि रत्नत्रय की कुशलता का पत्र देना सो साधर्मियो को यही उचित है । किन्तु यदि रत्नत्रय की कुशलता हो जावे तब यह सर्व व्यवहार अनायास छूट जावे । निरन्तर कषायोकी प्रचुरतासे रत्नत्रय परिणति आत्मीय स्वरूपका लाभ करनेमे असमर्थ रहती है । जिस दिन वह अपने स्वरूप पर उन्मुख होगी, अनायास कषायो की प्रचुरताका पता न लगेगा । जिस सिहके समक्ष गजेन्द्र भी नतमस्तक हो जाता है वहाँ पर स्याल-गीदडोकी क्या कथा । एव जहाँ आत्मीयभाव (अभिप्राय) सम्यग्भावको प्राप्त हो जाता है वहाँ मिथ्यात्वको अवकाश नहीं मिलता । कषायोकी तो कथा ही व्यर्थ है । इसी निर्मल भावके असद्भावमे आजतक यह आत्मा नाना सकटोकी पात्र बनी रही है, तथा बनेगी ।

अत आवश्यकता इस बातकी है जो आत्मीय भाव निर्मल बनाया जावे और उसकी बाधक कषायपरिणतिको मिटानेका प्रयास किया जावे । अन्य बाह्य कारणोके साथ जो आक्रमण है वह आकाश ताडनके सदृश है । हमारा तो यही अभिप्राय है । शरीरकी व्यवस्था अब अच्छी है । गर्मीका प्रकोप ऋतुके अनुकूल हो रहा है । उदयाधीन व्यवस्था हो जाती है । व्यवस्था तो उत्तम यह है जो इन परपदार्थो द्वारा सुख-दु खकी मान्यताको त्याग दिया जावे । सुख-दु ख की व्यवस्था तो अपनेमे बनानी चाहिये, बाह्य पदार्थोमे नहीं । देखो ! जैसे एक मनुष्य उत्तम मन्दिरके अन्दर, जहाँ सूर्यकी किरणोको अवकाश नहीं मिलता तथा उसके दरवाजे शीतल जलसे प्लावित और खशके पर्दासे आच्छादितक हो रहे है, तथा बाहर से कुली पखा द्वारा शीतलमन्द-सुगन्ध वायु पहुँचा रहा है, आराम कुर्सी पर लेटा हुआ है, अगल-बगलमे चाटुकारोसे प्रशसित हो रहा है तथा सुन्दर रूपसे पुष्ट नवोढा स्त्री द्वारा प्रसन्नताका अनुभव कर रहा है, परन्तु अन्तरङ्गमे व्यापारदिकी शल्यसे कटुक पदार्थ मिश्रित मिश्री के सदृश मधुर स्वादुके सुखसे वञ्चित है और जो उससे विपरीत सामग्रीवाला कुली है वह तीन आना पाकर वैनकी वशी बजाता है । अत सुख-दु खकी प्राप्ति परपदार्थो द्वारा मानना, महती भूल है । विशेष क्या लिखे । आपने लिखा - कोई वस्तुकी आवश्यकता हो मगा लेना सो ठीक है किन्तु जब यह श्लोक याद आ जाता है, चित्त अधीर हो जाता है ।

पातु कर्णाञ्जलिभि किममृतमिव बुध्यते सदुपदेश. ।
कि गुरुताया मूल यदेतद् प्रार्थन नाम ।।

श्रीयुत मुन्नालालजीसे धर्मोपदेश कहना तथा यह कहना सानन्दसे स्वाध्याय करो तथा किसीसे भी स्नेह न करो । यही बन्धन की जड है । .. . . । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा तथा पिताजी का भी स्वास्थ्य अच्छा होगा । छोटे भाईको धर्मप्रेम ।

आ. शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - २५)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका पत्र आया, चित्त प्रसन्न हुआ । अब हमारा मलेरिया अच्छा है । २-१/२ माह मलेरिया आया । मनुष्य वही है, जो अपनी निरोगतामे अपने आत्मकल्याणके सन्मुख रहे । सरोग अवस्थामे असाता का उदय रहता है और उसमे प्राय दु खकी वेदना होती है । दु खकी वेदनामे अशुद्धताकी प्रतिपक्षिणी, सक्लेशताकी प्रचुरता रहती है और सक्लेशतामें प्राय पापप्रकृतियो का ही बन्ध होता है, अत जिन्हे आत्मकल्याण करना हो, उन्हे पर की चिन्ता छोड अपनी चिन्ता करनी चाहिए । शरीरकी परिचर्या में ही अपनी शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए । इसकी परिचर्यासे जो दुर्दशा आजतक हुई वह इसी का महाप्रसाद है यह कहना सर्वथा अनुचित है । हमारी मोहान्धता है जो हमने इस शरीरको अपनाया और उसके साथ भेदबुद्धि का त्यागकर निजत्वकी कल्पना की । व्यर्थ ही निजत्व की कल्पना कर शरीर को दु ख का कारण मान रहे है । हम स्वय अपने आप पत्थर से शिरको फोडकर, पत्थरसे शत्रुता कर उसके नाशका प्रयास करते है । वास्तव मे पत्थर जड है । उसे किसीको न मारने की इच्छा है और न रक्षा करने की । एव शरीर को न आत्माको दु ख देने की इच्छा है, न सुख देने की ही ।

अत इससे ममत्व त्यागकर आत्माका प्रथम तो वह भाव, जिसके द्वारा शरीरमे निजत्वबुद्धि होती थी, त्याग देना चाहिए । उसके होते ही ससारमे यावान् पदार्थ हैं उनसे आपसे आप ममत्व परिणाम छूट जावेगा ।

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(११ - २६)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । सब्जी आ गई । इतनी दूरसे सब्जी नहीं भेजना चाहिए, क्योकि प्राय चलित रस हो जाती है । आपके भावो के अनुकूल प्रतिमा जी मिल गई, यह अच्छा हुआ । अब जहाँ तक बने, उसके अनुकूल होने की चेष्टा करना। ससार में हम लोग जो आप तक भ्रमण कर रहे है इसका मूल कारण 'हमने अपनी रक्षा नहीं की' है । निरन्तर पर पदार्थों के ममत्व मे आपको विस्मृत हो गये । अब अवसर उत्तम आया है । इसका सदुपयोग करना चाहिए । व्यर्थ परकी चिन्ता न करना चाहिए । परकी रक्षा करो, परन्तु उसे आत्मीय तो न समझो ।

श्री मुन्नालालजी से योग्य दर्शनविशुद्धि । सानन्दसे जीवन बिताओ और गृहिणीकी सम्यक् परिचर्या करो, परन्तु अन्तरङ्ग से उस वस्तुमे आत्मीय सकल्प त्याग दो । यही सुखका मूल है । मेरा तो यही कहना है जो शरीरमे भी निजत्वको छोडो । छोटे भाईको आशीर्वाद । हमारा इतना स्वास्थ्य खराब नहीं । यदि होगा, आपके पिताको बुला लेवेगे । पिता जी अभी वहीं रहे । विशेष क्या लिखे, आपके पिताजी भव्य जीव है । शान्त प्रवृत्ति के है । उनसे कहना - स्वाध्याय परम तप है । इस और विशेष लक्ष्य देवे । इस कालमे कल्याणका वही जीव पात्र होगा जो बहुजनो के समागममे न रहेगा । हमारा उनसे हार्दिक स्नेह है । अभी तो हम यहाँ ही हैं । गर्मी के बाद जहाँ जावेगे उन्हे लिखेगे ।

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(११ - २७)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । वियोगजन्य शोक होता है यह हमारी श्रद्धा है । जहाँ वियोगसे कैवल्य होता है वही आत्मा की निजावस्था है । हमने जो कुछ परिग्रह था, छोड दिया । बरुवासागरमे १०००) थे वह वहा की पाठशालाको दे दिये । १०१) बनारसको जो यहाँ शेष थे दे दिये । अब तो वस्त्र मात्र केवल, जिससे निर्वाह हो सके तथा ३ वर्तन रक्खे हैं । पुस्तके भी सागर आदि को दे दी है । अब मेरे नाम कुछ वस्तु

न भेजना । यह विचार मेरा पहिले भी था । अब फागुन बदी ४ को सागर की ओर जाऊँगा । आप सानन्द स्वाध्याय करिये और अबकी बार चातुर्मास उसी प्रान्तमे होगा। पत्र गया देना ।

गया,
माघ शु १३, स १९९८

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(११ - २८)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्र जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मै सानन्द आ गया । यहॉ बडे वेगसे मलेरिया आया । अब शान्त है । फाल्गुन भर यहीं रहूगा । चैत्र वदि ३ को चलूँगा । बनारस जाऊँगा । एक बार तो द्रोणगिरि जाने का विचार है । शरीर वृद्ध है, फिर भी बलात्कार जा रहा हू । सम्भव है, भावना के अनुकूल पहुॅच जाऊँ । आप निश्चिन्त, तत्त्वभावनामे काल लगाना । वर्तमानमे लोग आडम्बर प्रिय हैं । बाबा भागीरथ वास्तविक त्यागी थे । बहुत ही शान्ति पूर्वक समाधिमरण हुआ । मै जितना उनसे परिचित हू, आप नहीं । वियोगमे आत्मदृष्टि नहीं हुई, तब सयोगमे क्या होगी ? आत्मलाभ तो वियोगमे ही है । ससारकी प्रवृत्तिको लक्ष्य न कर अपनी मलिनता को हटाने का प्रयत्न करना । गृहवास उतना बाधक नहीं जितना बाधक कायरो का समागम है । जिसे देखो, अपनी विभुताके गीत अलापता है। इससे यही ध्वनित होता है - आत्मा तुच्छावस्थाको नहीं चाहता । आप एक विशिष्ट आत्मा है । अत जगाधारीको तीर्थस्थली बनाकर ही रहना । इसका यह तात्पर्य नहीं जो कोई स्थान निर्माण करना, किन्तु निर्मल भाव करना । यही भाव स्थानको तीर्थ बनाता है । श्री मुन्नालाल, सुमतिप्रसादसे आशीर्वाद कहना । -

गया,
फाल्गुन सु ७, स १९९८

आ.शु.चि.
गणेश वर्णी

(११ - २९)

मोह की क्या कहेगे, कोई क्या कहेगा । इसने सर्व ही निर्मल भावो पर अपना प्रभाव जमा लिया है । विचार यहॉ से जल्दी ही उस तरफ आने का है । देखे क्या परिणाम निकलता है । एक आपसे हमारा कहना है जो शास्त्रसभामे व्यक्त कर देना - जिन जीवो को कल्याणकी अभिलाषा है वे स्नेहपाशसे न बॅधे । यही बन्धन बन्धन है और कोई नहीं । कल्पना करो, हम सागर आ ही गए तब सागरवालो को क्या लाभ होगा ? क्योकि मै ४ माह मौन से रहूँगा । एक बलाय मोल लेने के तुल्य यह कार्य होगा । श्रीयुत भैया पूर्णचन्द्रजी से दर्शनविशुद्धि । उनके पत्रसे उनका भाव जान बडी प्रसन्नता हुई । वह योग्य व्यक्ति है । बहुत ही अच्छा उन्होने किया । मै प्राय जल्दी ही यहॉ से प्रयाण करूगा । उनको यहॉ पर कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं ।

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(११ - ३०)

योग्य दर्शनविशुद्धि

रोग तो मलेरिया था । उसकी दवा, शान्तिपूर्वक सहना यही वीतराग की अचूक रामबाण थी । हमारी यही श्रद्धा थी, परन्तु आप लोगो की कटुकी चिरायता गुलवनस्पा आदि थी । परन्तु हमने श्रद्धा के अनुकूल ही दवा-साधन की । प्राय अब इस दवा ने बारह आने आराम कर दिया । शेष आराम हो जायेगा । यों कुछ दिन में यह भी चला जावेगा ।

वैशाख बदि १, स १९९८

आ शु.चि.
गणेश वर्णी

(११ - ३१)

श्रीमान् लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे । हमारा ज्वर शान्त हुआ तब पगमे दर्द हो गया । वह अच्छा हुआ तब डाढमे पीडा हो गई और कभी-कभी मस्तकमें भी वेदना हो जाती है । परन्तु

इतना अच्छा है जो अन्तरङ्गमे उतनी कलुषता नहीं होती जैसी वेदना होनी चाहिये । यद्यपि बाह्य-प्रवृत्तिमें न्यूनता आ जाती है तथापि भीतर न्यूनता नहीं आने देता । आत्मा की यह दशा हम ही ने बना रक्खी है । इन सब वेदनाओं का मूल कारण हमारा ही मोह परिणाम है और जब तक यह रहेगा इनसे भी भीषण दु:खों का सामना करना पडेगा । हम चाहते तो हैं जो आत्मा सकटों से बचे, परन्तु उसका जो अभ्रान्त मार्ग है उससे दूर भागते हैं । कोई मनुष्य पूर्वतीर्थके दर्शनों की अभिलाषा करे और मार्ग पश्चिमका पकड लेवे तब क्या वह इच्छित स्थान पर पहुँच सकता है ? कदापि नहीं । यही दशा हमारी है । केवल सन्तोष कर लेना जो हम मिथ्यामार्ग पर हैं, इससे कार्यसिद्धि नहीं । तथा केवल श्रद्धा और ज्ञानसे काम न चलेगा । किन्तु ज्ञानसे जाने हुये रागादि परिणामों की निवृत्तिसे ही अभीष्ट पदकी प्राप्ति होगी । उपाय करने से होता है । अत पुरुषार्थ कर स्वीय तत्त्वलाभ लेना चाहिये । श्री मुन्नालाल सुमतिप्रसादसे आशीर्वाद कहे ।

गया

आ शु.चि.
गणेश वर्णी

(११ - ३२)

हमारी दृष्टि इतनी उपेक्षणीय हो गई है जो हम निमित्त कारणों ही के ऊपर अपना कल्याण और अकल्याणका मार्ग निर्माण कर लेते हैं । आप जहां तक बने, अपने भीतर की परिणतिको देखो । बाह्य परिणतिको देखने से कुछ न होगा । मूर्तिनिर्माता सगमरमर की खानमे ही शिलाका अस्तित्व मानता है, न कि मारवाड़के वालुपुञ्जमे । **आत्मा की शक्ति अचिन्त्य है । उसको विकाश में लानेवाला यही आत्मा है । आज जो संसारमें विज्ञानकी अद्भुत 'संहारशक्ति' प्रत्यक्ष हो रही है यह आविष्कार आत्मा का ही तो विकाश है; तथा जो शान्तिका मार्ग जिनागममें पाया जाता है वह भी तो मोक्षमार्ग के आविष्कार-कर्त्ता की दिव्यध्वनि द्वारा परम्परागत आया हुआ है ।**

अत सर्व विकल्पोंको, मायापिण्डको और अपनी परिणतिको उपयोगमें लाओ। उसके बाधक मुन्ना, सुमति नहीं हैं । यदि उन्हें समझते हो तब उस भावको हटाओ ।

आप मेरे रोगकी चिन्ता न करना । यदि आप अपने रोग को मिटा सके तो ससार का मिट गया, क्योकि हमे उसका विकल्प ही न रहा । शरीर की अवस्था का सुधार औषध से न हुआ और न होगा । उसकी मूल औषधि तो हमारे ही पास है । परन्तु हम औषधि भी सेवन करते हैं और परकी आलोचना कर अपथ्य सेवन भी करते हैं । इससे न निरोग ही हो सकते है और न रोगी ही रह सकते हैं । दुर्वासना के प्रकोपसे बीचमे लटक रहे है ।

आ शु.चि.
गणेश वर्णी

(११ - ३३)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आम अच्छी तरह आ गये । १० आम हम अपने उपयोग मे लाए शेष ईसरी आश्रम वासियो के अर्थ भेज दिए । **आत्मा का गुरु आत्मा ही है और आत्मा ही आत्माका शत्रु है ।** सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में मूल कारण आत्मा ही है । चार लब्धि तो निरन्तर होती है । करणलब्धि होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है । किसी का उपदेश आदि तो समय पर मिलता है । सर्वदा आत्मा एकाकी ही रहता है । अत परकी पराधीनतासे न कुछ आता है, न जाता है । आत्मा का हित अपने ही परिणामो से होता है । स्वाध्याय आदि भी उपयोग की स्थिरताके अर्थ है । अन्तमें निर्विकल्पदशामे वीतराग भावका उदय हो जाता है ।

पराधीनतामें मोह की परिणति रहती है । वह आत्मा के गुणविकाश मे बाधक है। मुखसे जितनी प्रशसा मोही जीव करे, वे कहते अन्तमे यह हैं कि मोहभाव उसका बाधक है । भक्ति करनेवाला क्या कहता है ? हे भगवन् ! जब तक कैवल्यावस्था न हो तब तक मेरा हृदय आपके चरणाम्बुजका मधुकर रहे । अथवा आपका चरणाम्बुज मेरे हृदयमे रहे । इसका अर्थ यही है - जब तक मेरे यह शुभोपयोग है तब तक वह अवस्था नहीं हो सकती । इसमे विशेष ऊहापोहकी आवश्यकता नहीं । तात्त्विक विचारकी यही महिमा है जो यथार्थ मार्ग पर चलो । शुभोपयोग को ज्ञानी कब चाहता है ? यदि उसके शुभोपयोग इष्ट होता तब उसमें उपादेय बुद्धि होती । निरन्तर यही चाहता है कि हे प्रभो ! कब ऐसा दिन आवे जो आपके सदृश दिव्यज्ञानको पाकर स्वच्छन्द मोक्षमार्गमे विचरुँ । इसका अर्थ केवल व्यवहारपक्षको जो इच्छा हो सो

कहे, परन्तु कषाय चाहे शुभ हो चाहे अशुभ हो, मोक्षमार्गकी बाधक है और यह अनुभवगम्य बात है । हमारी तो यह दृढ श्रद्धा है कि आचार्यों ने कहीं भी शुभोपयोगको उपादेय नहीं बताया । तथा पूज्यपाद स्वामी के समाधिशतक मे ऐसा वाक्य भी है जो सर्वोत्तम उत्तर है -

यत्परै: प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यद्यहं निर्विकल्पक: ।।

हम इससे अधिक कुछ नहीं जानते । अत इससे विशेष ज्ञान, इससे अधिक होना कठिन है । यदि विशेष तत्त्व जानने की इच्छा है तब आगम अध्यात्मज्ञ पण्डितों से पत्र व्यवहार करो । श्री पतासीबाई सानन्द हैं । ४-६ दिन बाद पावापुर चले जावेंगे।

द्वितीय जेष्ठ सुदि १०, स १९९९

आ.शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - ३४)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हमारा जितना प्रयास है, केवल अन्तरङ्ग कषायकी वेदना दूर करने के अर्थ ही होता है । यह निर्विवाद है । फिर हमे उचित तो यह है कि जिसकी वेदना से पीडित होकर हम अनेक उपायो से उसको दूर करने की चेष्टा करते हैं उसका अगर विशेषरूप से विचार करिये - हम जबसे निद्राभङ्ग होने पर जागृतावस्थामें आते हैं, एकदम श्री अर्हन्तदेवका स्मरण करते हैं । उसका आशय यही रहता है कि हे प्रभो ! ससारदु खका अन्त हो । अनन्तर सामायिक करते हैं । उसका भी यही तात्पर्य रहता है जो जितना सामायिकका काल मेरे नियम के अनुसार है तब तक मैं साम्यभावसे रहूगा । इसका भी यही अर्थ है जो सामायिक के समयमें कषायो की पीडासे बचूँ । अनन्तर शौचादि क्रिया करने के अर्थ जो काल है उसमे भी मलादिजन्य बाधा दूर करने का ही तात्पर्य है । अनन्तर जो देवपूजा, स्वाध्यायादि क्रिया हैं उनका भी यही तात्पर्य है जो अपनी परिणतिको अशुभोपयोगकी कलुषतासे रक्षित रखना । अनन्तर भोजनादि क्रिया की जो विधि है उसका भी तात्पर्य क्षुधाजन्य बाधानिवृत्ति ही है । फिर जो व्यापारादि क्रिया है उसका भी प्रयोजन लोभकषायजन्य वेदना को दूर करना ही है । उपार्जित धनमें जो दानादिविभाग श्री गुरुओने दिखाया है उसमें भी

परोपकारविषयक कषायजन्य वेदनानिवृत्ति ही फल है । तथा जो क्रोधादिक जितनी भी चेष्टाएँ हैं उनका तात्पर्य तज्जन्य वेदनानिवृत्ति ही है । निन्दा-गर्हा का भी यही मर्म है । महाव्रतादिकमें भी जो जीवो की रक्षा आदि महर्षियो द्वारा होती है उसका भी यही तात्पर्य है जो सचालनकषायजन्य पीडा दूर हो । तब हम लोगों को भी यही उचित है जो कुछ भी कार्य करे उसमे अहबुद्धि-ममबुद्धि कर कर्त्ता बनने की चेष्टा न करे, अन्यथा ससारबन्धन छूटना कठिन है । अभी गर्मी अधिक पडती है । २० दिन बाद जहाँ जाऊँगा, तार दे दूँगा । श्री मुन्नालालजी को दर्शनविशुद्धि कहे ।

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ३५)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हमारा विचार राजगृही जाने का था और ईसरीसे १७ मील सरिया आये । परन्तु यहाँ पर मनोवृत्ति एकदम ही बदल गई । अब ईसरी वापस जा रहे है । अन्तरङ्गकी भावना पर विचार करते है तब तो उन्मत्तदशा है, क्योकि पर्यायमे यदि लक्ष्यको स्थिर नहीं किया तब सञ्ज्ञीपर्यायका कोई महत्त्व ही नहीं जाना । सञ्ज्ञीपर्यायकी महत्ता तो इसमे है जो हिताहितको पहिचान कर स्वात्ममार्गकी वृद्धि करते । सो तो दूर रहा, यहाँ तो विषबीजका वपन कर रहे हैं । फल इसका इसके नामसे ही प्रख्यात है । अब चञ्चलता करना विवेकका अर्थ नहीं । अब तो क्षेत्रन्यास करने मे ही जन्मकी सार्थकता है । अधिकतर घातका कारण अन्तरङ्गसे लोकेषणा है । उसे त्यागो । आत्मश्लाघामे प्रसन्न होना ससारी जीवो की चेष्टा है । जो मुमुक्षु है वह इन विजातीय भावो से अपने आत्माकी रक्षा करते है । एक वस्तुका अन्य वस्तुसे तादात्म्य नही । पदार्थ की कथा छोडो । एक गुणका अन्य गुण और एक पर्याय का अन्य पर्याय के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं । फिर परके द्वारा विभावो द्वारा की गई स्तुति-निन्दा पर हर्ष-विषाद करना, अपने सिद्धान्तपर अविश्वास करने के तुल्य है । जो सिद्धान्तके वेत्ता है वह अपथपर नहीं जाते हैं । सिद्धान्तवेत्ता ही वे कहलाते है जिन्हे स्वपरज्ञान है तथा वे ही सच्चे वीर और आत्मसेवी है ।

आ.शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - ३६)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, जहॉ तक बने स्वाध्यायमे विशेष योग देना । व्यापार करने से आत्मा पतित नहीं होता, पतित होने का कारण परिग्रहमे अति ममता है । षट्खण्डका स्वामित्व भी ममता की कृशतामे बाधक नहीं और ममता की प्रबलतामे अपरिग्रही होकर भी इस जन्म तथा जन्मान्तरमे भी दु ख के पात्र होते है । हमारा यह कहना नहीं जो आप परिग्रहको न छोडे । परन्तु छोडने के पहिले इतना दृढ अभ्यास करे लें जो मुन्नालाल और सुमतिप्रसादमे भी आत्मीयभाव न हो । छोडना तो कोई वस्तु नहीं तथा जिसे हम छोडने का प्रयत्न करते है वह तो हमारा है ही नहीं । अत प्रथम तो उसे अपना न समझो । इसका दृढ अभ्यास करो । यह होते ही सब कुछ हो गया । जो कहता है, हमने परिग्रह छोडा वह अभी सुमार्गपर नहीं । रागभाव छोडने से ही परपदार्थ स्वयमेव छूट जाता है । लोभकषायके छूटते ही अन्य धनादिक स्वयमेव छूट जाते है । अनुभवमे यही आता है जो धनके द्वारा परोपकारके भाव होना ससार के वर्धक है । इसमे लोभका त्याग नहीं । इस दानमे स्वपरके उपकार की वाछा है और वही आस्रवादिका कारण है । इसीसे दानको आस्रवप्रकरणमे पठित किया है । सम्यग्दृष्टिके भी दान होता है, परन्तु उसका भाव लोभनिवृत्तिके अर्थ है, न कि पुण्यके अर्थ । यही भाव पुण्य पाप सर्वमे लगा लेना । चि मुन्नालालजी सुमतिप्रसादसे योग्य शुभाशीस । आपकी भाभी का स्वर्गवास हो गया । यदि उस समय कुछ दान निकाला हो तब स्या वि का भी ध्यान रखना । जो परिणाम परिग्रहमे फॅसावे वह त्यागना तथा कुछ काल स्वाध्याय मे लगाना ।

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(११ - ३७)

श्रीयुत लाला महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । अब हमारा स्वास्थ्य अच्छा है । कुछ दिन बाद गुणावा जाने का विचार है । जब जाऊँगा आपको लिखूँगा । आप गर्मी बाद आइए । इस तरफ गर्मी वेशी पडती है । अभी स्वाध्यायमे भी विशेष उपयोग नहीं । कल्याणमार्ग तो आभ्यन्तरसे ही सम्बन्ध रखता है और अन्तरङ्ग निर्मलताका मूल हेतु आत्मा स्वय है । यदि ऐसा न हो तब किसी भी आत्मा का उद्धार न होता । निमित्त

कार्य मे सहायक है, किन्तु उसीपर अवलम्बित रहने से कोई भी इच्छित वस्तु का लाभ नहीं कर सकता । क्षेत्रको जोतने मात्रसे अन्न का लाभ बीज वोये बिना असम्भव है एव मन-वचन-कायके व्यापार आभ्यन्तर कषायके सद्भावमे संसार के ही कारण हैं और कषायअभावमे ससार के कारण नहीं । अत निरन्तर कषायके घटाने की चेष्टा करना ही अपना कर्तव्य होना चाहिए । कोई भी कार्य करो उस तत्त्वको देखना चाहिए । केवल बाह्य निर्मलताको देखकर सन्तोष नहीं करना चाहिए । बाह्य निर्मलताका इतना प्रभाव नहीं जो आभ्यन्तरकी कलुषताको हटा सके और आभ्यन्तर निर्मलतामे इतनी प्रबल शक्ति है जो उमके होते ही बहिर्द्रव्यकी मलिनता स्वयमेव चली जाती है । आभ्यन्तर व्रणकी कीली निकलनेसे अनायास घाव मिट जाता है । चि मुन्नालालजी सुमतिप्रसादसे दर्शनविशुद्धि । स्वाध्याय नियम पूर्वक करते रहना ।

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ३८)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्र जी, दर्शनविशुद्धि

हम राजगृही नहीं गए । शक्ति अब विशेष परिश्रमकी नहीं । अब तो एक स्थानपर रहकर आत्मकल्याण करने मे है । आप भी सुपुत्रो को सानन्द रहने का उपदेश दीजिए । आनन्द-गुण आत्मामे है । कलह भी वहीं है । एक बात कोई करले - या तो आनन्द ले ले या कलह ही कर लेवे, इत्यादि । चि मुन्नालालजी से योग्य दर्शनविशुद्धि । पर पदार्थ के निमित्त से जो भी बात हो उसे पर जानो और जब तक उसे विकार न समझोगे आनन्द न पावोगे । अब तो सुमेरचन्द्रजी सानन्द जीवन बिता दो यही आपसे प्रेरणा है ।

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(११ - ३९)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी जगाधरी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । हम लोगो की आत्मा अति दुर्बल है तथा दुर्बलताके सम्मुख जा रही है, क्योकि उसका जो भोजन है वह उसे नहीं मिलता । भोजन उसका पासमे ही है

किसी से याचना करने की आवश्यकता नहीं तथा वहाँ पर कोई चरणानुयोग का नियम भी लागू नहीं जो दिन ही को खाओ, रात्रिको मत खाओ, स्नान करके ही खाओ । फिर भी प्रमाद इतना बाधक है जो उस भोजन को करने में ही हम अनादर करते हैं । अथवा उसमें विष मिला देते है । **आत्मा का भोजन ज्ञान-दर्शन है ।** हम उसमें कषायरूपी विष मिलाकर इतना दूषित कर देते है जो आत्मा मूर्च्छित होकर चतुर्गतिगर्त्तका पात्र बनता है । अत प्रमादका परिहार कर सावधान हो देखने जानने में कषायविष मिलने का अवसर न आने दो । जो प्रमादी हैं वे कुशल कार्य करने में सर्वदा अवहेलना करते हैं । इससे मुक्त होने का उपाय यह है जो प्रमादको त्याग आत्मस्वरूपका मनन करो । आत्मस्वरूपका यथार्थ अवबोध होनेपर स्वयमेव सूर्योदयवत् आत्मा विपथ त्याग सुपथ पर आने मे विलम्ब न करेगा । अनादिसे इस प्रमाद के वशीभूत होकर हमने उस उपायको न जाना और आत्मस्वरूप के जानने के अभाव मे ही इन भौतिक पदार्थो के व्यामोहमें फँसे रहे । परपदार्थ को निज जाना । अब सुअवसर आया है । सर्व सामग्री कल्याण की हमे सुलभ है । इस सुलभतासे यदि हमने लाभ न उठाया और वही राग अलापा तब जिस दशाका अनुभव हमे इष्ट नहीं, बलात्कार भोगना पडेगा ।

आषाढ बदि १४, स १९९९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(११ - ४०)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशलक्षण धर्म सानन्द बीता । यथाशक्ति दशधा धर्मका पालन किया । उपचारसे तो सर्व हुआ पर परमार्थसे जितना क्रोधादिको का अश कृश हुआ वही स्वात्मीय भाव है और वही भाव आत्मा मे शान्तिकर है । जो कषायके मन्दोदयमे प्रवृत्तिरूप धर्म होता है वह आत्मा को दुर्गतिसे बचाता है तथा शुभ गतिमें ले जाने का निमित्त है । तथा उसके सद्भाव में आत्मास्वीय स्वरूपका लाभ यथार्थ प्रयत्न करने से ले सकता है । परन्तु जो उसे ही आत्महित मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं वे दीर्घससारी हैं। अत जिन्हे दीर्घ ससारसे भय है उन्हे श्रद्धागुणको कलङ्कित नहीं करना चाहिए । श्रद्धामे शुभ प्रवृत्तिको अनात्मीय जान उसमे उपादेय बुद्धि करना योग्य नहीं । शुभ

प्रवृत्ति ही होने दो । उसमें कर्तृत्व भाव न रक्खो । यदि शुभ प्रवृत्ति उपादेय होती तब श्रीगुरु चतुर्थ धर्मध्यानसे शुक्लध्यानमे न जाते तथा प्रथम शुक्लध्यानसे द्वितीय न होता। कहॉं तक कहे - इसे भी त्याग तृतीय शुक्लध्यानमे जाना पडता है, क्योंकि यहॉं भी बाहर काययोग है, तथा तृतीय ध्यानमे सूक्ष्म क्रिया होने से यह भी परम यथाख्यातचारित्रका बाधक है । अत इसका भी त्याग होकर चतुर्थ शुक्लध्यान होता है । इसका भी त्याग होकर सर्व कर्मो से विनिर्मुक्त होकर आत्मा सिद्धदशाको प्राप्त होता है । इसी अवस्था का नाम कैवल्य अवस्था है । अत सब पदार्थो से छूटने की भावना ही इस पदप्राप्तिमे बलवान् कारण है । श्री मुन्नालालजीसे दर्शनविशुद्धि कहे । समय के अनुसार प्रवृत्तिको शुभोपयोगमे लगाना । छोटे भाई को शुभाशीर्वाद कहें ।

क्वार बदि २, स १९९९

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ४१)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे तथा सर्व प्रकार आत्महितके यत्न पर होगे । मनुष्यको हितकारिणी शिक्षा सदागमसे प्राप्त हो सकती है या उसके ज्ञाता आत्माका सम्पर्क भी उसमे सहायक होता है तथा मुख्यतया हमारी दृढ श्रद्धा ही उसमे शिक्षक का कार्य करती है । आप जानते है, जिनमे श्रद्धा की न्यूनता है वह देवादि समागम पाकर भी आत्मसुखसे वञ्जित रहते है । अत प्रथम हमारा मुख्य लक्ष्य श्रद्धाकी ओर होना चाहिए । **श्रद्धा ही कल्याणमार्गकी जननी है ।** श्रद्धा के साथ ही सम्यग्ज्ञानका उदय होता है और सम्यग्ज्ञान पूर्वक जो त्याग है वही चारित्र व्यपदेशको पाता है । यही मोक्षमार्ग है । हम अनादि कालसे इसके अभावमे ससारके पात्र बन रहे है । शेष कुशल है । हम अजानावाद थे, दो दिनमे पावापुर पहुॅच जावेगे और कार्तिक सुदि २ को राजगृही पहुॅच जावेगे । पत्र वहीं देना ।

जैन धर्मशाला राजगिर

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ४२)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा सो ठीक है, परन्तु मै अब इतना मार्ग पञ्जाब तक का तय नहीं कर सकता और मेरी तो यह सम्मति है - इस समय आप भी जगाधरी छोडकर अन्यत्र नहीं जाइये । शान्तिके कारण उत्तम नहीं । जहाँ देखो वहाँ अशान्ति है, क्योकि रणचण्डिका अभी शान्ति नहीं चाहती । कल्याणका कारण चाहे घरमे रहो, चाहे वनमे जाओ, आप ही है । परके जानने से कुछ अकल्याण नहीं होता । अकल्याणका मूल कारण मूर्च्छा है । उसके त्यागने से ही सर्व उपद्रव शान्त हो जावेगे । वह जब तक अपना स्थान आत्मामे बनाये है आत्मा दु खित हो रहा है । दु ख कोई बाह्य पदार्थ से नहीं होता । वह स्वय अपने अनात्मीय भावो से दु खी हो जाता है ।

मेरी तो यह सम्मति है जो अपनी श्रद्धा जब हो गई तब ससार का अन्त हो गया। आपको क्या यह विश्वास नही कि हम है ? जब यह विश्वास है तब फिर व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? सम्पूर्ण आगमके जानने से ज्ञान ही होता है और वह ज्ञान आत्मासे तादात्म्य रखता है । तब जिसने आत्मा को जान लिया वह भी तो तत्सदृश हुआ । अत ज्ञानकी वृद्धिमात्रके अर्थ व्यग्र होना अच्छा नही । रागादिभाव भी समय पर चले जावेगे । श्रद्धा को अचल रखना चाहिये । हॉ, निरुद्यमी नहीं होना चाहिए । बुद्धिपूर्वक परपदार्थो मे जो रागादिपरिमाणो द्वारा इष्टानिष्ट कल्पना करनी होती है उसे कृश करना चाहिए । जो मोक्षमार्गके प्रतिकूल है उनसे सम्बन्ध छोडना और जो अनूकूल है उनको कार्यमे सहकारी जान ग्रहण करना । किन्तु मुख्य लक्ष्य उपादान पर रखना । उसके बिना सर्व व्यापार निष्फल है । विशेष क्या लिखे । यहाँ कोई त्यागी नहीं । पतासीबाई थी वह अभी गया गई है । एक कलकत्तेवाले मूलचन्दजी जैन जो कलकत्तेमे २५०) पाते थे, उन्होने वह नोकरी छोड दी । शेष जीवन धर्ममे ही बितावेगे । अभी इसी तरफ रहेगे । चि मुन्नालालजीसे दर्शनविशुद्धि ।

जहॉ तक बने स्वाध्यायमे उपयोग लगाना और गृहस्थावस्थामे अपने अनुकूल व्यय करना । तथा जो अपनी रक्षा में व्यय किया जावे उसमे परोपकारका भी ध्यान रहे, क्योंकि परपदार्थ मे सबका भाग है और तत्त्वदृष्टिसे किसी का भी नहीं । हम परोपकार करते है यह भाव न होना चाहिए । इस समय हमारे द्वारा ऐसा ही होना था यही ध्यानमे रखना चाहिए । कर्त्तृत्व-बुद्धिका त्याग ही ससारका नाशक है ।

अहकारबुद्धि ही ससारकी जननी है । पिताजी को यह सन्देश कह देना जो इस भयावह समय मे देशान्तर जाना अच्छा नहीं । अनेक आपत्तियाँ रहती है ।

पौष सुदि ३, म १९९९

आ शु.चि
गणेश वर्णी

(११ - ४३)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आज कल यहाँ पर चन्दाबाई भी है । मौसम अच्छा है । आपका विचार यदि आने का हो तब अच्छा है । थोडे दिन बाद गर्मी आ जावेगी । अन्तरङ्गसे तो कर्मजन्य आताप जीवो को अपनी प्रभुता अहर्निशि दिखा ही रहा है । उसके सामने यह बाह्य आताप कोई वस्तु नहीं । परन्तु हम उस अन्तरङ्ग आतापको आताप ही नहीं समझते । आज तक यहाँ कृष्णाबाई तथा दो त्यागी भी है तथा माप सुदि ११ को वेदीप्रतिष्ठा भी है । मेरा श्री मुन्नालाल, सुमतिप्रसादसे दर्शनविशुद्धि ।

माव सुदि २

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ४४)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम सागरसे ढाना आए । यहाँ पर सानन्दसे आमसभा हुई । जैनियो मे रुचि तो सर्वत्र है, परन्तु उसके विकाश करनेवाले नहीं । यदि त्यागी लोग ग्राम-ग्राम फिरे तब बहुत लाभ हो सकता है । आजकलके समयमे जिसने ब्रह्मचर्य व्रत लिया वह बहुत ही बलिष्ठ आत्मा है । छोटे बालकको भी प्रेरणा करना । लोग आत्मगुणको भूल गए हैं और इन परपदार्थो मे इतने मोहित हो गए है जो न्यायमार्गसे चलना नहीं चाहते । अन्याय का धन और विषय इनको सुमार्गमे नहीं आने देता । जबतक हम आत्मतत्त्वको नहीं जानेगे, ससार से विरक्त नहीं हो सकते । शास्त्रका ज्ञान और बात है और भेदज्ञान और बात है । त्याग भेदज्ञानसे भी भिन्न वस्तु है । उसके बिना पारमार्थिक लाभ होना कठिन है ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - ४५)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे । चि मुन्नालालजीसे मेरा धर्मस्नेह कहना तथा सुमतिप्रसादजी से भी । पर्याय की सफलता सयमसे है । मनुष्य भवमे यही मुख्यता है। देवपर्यायसे भी उत्तमता इसमे इसी सयमकी मुख्यतासे है । गृहस्थ भी सयमका पात्र है। देशसयम भी तो सयम ही है । हम व्यर्थ ही सयमका भय करते हैं । अणुव्रत का पालन गृहस्थके ही तो होता है । परन्तु हम इतने भीरु और कायर हो गए है जो आत्महितसे भी डरते है । मैं अगहन बदि ५ को सागरसे रहली चल दिया और ८ दिन बाद शाहपुर पहुचूँगा । आपके दोनो बालकोने ब्रह्मचर्यका नियम लिया यह बहुत अच्छा किया । जीवन की सार्थकता इसीमे है । तथा दोनो बालको को स्वाध्यायमे लगाना । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । दुलीचन्दसे दर्शनविशुद्धि । अच्छी तरह से रहना ।

शाहपुर मगरौन (सागर)
अगहन बदि ६, स २००१

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ४६)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । मै सागरसे अगहन बदि ५ को चलकर शाहपुर आ गया । यहा पर शाहपुर पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ । उसमे ६५००) पाठशालाको हो गया । ५०००) पहिले था । यह सर्व होता है, परन्तु कल्याणका पथ निरीह-वृत्ति है । कषायके वशीभूत होकर सर्व उपद्रव होते है । अब यहाँ से नैनागिरि जाऊँगा और वहाँ से जहाँ जाऊँगा आपको लिखूँगा । जहाँ-जहाँ गया, जनताको आनन्द रहा । पटना और गढाकोटामे दो पाठशालाओ की स्थिति स्थायी चन्दासे हो गयी । अवकाश नहीं मिलता । विशेष समाचार नैनागिरसे लिखूँगा ।

नोट - मोह की महिमा है जो इस प्रकार नाट्य करा रहा है । हमारी बच्चो से दर्शनविशुद्ध कहे ।

अगहन् सुदि ७, स २००१

आ.शु.चि
गणेश वर्णी

(११ - ४७)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

ब्रह्मचारी छोटेलालजी के पत्र से मालूम हुआ है कि आप पर प्राचीन रोगने फिर से आक्रमण प्रारम्भ कर दिया है । सहज ही मोहजन्य खेद हुआ । बन्धुवर ! आत्मा और कर्मका सम्बन्ध अनादि है और प्रचुरतासे प्राय ससारी जीवो की यही धारणा है और होता भी तथ्य है, क्योकि बिना किसी विकारी दो पदार्थों के मिलाप के ससारकी रचना ही नहीं हो सकती । परन्तु क्या इसका सम्बन्ध कहीं विच्छेद नही हो सकता । ऐसा प्राय बहुतो के होता है और उसका सहज उत्तर भी हो जाता है । जैसे बीजके जलने से अकुर नहीं होता उसी प्रकार कर्मबीजके दग्ध होने पर भवाङ्कुर नहीं होता । यह बात कहने और सुनने मे अति सरल और सुव्यक्त है, परन्तु करने मे अति कठोर और भयावह है । है नहीं, परन्तु धारणा ऐसी ही बना रक्खी है । क्या वस्तुत कर्म ही की प्रबलता है जो हमे ससारनाटकका पात्र बना रक्खा है । अधिकाश मोही जीवो की तो यही धारणा है, परन्तु मेरी तो यह धारणा है कि असज्ञी जीवो तक तो ससार वैसा ही है जैसा कि सामान्य लोगो का मत है, परन्तु जब यह जीव सज्ञी अवस्था का पात्र हो जाता है उस समय उसके उस विलक्षण प्रतिभा का उदय होता है जो अखिल वस्तुओ के मर्मको जानने का अवसर उसे अनायाम मिल जाता है और तब वह समझने लगता है - यह ससार एक मेरे ही विकार भाव पर अवलम्बित है । यह मेरे हाथकी बात है जो आज ही इस ससार का अन्त कर दूँ । 'आज' यह तो बहुत काल है। यदि स्वकीय पौरुषको कार्यरूपमे परिणित करूँ तो घडी भरमे इसका अन्त कर दूँ । कुछ यह अत्युक्ति नही, परन्तु मान रक्खी है ।

अत आप सब औषधियो के विकल्पजालो को छोड ऐसी भावना भाइये जो यह पर्याय विजातीय दो द्रव्यो के सम्बन्धसे निष्पन्न हुई है । फिर भी परिणमन दो द्रव्यो का पृथक्-पृथक् ही है । सुधा-हरिद्रावत् एक रङ्ग नही हो गया । अत जो कोई पदार्थ इन्द्रियो के गोचर है वह तो पौद्गलिक ही हैं । इसमे तो सन्देह नही कि हम मोही जीव शरीर की व्याधिका आत्मामे अवबोध होने से उसे अपना मान लेते है । यही अहङ्कार ससार का विधाता है । अत ज्ञानी जीवो का भाव यह कदापि नही होता कि मैं रोगी हूँ और जो कुछ चारित्रमोहसे अनुचित क्रिया होती है उसका कर्त्ता नहीं और जो कुछ होता है उसकी निन्दा गर्हा करता है । यह भी मोहकी महिमा है । अत इसे भी मिटाना

चाहिए । जन्म भर स्वाध्याय किया फिर भी अपने को रोगी मानना और ससार की तरह विलापादिक करने की आदतका होना क्या श्रेयस्कर है ? आप स्वय विज्ञ हो । अपने को सनत्कुमार चक्रीकी तरह दृढ बनाओ । व्याधिका मन्दिर शरीर है न कि आत्मा । ऐसी दृढ़ता धारण करोगे तो मुझे विश्वास है जो बहुत ही शीघ्र इस रोगसे मुक्त हो जावोगे । यही अनुपम रामबाण औषधि है जो रागद्वेषके त्यागरूप महामन्त्र निरन्तर स्मरण करो । इसी के प्रतापसे ही सर्वत्र प्राणियोमे महत्त्व है ।

निरोगाभिलाषी
गणेश वर्णी

(११ - ४८)

श्रीयुत लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द जगाधारी पहुँच गये होगे । गर्मीभर यहीं रहने का विचार है । शरीरकी अवस्था प्रतिदिन शीर्ण हो रही है और आयु भी अब परभवकी आयुके साथ सम्बन्ध कर रही है । किन्तु खेद इस बात का है जो आनन्द परकीय पदार्थों से ममता का त्याग करने मे चेष्टाहीन है । यही पुरुषार्थ की निर्बलता है । इसमे बहुत से मनुष्य इतने मोही है जो तत्त्वज्ञानियों से अग्रसर होकर भी शारीरिक ममता नहीं आते । अस्तु, परकी समालोचन करना महती अज्ञानता है । हम स्वय इस महान् मोहके द्वारा त्रस्त हो रहे है । उत्तम से उत्तम स्थान छोडकर इस स्थानमे आ गये जहाँ कि वुत कारागार है । अभी तक उसने अन्दर जाने की अनुमति नहीं दी है । कच्ची हबालातमें रक्खे है । चार माह बाद मुकद्दमा होगा । उस समय या तो आजन्म कारावास या रिहाई। हम भी पूर्णरूपसे चेष्टा मुक्त होने की कर रहे हैं । एक मास तो एकान्त वास मौन लिया है । समयसारको अपनी मुक्तिके लिये वकील बनाया है । गवाह कोई नहीं। जो अपराध लगाये है वे मैंने स्वीकार कर लिये हैं । इससे सफाई की गवाह देने की आवश्यकता नहीं समझी । विशेष क्या ? ज्येष्ठ मास पत्र देने का त्याग, बोलने का त्याग । आप सानन्द स्वाध्याय करते होंगे । हमारी प्रवृत्ति देखकर आप लोगो को विशेष विचार हुआ यह कोई आपत्तिजनक नहीं । आप जानते हैं - मोहमे यही तो होता है । और क्या होगा ? पत्रोत्तर देना या न देना आपकी इच्छा ।

आ.शु.चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ४९)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपका बाह्य स्वास्थ्य तथा आभ्यन्तर कुशलमय है, परमानन्द का विषय है । ससारमे जिसे शान्तिका लाभ हो जावे, आशातीत लाभ है। अतिरिक्त इस लाभ के जितने लाभ है सर्व नाशशील है तथा अशान्तिके उत्पादक है । इसका अनुभव जिनके परिग्रह है उन्हे प्रत्यक्ष है । हम तो अनुमानसे लिख रहे हैं । परन्तु यह अनुमानाभास नहीं, क्योकि उसका सम्बन्ध आप लोगो की प्रेम दृष्टि से हमे भी प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है । वस्तु के लाभ मे प्राय जीवो के मूर्छा ही तो होती है और वही तो अशान्तिकी मूल जननी है । परपदार्थ के सग्रह करने मे क्लेश रक्षणमे महती आकुलता, जाने मे शोक, न जाने कौनसी गुरुता उसमे देखी गयी जिसके अर्थ इतने व्यग्र हम लोग रहते है । मेरी बुद्धिमे मद्यपायी की तरह यह प्रवृत्ति है । ज्ञेयोमे अथवा ससारातीत सिद्ध परमात्मामे ममत्व बुद्धि उत्पन्न कर अपने को महात्मा मानना श्रेयोमार्ग नहीं । मार्ग तो परपदार्थ मात्र मे आत्मीय कल्पनाको मिटाने मे है । यही सुगम मार्ग और श्रेयोमार्ग है । विशेषततत्त्व विशेषज्ञ जाने ।

आप बहुत दिनसे इसका अनुभव कर रहे हो । अब जहॉ तक बने पर वस्तुमे निजत्व भावको दूर करिये । अनायाश तज्जन्य बाधाये बिना किसी तप आदि सयम के स्वयमेव पलायमान हो जावेगी । घरवास बुरा नहीं, परन्तु मूर्च्छा अति कटुक भाव है । इस बात की चेष्टा करनी चाहिए जो कमल की तरह हम निर्लेप रहे । श्रीमुन्ना सुमति तो कोई विशेष परिग्रह नही । मुन्ना सुमति मेरे है, मैं इनका हूँ यह अभिप्राय छोडने की चेष्टा करो । चेष्टा क्या करो, इस अभिप्रायका जन्म ही न होने दो । स्थान छोडने से तथा शास्त्रो का स्वाध्याय करने से वे छूट जावे सो नहीं । जब उनमे परत्व ज्ञात हो जावेगा, स्वयमेव वह बुद्धि छूट जावेगी । इसका यह अभिप्राय नहीं जो उन्हे तो बाह्यसे छोड दो और जगत् वर्त्ती अन्यको अपना लो ।

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ५०)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप जानते है - **कोई भी पदार्थ इष्टानिष्ट नही ।** यह हमारी कल्पना है जैसे अमुक व्यक्ति द्वारा हमे शान्तिलाभ होता है । शान्ति तो

अपनी परिणतिविशेष हैं । केवल उसके बाधक कारण जो हमने मान रक्खे हैं वे नहीं हैं।

किन्तु हम स्वय ही अपनी विरुद्ध भावना द्वारा बाधक कारण बन रहे हैं । उस विरुद्ध भावको यदि मिटा देवे तो स्वयमेव शान्ति का उदय हो जावेगा । आपने अच्छा किया जो सहारनपुर चले आए । अब कुछ दिन जगाधारी ही रहिए । स्वयमेव शान्ति मिलेगी । मेरा विचार चैत् सुदी १ से छह माह पर्यन्त मौनव्रत लेने का है । जैसे आप निमित्त कारण से हो गये यही मेरा अभिप्राय है जो इस सब उपद्रवो से पृथक् रहूँ । यद्यपि उपद्रव अन्य नही । हम स्वय ही अपने कल्याणमे उपद्रव है । स्वय ही उसको पृथक् करेगे । परन्तु जो मोही जीवो की आदत है वह कहॉ जावे ? अत वही गति हमारी है । हमारे सहवासमे शान्ति कैसे मिल सकती है ? स्वय अन्धा परको मार्ग नहीं दिखा सकता । किन्तु यदि उसके हाथमे लालटेन हो तब दूसरा स्वय उसके द्वारा मार्ग देख लेता है और अन्धेको फोकटका श्रेय मिल जाता है । यही दशा हमारी है । मेरा श्री मुन्नालाल और सुमतिप्रसादजीसे आशीर्वाद । १६ आने का सुवर्ण होता है वैसे ही आत्माको ध्यानाग्नि द्वारा शुद्ध करना चाहिए ।

जबलपुर

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - ५१)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्दजी भगत, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपने अच्छा किया । आत्मीयपरिणति निर्मल बनाओ । उसपर अधिकार है । परकी वृत्ति स्वाधीन नहीं । उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है । मेरा दृढ़ विश्वास है जो जीव आत्मकल्याणको चाहते हैं वह अवश्य उसके पात्र होते हैं । अनादिमोहके वशीभूत होकर हमने निजको जाना ही नहीं, फिर कल्याण किसका ? अत· इस पर्यायमें इतनी योग्यता है जो हम अपने आत्माको जान सकते हैं। बाह्य आडम्बरोंमे मत फसना । प पन्नालाल यहाँ नहीं हैं, जयपुरमे हैं । वहॉ से मथुरा जायेंगे । मन्दिर बन गया ? हमारी सम्मति मानो तब २००००/- तो मन्दिरमें लगाओ। शिखर निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं । ५०००/- का शास्त्रभण्डार और २५०००/- के स्थायी व्याजसे १२५/- मासिकका विद्वान् रखो जो वहाँ बालकोको शास्त्रप्रवचन करे । केवल ईंट चूनासे आत्महित नहीं । **हितका कारण ज्ञान है ।** इस ओर लक्ष्य दो । केवल रूढिसे लाभ नहीं । हम लोग केवल ऊपरी बातें देखते हैं । ऊपरी देखनेसे आभ्यन्तर का पता नहीं लगता । आभ्यन्तरके ज्ञान बिना

भोदू ही रहे । हमारी बात आप पब्लिकमे सुना देना । हमको जो मनमे आयी सो बाहर प्रकट कर दी । आप आश्विन वदिमे आवे । मैं भाद्रपद तक मौनमे रहूँगा । ढीलकी आवश्यकता नहीं । अब यह विचार होता है जो क्षुल्लककी दीक्षा ले लूँ और देहातमे काल बिताऊँ ।

हमारा अभिप्राय तो यह है - आप कुछ अपनी शान्तिकुटीरमें काल बितावे । कहीं कुछ नही धरा है । केवल मनकी हवस है जो परसे कल्याण चाहती है । यह महती भूल है ।

वैशाख वदि ११, स २००३

आ.शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ५२)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी भगत, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । ज्ञानका साधन प्राय बहुत स्थानो पर मिल जावेगा, परन्तु चारित्रका साधन प्राय दुर्लभ है । उसका सम्बन्ध आत्मीय रागादिनिवृत्तिसे है । वह जबतक न हो यह बाह्य आचरण दम्भ है । हम लोग आत्मीय कषायके वेगमे परोपकारका बहाना करते है । परोपकार न कोई करता है और न हो ही सकता है । मोही जीवोकी कल्पनाके जाल ही यह परोपकारादि कार्य है । मन्दिरवाले माने या न माने, हमने तो अपनी मोहकी कल्पना आपको लिख ही दी । आपकी इच्छा, सागर रहे, परन्तु अभी जेठमे कहीं न जावे । **ज्ञानका साधन स्वाध्याय है** । उसे गर्मी भर जगाधरीमे ही करिये । श्री मुन्नालालजी आदिको उसीमें लगाइये । सुमतिको भी उसी मार्गका पालन कराइये । हमारा विचार वर्षा बाद अन्यत्र जानेका है । अभिप्राय यह है जो आपके प्रान्तकी मण्डलीका सम्बन्ध रहे । परन्तु उस प्रान्तमे स्थानकी त्रुटि मालूम होती है । यदि कोई स्थान हो तब लिखना । हमारा विचार तो सिहपुरीका है, परन्तु एकाकी नहीं रह सकते, क्योकि हमारा साधन पराधीन है । यदि वहॉ योग्यता न हो सकी तब गया चले जावेगे, परन्तु यह प्रान्त छोड देवेगे ।

काश्मीर स्टोर्स जबलपुर,
वैशाख सुदि १३, स २००३

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ५३)

योग्य इच्छाकार

पत्र आया । **कल्याणका मार्ग आत्मामें है** । अन्यत्र देखना ही बाधक है । स्वाध्यायका मर्म जानकर आकुल नहीं होना चाहिये । आकुलता तो मोक्षमार्गमे कुछ साधक नहीं । साधक तो निराकुलता है ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(११ - ५४)

श्रीयुत महाशय लाला सुमेरचन्दजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । कषायके आवेगमे बडे-बडे काम होते हैं । जो नहीं हो सो थोडा । श्री चम्पालालजी भी तो आखिर ससारी जीव है । श्री मनोहर भी तो वही है और आप भी वही है । हम भी वही हैं । जो कुछ हम लोगोसे हो जावे थोडा है। गुरुकुल क्या वस्तु है ? हम लोग आत्महितकी अवहेलना कर देते हैं । यदि गुरुकुलकी अवहेलना कर देवे तब कौन आश्चर्यकी बात है । श्रद्धाकी निर्मलतामे धक्का न लगना चाहिए । मै अन्यकी कथा क्या कहूँ, स्वय जबलपुरके चक्रमे फॅस गया। इसमे जबलपुरका दोष नहीं । हमारी दुर्बलता है जो सागरसे निकले और जबलपुरकी नर्मदामे डूब गए । अत जहॉ तक बने अपनी दुर्बलताको देखो । घर इसी वास्ते छोडा है । मुन्ना-सुमतिको छोड़ा । अब अन्यसे क्या प्रयोजन ? मेरी तो सम्मति है - परमेश्वर से भी प्रेम छोडो । श्री परमेश्वर तो अचिन्त्य हैं । केवल-श्रुतज्ञान के विषय हैं । स्वीय आत्मा, जिसके कल्याणके अर्थ ये सम्पूर्ण उपाय हैं, उससे भी स्नेह छोडी दो । वहाँ पर जो त्यागीवर्ग हो, मेरा धर्मस्नेह कहना और जगधारीको लिख देना जो आम आदि न भेजे । श्री त्यागी मनोहरलालजी भी वही रहेगे ।

अगहन बदि ३, स २००३

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(११ - ५५)

श्रीयुत महाशय ब्र सुमेरचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । आपका आना हमे इष्ट है । आप आवे । हम अपनी अन्तिम अवस्था आपके साथमे बिताना चाहते है । गृहस्थोंका सम्पर्क सुखद नहीं और यह भी पूर्ण निश्चय कर लिया जो वर्षा बाद जबलपुर छोड देना । श्री ब्रह्मचारी मनोहरलाल सानन्द है । वह भव्य जीव हैं । कुवार वदि २ तक इरादा कोरी पाटनका है । साथ अपने सुमति और मुन्नासे आशीर्वाद कहना और उनकी स्वाध्यायमे रुचि कराना । और यदि मार्गमे अडचन न हो तब आपका आना यही बडा कार्य है । अब तो यही चित्त चाहता है कि एकाकी रहे ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(११ - ५६)

श्रीमान लाला सुमेरचन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मै जबलपुरसे दमोह आ गया । एक दिन बाद सागर पहुँचूगा । आप सानन्द होगे । स्वाध्याय आदि की व्यवस्था ठीक होगी । पुत्रोसे आशीर्वाद । जहाँ तक बने, उन्हे स्वाध्यायमे लगाना और आयसे व्यय कम करे । आकाक्षाऐ अल्प रखे । **सन्तोष ही परम धन है । धन सुखका कारण नही । सन्तोषामृतसे जो तृप्ति होती है, वह बाह्य धनादि से नही** । परन्तु हमारी दृष्टि इतनी मलिन हो गई जो इस ओर नहीं देखते।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - ५७)

श्रीयुत महाशय ला सुमेरचन्द्रजी सा योग्य इच्छाकार

आप सानन्द पहुँच गये । ससारमे सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य है । कोई भाग्यशाली जीव ही इस अशान्तिसे रक्षित रहता है । परपदार्थकी मूर्च्छा ही तो अशान्तिकी कारण है । आपने महती पटुता की जो इस मूर्च्छाके जालसे अपनेको

पृथक् कर लिया । चि मुन्नालाल, सुमतिप्रसादको यही शिक्षा देना जो जलमे कमलकी तरह जितने निर्लेप रहेंगे उतने ही सुखके पात्र होगे । ससारके बन्धनछेदका यह मुख्योपाय है । आपने बहुत मनुष्योंको देखा, परन्तु शुभ भावनावाले जीव बहुत कम पाये जाते है । जो है वही स्तुत्य है । हमारी इच्छा है, आपका सहवास रहे, अच्छा है । मै कटनीसे आ गया । सर्वत्र वही बात है । श्री मुन्नालालजी, सुमतिप्रसादसे यह कहना - कल्याणके विकल्पसे कोई लाभ नहीं । जितने अशमे शान्ति हो राग छोडनेकी कोशिश करो और अपने कुटुम्बकी भी तद्रूप परिणति करावो। यदि उनकी परिणति न हो, खेद न करो । उपदेश कुछ नहीं, केवल रागकी कृशता ही सर्वाङ्गमय आगमकी सार है । यही श्री प्रभुका उपदेश है । **परको पर जानो आपको आप जानो यही तत्त्वज्ञान है ।**

पौष सुदि ११, स २००३

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ५८)

श्रीयुत महाशय सुमेरचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

मुझे आनन्द इस बातका है कि आप लोगोके समागममे आ रहा हूँ । अन्तमे यही भावना है जो अन्तिम श्वास श्रीपार्श्व निर्वाण भूमिमे श्री पार्श्व नाम लेते ही पूर्ण हो। यह मेरा पूर्ण विचार हो गया है, इसमे कोई सदेहकी आवश्यकता नहीं । श्रीचम्पालालजी सेठीसे हमारी दर्शनविशुद्धि कहना तथा श्रीयुत गौरीलालजीसे दर्शनविशुद्धि । अब हमारा विचार पूर्ण रीतिसे आनेका है । माघ वदि २ को चलनेका विचार किया है । शरीरकी शक्ति अवस्थाके अनुकूल अच्छी है । फिर श्री पार्श्वप्रभु चरणरजके प्रसादसे आ रहा हू । श्री १०५ क्षु पूर्णसागरजीसे इच्छाकार ।

सागर,
पौष सु ३, स २००९

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ५९)

योग्य इच्छाकार

ससार अशरणशील है । इसमे जबतक जीव विकारभावोको करता रहता है तबतक ही सुख और दुखका पात्र है । अत जिन जीवोको ससारयातनाओसे मुक्त होना है उन्हे विकारभावोको त्यागना चाहिए ।

चैत्र बदि ८, स २००९

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ६०)

श्रीमान् महानुभाव ब्र सुमेरचन्द्रजी भगत, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आपकी योग्यताके अनुकूल था । मै तो इस योग्य नहीं । आप लोगोकी प्रतिष्ठा, जहॉ जाते हो, आपकी योग्यतासे होती है । मेरा तो यह विश्वास है जो हमारा ससार बन्धन टूटता है सो हमारी आत्मशुद्धिसे ही टूटता है व्यवहार कुछ करो। विशेष क्या लिखे - जिसमे आपको शान्ति मिले सो करो । हॉ, जहॉ तक बने परावलम्बन त्यागो । यदि हमारी बात मानो तब एकबार वर्णीजीको भी सोनगढ देखना चाहिए । तत्त्वत सर्वत्र स्वय ही को देखना होगा । विकल्प कुछ करो । उटना कपासमलको ही होगा । वहॉसे तीन लिफाफे आए । यह विशेष व्यय विवेकसे ही होना चाहिए ।

जेष्ठ सुदि ६, स २००९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(११ - ६१)

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

कल्याणका मार्ग जो है सो आप लोग स्वय कर रहे हो । हम क्या उपदेश देवे । हमसे सत्य पूँछते हो तब हम अभी किसीको श्रेयोमार्गका उपदेश नहीं दे सकते हैं,

क्योकि हम स्वय अपनेको सुमार्गपर नहीं ला सके । श्रीयुत परशुरामजीसे योग्य इच्छाकार । यदि हमारी सम्मति मागो तब परमात्मासे भी इसकी प्रार्थना त्याग दो । अपने अन्दर ही परमात्मा है । कषाय दूर करनेकी आवश्यकता है।

अषाढ बदि ७, स २००९

आपका शुभचिन्तक,
गणेशप्रसाद वर्णी

(११ - ६२)

महानुभाव, इच्छाकार

हम न तो अब विशेष कार्य कर सकते है और न करनेके योग्य है । आप लोग भव्य है तथा आप लोगोने सत्सगति भी बहुत की है तथा करनेका उत्साह है । अत जो आगमानुकूल नियम है उनका प्रचार करिए । इसीमे हमको आनन्द है । हमारी तो यह श्रद्धा है जो जगतका कल्याण जगतके अधीन है । हमारे द्वारा हमारा कल्याण हो सकता है । निमित्त चाहे कोई हो । आजकल जितनी चर्चा होती है उसमे शब्दाडम्बरकी मुख्यता रहती है । कर्त्तव्यपथ न्यून रहता है । हमारा श्री परशुरामजीसे इच्छाकार कहना तथा जितने ब्रह्मचारी हो उनसे इच्छाकार । पतासीबाई आदि जितनी बाईया हो उनसे यथायोग्य इच्छाकार कहना । हमारा उदय उतना बलवान् नहीं जो निर्वाणभूमिसे स्वर्गारोहण हो । मेरा तात्पर्य समाधिमरणसे है । आप लोग हमे उपदेश देते है, परन्तु उसपर अमल करनेमे सकोच करते है । आप लोग स्वय रहके वीतरागमार्ग दिखादो । हम तो अव्यवस्थित हैं । आप लोग व्यवस्थित बनो ।

आषाढ बदि १०, स २००९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ६३)

श्रीयुत भगतजी सा , योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे पूर्ण प्रसन्नता हुई । मै आप लोगोको परम धार्मिक मानता हूँ जो आप लोगोका समय भी पार्श्वप्रभुके चरणरजमे रहकर धर्मध्यानमे जा रहा है । मेरा

उत्साह अब आप लोगोकी भावनासे वृद्धिरूप हो रहा है । क्या लिखूँ - पँख नहीं, अन्यथा उडकर आ जाता । कल्याणका मार्ग आत्मामे ही है; परन्तु उपादानका विकास सामग्रीसे ही होता है । अन्तरङ्गकी विशुद्धता ही ससार-सागरसे पार उतरनेमे नौकारूप है । आपने जो सिद्धान्त समयसारसे किया है सो आप जाने । परन्तु मेरा दृढतम विश्वास है, **'सामग्री कार्यस्य जनिका नैकं कारणम्'** । कार्यका विकास उपादानमे ही होता है इस सिद्धान्तका इसमे कोई विरोध नहीं ।

बन्धुवर ! मुझे अब अन्तिम समय वहीं रहना है तथा जो कुछ अपराध आज तक किये है, आप सर्व महानुभावोके समक्ष समालोचना कर नि शल्य अन्तिम समाधि लेनेका निश्चय किया है । मेरा सबसे इच्छाकार ।

पौष बदि ६, स २००९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ६४)

श्रीमान् ब्र छोटेलालजी सा , श्रीमान् भगतजी, योग्य इच्छाकार

आपकी कृतज्ञता है जो इतनी शिष्टता प्रदर्शन करते हो । आप लोगोकी निर्मलता है जो प्रत्येक स्थानमे आदर होता है । न हमारी कृपा है, न किसीकी । जो कुछ उत्तम मध्यम कार्य होते हैं, स्वय आत्मा ही उनका कर्त्ता है तथा भोक्ता है । हमको प्रसन्नता है जो आप लोगोका प्रभाव इस प्रकार व्यापक हो रहा है और आगे विशेषरूपसे होगा । हमारी तो यह सम्मति है जो इस समय कोई ऐसा अभूतपूर्व कार्य करो जो कुछ काल जैन धर्मकी विशेष प्रभावना चली जावे । गुरुकुलको ही स्थायी बनादो । कमसे कम उस प्रान्तमे ३ लाख रुपये तो हो जावे । इस समय जनता अनुकूल है । मुन्नालालजीसे हमारी इच्छाकार तथा सर्व सघसे इच्छाकार ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(११ - ६५)

श्रीभगतजी सा , इच्छाकार

पत्र आया । प्रसन्नता इस बातकी है जो आपका स्वास्थ्य अच्छा है । यदि कुछ न्यूनता हो तब १ या २ मास और भी हो जावे तब रहना अच्छा है । कल्याणका पथ आत्मामे है । क्षेत्रादिक भी निमित्त है । समागम भी निमित्त है । **'स्वाध्यायं परमं तपः।'** उसे आप करते ही हैं । बालकोसे आशीर्वाद । श्री सुमतिप्रसाद भी होनहार जीव है । उसे स्वाध्यायमें लगाना । श्री मुन्नालालजीसे योग्य दर्शनविशुद्धि । मनमे विकल्प न रखना । जैनधर्म वह है जो अनन्त ससारके कारणोसे भी द्वेष नही करता । विशेष क्या लिखे । वृद्धावस्थाके कारण लिखनेमे उत्साह नहीं होता ।

ईसरी
अषाढ सुदि १०, स २०११

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(११ - ६६)

श्रीयुत महाशय भगतजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपके प्राय अनेक आए परन्तु हमारे पास आपका निज पत्र नहीं आया । अस्तु, आपका स्वास्थ्य निर्मल होगा । बाह्य स्वास्थ्यके साथ मेरा तात्पर्य्य अन्तरङ्ग स्वास्थ्यसे है । आप स्वय विवेकशील है । परिणामकी निर्मलता ही कल्याणकी जननी है । अत जहॉ तक बने उसीके ऊपर दृष्टिदान करना उचित है । आप तो समयज्ञ हैं । विशेष क्या लिखे ? बालकोको आशीर्वाद कहना । भव्य हैं । गृहस्थ होकर भी भीतरसे निर्मलता होना यही प्रशस्त भावका कारण है ।

ईसरी बाजार,
का सु ३, स २०११

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

ब्र. छोटेलालजी

(श्रीमान् ब्र छोटेलालजीका जन्म पौष शुक्ला १४ वि स १९५१ को सागर जिलाके अन्तर्गत नरयावली ग्राममे हुआ है । पिताका नाम श्री पूर्णाचन्द्रजी और माताका नाम नोनीबहू था । जाति परवार है । शिक्षा विशारद तक होने पर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होने अपने ज्ञानमे विशेष उन्नति की है ।

नरयावली छोडकर व्यापार निमित्त ये सागर आये । किन्तु व्यापारमे अपनी उदार प्रवृत्तिके कारण सफल न होने पर बहुत काल तक ये सागर विद्यालयमे सुपरिटेडेट रहे । इसी बीच लगभग दो माहके शिशुको छोडकर इनकी पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृहारम्भसे उदासीन रहने लगे और श्रीयुक्त सि मौजीलालजी का सम्पर्क मिल जानेसे कुछ कालमे इन्होने गृहवासका त्याग कर वि स १९९६ मे श्रीमान् ब्र प्यारेलालजी भगतसे ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली ।

ये रोचक वक्ता और समाजसेवी है । फलस्वरूप इन्होने जियागज, लालगोला, धूलियान और अडगाबादमे जैन पाठशालाऐ स्थापित की । श्री स्याद्वाद विद्यालय बनारसको उल्लेख योग्य आर्थिक सहायता पहुँचवाई । कई वर्ष तक उदासीनाश्रम इन्दौर और ईसरीके अधिष्ठाता रहे तथा व्रतीसघके मत्रीपदका कार्य भी इन्होने किया है ।

प्रारम्भमे ये पूज्य श्री वर्णीजीके सम्पर्कमे आये और तबसे आज तक उसे बराबर बनाए हुए है । इतना ही नहीं, पूज्य वर्णीजी महाराजमे इनकी विशेष भक्ति है। उसीके परिणामस्वरूप ये उन्हे बराबर पत्र लिखा करते है । उत्तरस्वरूप उनके जो पत्र इन्हे प्राप्त हुए उनमेसे उपलब्ध कतिपय पत्र यहा दिये जाते है ।)

(१२ - १)

श्रीयुत महाशय प छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

आप आए, मेरा मौन दिवस था अत मै आपसे अपना कुछ भी अभिप्राय व्यक्त न कर सका । बन्धुवर ! आपकी श्रद्धा प्रशस्त है और यही श्रद्धा भवोदधिपारको कालान्तरमे नौकारूपको धारण करेगी । अब यह तो अन्तरङ्गसे गभीर दृष्टिसे विचारो जो हम लोग अपने पवित्र अवसरको व्यर्थ अन्य पदार्थोकी आलोचनामे बिता देते है । मेरी सम्मतिमे इसमे कुछ लाभ नहीं, क्योकि जिस समय हम इन पदार्थोके परिणमनको

देखकर आलोचना करते हैं उस समय हमारी आत्मामे एक तरहकी सक्लेशता करते हैं जो वर्तमानमे दु खभूमि है तथा उत्तरकालमे अशुभ कर्मकी खानि है । ऐसे उभय जन्म अध पतन करनेवाली समालोचनासे क्या लाभ ? अथवा जो परिणमन हो रहा है वह क्या नहीं होता था सो तो है ही नहीं, हो ही रहा है, फिर इतनी हाय क्यो ? सम्यग्दृष्टि अपनी निन्दा गर्हा करता है न कि पर की । अथ च परकी आलोचनासे हमें क्या तत्त्व निकला ? प्रत्युत यदि यह भाव परनिन्दा और आत्म-प्रशसामे परिणम जाये तो नीचगोत्रके बन्धका कारण हो जावे । जहॉपर जिसकी समालोचना करते थे उसके पात्र भी न होगे, क्योकि नीचगोत्रका उदय पचम गुणस्थान पर्यन्त ही है । कल्पना करो यदि जिन बाह्य वस्तुओसे आप उन्हें निर्ग्रन्थ पदके योग्य नहीं समझते, क्या वह इनका बाह्यमे त्याग कर देवे तब मुनि मानोगे । यदि नहीं तब फिर इतनी विषमतासे क्या लाभ ? उचित तो यह है कि इन पदार्थान्तरोंकी परिणतिमें हमारी इष्टानिष्ट कल्पना होती है । निरन्तर उसके पृथक् करनेमे यत्न पर रहना ही भविष्यमे कल्याण पथके समीप जानेका अपूर्व पथ है । परको उसका आस्वादन कराने की चेष्टा कभी भी उससे पृथक् होनेकी पद्धति नहीं, प्रत्युत अध पतनका ही कारण है ।

आप जानते है परको सुनानेमे परको प्रसन्न करनेका भाव रहता है । भाव इसका यह है कि पर हमे प्रशस्त दृष्टिसे देखे । यह मान नहीं तो क्या है ? अनादि कालसे इन्हीं परपदार्थोमे निजत्व, इष्टत्व और अनिष्टत्वकी कल्पना करते करते अनादि काल बीत गया, सुखका लेश भी नहीं पाया और इस तरहकी हठवासनासे आत्मामे सत्ता जमा रक्खी है जो अनेक प्रयत्न करनेपर भी हम उस कल्पनाके मिटानेमे असफल प्रयत्न रहते है, क्योकि विरोधीका बल प्रबल रहनेपर हम कहॉ तक कृतकार्य होगे ? ऐसा जन्म मिलना सामान्य पुण्यका कार्य नहीं जहॉपर हेयोपादेय तत्त्वकी मीमासा करनेमे जीवकी शक्तिका विकाश हो जाता है । ऐसा सुन्दर अवसर पाकर अपने निजत्वमे जितनी त्रुटिया हो उन्हे ही दूर करनेकी चेष्टा करनेमे सलग्न रहना चाहिए । **अपनी निर्मलता ही आत्मकल्याणकी भूमि है** । परकी निर्मलतासे अपने कल्याण और मलिनतासे अपने अकल्याणका कोई सम्बन्ध नहीं ? क्योकि ज्ञेय पदार्थ ज्ञानमे आता है और ज्ञेय कभी भी ज्ञानरूप नहीं होता और न उससे आत्मामें कुछ उत्कर्ष और अपकर्ष ही होता है । आत्माके उत्कर्ष और अपकर्षका कारण रागादिककी न्यूनता और वृद्धिता ही है । अत जितना भी हो सके उतना प्रयास ससारमें इसकी ओर लक्ष्यकर होना ही सम्यग्दर्शन है ।

शरीरकी कृशता समाधिमे उपयोगी नहीं । यह तो जघन्य दशावाले पुरुष है उन्हींके अर्थ उपदेश है जो काय कषाय सल्लेखना समाधिकरणकी उपयोगिनी है । काय परपदार्थ है । इसकी पुष्टि अथवा कृशता आत्मकल्याणकी न साधिका है न बाधिका । यह माना कि बिना वज्रवृषभनाराचसहननके मोक्ष व सप्तम नरक नहीं होता । तब इसका क्या यह अर्थ है कि वह सहनन उसका उत्पादक है ? नहीं, किन्तु उस शरीरमे आत्मा सम्यग्दर्शनादिककी पूर्णता और सप्तम नरकके जानेकी योग्यता उत्पन्न करता है। इसलिये ही कार्यकारणभाव है, अविनाभाव नहीं । अत आत्मकल्याणके अर्थ हमे काय कृश नहीं करनी चाहिए । इसका यह अर्थ नहीं कि स्वेच्छाचारसे अनियमसे हम निज प्रवृत्ति कर लेवे । स्वेच्छाचारिताकी व्याप्ति तीव्र कषायसे है । सामान्य रीतिसे द्वेषकी रक्षा करना और क्या है ? देहके पुदगलपरमाणुओकी एक विशेष अवस्था है । इसके द्वारा जो हम राग-द्वेषमय होते है व इसमे नोकर्म है । नोकर्म प्राय निमित्त कारण होते है और वह प्राय निरन्तर ससारमे अपने अस्तित्वको लिये ही रहते है । कारण पाकर पर्यायान्तरूप हो जाते है । ऐसा भी नहीं कि जो नोकर्म है वह सबको समानरूपसे फलदाता हैं । जो नोकर्म मन्दकषायसे एकको अल्प बन्धका कारण होता है वही नोकर्म तीव्र कषायसे अन्यको तीव्र बन्धका कारण नही होता ।

हजारीबाग,
ज्येष्ठ कृ १२, स १९९५

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१२ - २)

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, दर्शनविशुद्धि

मै तो आपको यही सम्मति देता हूँ जो इन परपदार्थोके सम्बन्धसे अपनेको पृथक् करिए । यही श्रेयोमार्ग है । पर पदार्थके सम्बन्धसे ही मूर्छाकी उत्पत्ति होती है । यद्यपि मूर्छाका परिणमन आत्मामे ही होता है । किन्तु उसमे निमित्त यह परपदार्थ ही है। इसीसे आचार्योने उसका त्याग कराया है । परमार्थसे बन्धका कारण आप ही है, अत इस विभाव परिणामसे अपनी रक्षा करिए । यही पुरुषार्थ है । उपवासादि करना कठिन नही, धनादिका दानमे लगा देना कठिन नहीं, परन्तु अन्तरगसे कषायका त्याग कर देना सरल नहीं । दान देनेसे यदि अन्तरगमे मानादिकी वाछा नही हुई तब तो

समझो लोभ कषायकी मन्दता इस जीवके है । यदि मानकी अभिलाषासे दान दिया तब मेरी वृद्धिमे लोभकी मन्दता नहीं । विशेष क्या लिखू, क्योंकि अभी तक इन शत्रुओके चक्रमें हूँ ।

आपका शुभचिंतक,
गणेशप्रसाद वर्णी

(१२ - ३)

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द धर्म साधन करिए, क्योंकि आपको पुण्योदयके साधन अच्छे है । किन्तु शासन करनेकी इच्छा हो तब अपनेही को अपराधी समझिए और उसको शासन कर मुसिफ बननेकी चेष्टा करिए । परके ऊपर शासन करना कुछ आत्मकल्याणका साधक नहीं ।

आपका शुभचिंतक,
गणेशप्रसाद वर्णी

(१२ - ४)

श्रीमान् ब्रह्मचारी छोटेलालजी साहब, इच्छाकार

हम सानन्द है, आप सानन्द होगे । भगतजीको इच्छाकार । आप स्वास्थ्य अच्छा होनेपर ही कहीं जाना । आपका निरोग होनेपर भी ईसरी जानेकी शीघ्रता करना अच्छा नहीं । अथवा आपकी इच्छा जो हो सो करना । पदार्थोंका परिणमन स्वाधीन है । किसीकी बलवत्ता वहाँ कार्यमे साधक नहीं हो सकती । हाँ, यह अवश्य है जो कार्य उपादान और निमित्त दोनो ही के सम्बन्धसे होता है । परन्तु उपादान कारण ही कार्यरूप परिणमता है । उपादानकी पूर्व पर्याय निवृत्तिपूर्वक उत्तर पर्याय होती है । गुणोकी सख्यामे न्यनाधिकता नहीं होती । इसीसे गुणोको सदा सहवर्ती कहा है । पर्यायें क्रमवर्ती हैं । यही सिद्धान्त श्री कुन्दकुन्द महाराजका है । तथाहि -

जीवपरिणामहेदु कम्मत्तंपोग्गला परिणमंति ।
पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ।।
ण वि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणो ।
अण्णोण्णणिमित्तेणा परिणामं जाण दोण्णं पि ।।

एएण कारणेण कत्ता आदा सएण भावेण ।
पोग्गलकम्मकयाणां ण दु कत्ता सव्वभावाणं ।।

जीवके परिणामको निमित्त पाकर पुद्गल कर्मरूप परिणम जाते हैं और पुद्गलकर्मको निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणम जाता है । इसका अर्थ यह है कि पुद्गलका परिणमन पुद्गलमे होता है और जीवका परिणमन जीवमे होता है । पुद्गलकर्म जीवमे गुणोत्पादक नहीं होता और न जीव पुद्गलमे कोई गुणोत्पादक होता है । फिर भी जिस जीवके साथ पुद्गलकर्मका सम्बन्ध है वही जीव रागादिकरूप हो जाता है तथा जीवके निमित्तको पाकर वे ही वर्गणाऐ ज्ञानावरणादि रूप हो जाती हैं जिनका जीवसे सम्बन्ध है ।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१२ - ५)

श्रीयुत ब्रह्मचारी छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

अनधिकार चेष्टा, प्रथम तो मेरे पत्र देनेका त्याग है । फिर आपका पत्र मेरे नाम आना तब उत्तर देना, क्योकि मेरे नियममे अच्छे पुरुषको पत्र देना निषेध नही । यह चिदानन्दका दोष नहीं । उनकी पुस्तक मैने बदल ली । उसमे एक पोस्टकार्ड आपका मिल गया । मेरी दृष्टि उसपर पड गई । उसके समाचार अवगत कर हर्ष विषाद दोनो हुए । हर्ष तो इस बातका हुआ जो आप सागर-बनारस रहेगे । आपके समागमसे दोनो ही स्थानोको लाभ पहुँच सकता है । विषाद इस बातका हुआ जो ईसरी न रहेगे । क्या ईसरी आश्रम किसीका है जो आपको वह पृथक् कर सके ? ईसरी आश्रम एक ट्रस्टके अधीन है, अत इस भावको छोडिए जो वहाँ रहना कठिन है । रहो, चाहे न रहो, यह आपकी इच्छा है । कोई व्यक्ति आपको नहीं हटा सकता । तथा आप तो ज्ञानी हैं । ससारमे गृहस्थी छोड देनेसे कषाय चली जावे, कोई नियम नहीं । अत मनुष्योकी प्रवृत्ति देख उपेक्षा करना । न तो राग करना न दोष करना । मुनिलिङ्ग और गृहिलिङ्ग दोनो ही कुछ मोक्षमार्ग नही । फिर यदि किसीकी भी प्रवृत्ति अन्यथा हो तब आपको दु खी होनेकी कौनसी बात है ? लिङ्गममकार छोडो । 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि सेव्यानि' यही मार्ग है । अनादि-कालसे हमारी प्रवृत्ति इन पर पदार्थोके ही विवेचनमे गई । अपने विवेचनसे तटस्थ रहे । फल उसका क्या हुआ सो शिरपर ही बीत रही है ।

अनुभवगम्य है । परसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं । परमार्थसे विचारो तो परकी क्या समालोचना करोगे । जब परपदार्थका अश भी ज्ञानमे नहीं आता तब क्या समालोचना करोगे । आत्मीय परिणामोका, जो ज्ञानमें झलक रहे हैं, जो इच्छा हो सो करो । यह हमारी अनादिकालकी प्रवृत्ति हो रही है जिसका फल अनन्त ससार है । अत. आश्रमके अधिकारियोका विकल्प छोडो । यदि वह साक्षात् कुछ कहें भी तब ऐसा निर्मल उत्तर दो जो उनको आपके सुन्दर भावोंका परिचय हो जावे तथा उन्हे आपके सन्तोषजनक उत्तरसे स्वय अपने परिणामोंका परिचय मिल जावे जो हम स्वय गल्तीपर है । जिसका हम स्वामित्व मान रहे हैं वह न हमारा है और न जिसने दान किया उसका है । तब किसका है ? किसीका नहीं, किन्तु जैसे अनन्त पदार्थ अपने-अपने चतुष्टयसे विद्यमान हैं वह भी उनमे एक है ।

इस विषयमे बहुत लिखना था, परन्तु गर्मीके प्रकोपसे न लिख सका । श्रीचिदानन्दजीको जो आपने लिखा - मेरा जो अभिप्राय है सो आपको आत्मीय जान लिखा । आप अन्य को न कहना सो प्रथम तो वह अभिप्राय उनको लिखा । वह भी आपका आत्मीय न था अन्य था, पत्रमे कैसे लिखा जाता और जो चिदानन्द व्यक्ति आपके आत्मीय होते तब यहाँ कैसे ? अत सानन्दसे स्वाध्याय करिये और जब जो होवे उस कालमे ऐसा ही तो होना था, जानकर सन्तोष करिए । आप हमको लिखोगे - 'यदि ऐसी व्यवस्था है तब तुम ही क्यो इस पर नहीं चलते हो ?' तब उसका उत्तर यह है जो हमारी मोहकी दुर्बलता दुर्बल बना रही है । तब हमें क्यों कहते हो, हमारी भी वही व्यवस्था जानो ? तुम हमसे कम उमर के हो । अत इस पर्यायमे जो आपका मोह है, अल्पस्थिति का है तथा हमारी अपेक्षा आप नव्य हैं । उसका घात कर सकते हो ।

मुरार छावनी ग्वालियर
ज्येष्ठ बदि ४, स २००४

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१२ - ६)

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपने लिखा सो ठीक । आपकी इच्छाके अनुरूप

ही तो आपका पुरुषार्थ होगा । होगा क्या ? सो न आप कहे सकते है और न मै कह सकता हू । बनारसके लिये आपका प्रयत्न प्रशसनीय है । हमसे न तो कुछ होता है और न होने की सम्भावना है, क्योकि पुरुषार्थ शक्तिके अनुरूप होता है । हमारी शक्ति अब उतनी नहीं जो स्वोपकार कर सके । हॉ, श्रद्धाके अनुरूप विश्वास है जो अन्तिम श्वास तक कल्याणका मार्ग स्वाश्रित है । इससे विचलित नहीं होंगे । बाह्यमे कार्य कैसा ही हो, परन्तु यह अवश्य धारणा रहनी चाहिए जो इस अनादिसे आए हुए ससारमे, जिसमें हमारे जीवद्रव्यके अनन्त भव हो गये जो केवलगम्य हैं । वर्तमान भव हमारे ज्ञानगम्य भी है । इस भव तक न तो कोई हमारा मित्र हुआ और न शत्रु हुआ । इसका ज्ञान हम आपको कैसे हुआ सो इस पर्यायकी घटनाओ से प्रत्यक्ष है । मेरी तो यह दृढ धारणा है और यह भी दृढ धारणा है जो मैने न तो किसीका उपकार किया, न कर रहा हू और न करूगा । यह मै अपने अभिप्राय की कथा कह रहा हूँ । यह सर्व कोई जानता है - कार्यकी उत्पत्ति निमित्त-उपादानसे होती है । फिर भी मै अपने श्रद्धानकी बात लिख रहा हू । उसको देखना चाहिए - मै जो कार्य कर रहा हूँ उसका मूल उद्देश्य क्या है ? विशेष क्या लिखू । यहॉ पर गर्म्मीका प्रकोप पूर्णरूपसे है । दिनभर एक स्थानमे बैठा रहता हूँ । इसी तरहके अनाब-शनाब पत्रोके लिखनेमे काल गमाया करता हूँ ।

नोट -१ अबके यह निश्चय हो गया जो तृषा परीषह कैसी होती है और मुनि लोग इसपर कैसे विजयी होते होगे इसका भी आभास मिल गया ।

२ यह भी पता चल गया जो बाह्य समागम कितना भयकर होता है । इसके सत्त्वमे परिणामोको शान्त रखना विरले महापुरुषो का ही कार्य है ।

३ यह भी पता चल गया जो गृहस्थके समागमोसे क्या-क्या कार्य होते है ?

४ यह भी पता चल गया जो व्रत लेकर निर्वाह करना कितना कठिन है ?

५ यह बात सबसे कह देना - दूरके ढोल सुहावने होते है ।

६ सागर स्थान जलवायुके कारण उत्तम है और मैं यह भी कहता हूँ जो कोई त्यागी सागरमे स्थिर नहीं रहता । अन्यथा एक आदमी उसे स्थिर कर सकता है । नाम हमसे पूछो तो -

१ - श्री सेठ भगवानदासजी बीडीवाले ।

२ - श्री सिघईजी कुन्दनलालजी ।

३ - श्री वैशाखिया जी ।

इसको आप पूछो, आपने कैसे जाना ? तब आप उनसे स्वय पूछ लो पर यह कह देना - वर्णीका विश्वास है ।

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१२ - ७)

श्रीयुत महाशय छोटेलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका भगतजीके पास आया, वाचा । यद्यपि उस पर प्राइवेट लिखा था । उसको हमने सुनने की आकाक्षा की यह नीतिमार्गके प्रतिकूल हुआ । अस्तु, इसकी क्षमा देना । किन्तु आपकी उद्वेगता का परामर्श करनेसे हमको तो यह अनुमान होता है जो आप लोगोकी दृष्टि अभी तक श्री भगवान परमगुरुके सिद्धान्तके अनुकूल नहीं । यदि होती तब क्या आपको इतनी दौड-धूप करनी पडती ? नीतिकारने कहा है -

अपराधिनि चेत्क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न हि ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि ।।

इस गाथामे सामान्य आत्माकी अपेक्षाका वर्णन है । विशेष की अपेक्षा आस्रवादि सप्त तत्त्वोंका वर्णन स्वय स्वामीने कहा है -

जीवाजीवाधिकारमे जो निरूपण है उसमे जीवका वर्णन लक्षण की अपेक्षा कहा है, पर्याय की अपेक्षा नहीं है ।

अतएव श्रीअमृतचन्द्र सूरिने लिखा है -

वर्णाद्या वा रागादयो वा भिन्ना एवास्य पुंसः ।

अर्थात् जैसे वर्णादिसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है ऐसे इन रागादिकोसे भी भिन्नप्रदेशी आत्मा है । अतएव फिर भी स्वामीने बतलाया है -

अनाद्यनन्तमचलं स्वसंवेद्यमिह स्फुटं ।
जीवः स्वयं तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते ।।

इस अधिकारमे श्री कुन्दकुन्द भगवानने जीवका निराबाधस्वरूप बतलाया है । इसीका अज्ञानी मनुष्य अन्यथा अभिप्राय कल्पना कर विपरीत श्रद्धाके पात्र हो जाते है। उनका कहना है कि जैसे वर्णादिकसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है वैसे ही रागादिकसे भी आत्मा भिन्नप्रदेशी है । रागादिक तो स्फटिकमणिकी लालिमाकी तरह परके ही है । ऐसा माननेसे शतश जैनी बाह्याचरणको दम्भ बतलाने लगे और आप स्वय इससे गिरी श्रेणीमे भक्ष्याभक्ष्य निन्द्य भोग्यके विवेकसे रहित पशुवत् विषयोमे प्रवृत्ति करने लग गए। तात्त्विक मर्म जाने बिना वही पतित दशा है । आत्माकी परिणति ज्ञानचेतना, कर्मफलचेतना तथा कर्मचेतना के भेदसे ३ प्रकारकी है । पहली तो उदयमे न आई । शुभपरिणाम को दम्भस्वरूप दिया तब अन्य शरण न होकर अशुभोपमल परिणामोके ही कर्ता सप्रेम बन गए ।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

वर्णी-विचार

१२ अप्रैल १९४५

* जिसको आत्मा का हित करना है । उसे सर्व से पहले इस बात की आवश्यकता है । जो आपको जाने, क्योकि जिसका हित करना इष्ट है उसे जाने बिना किसका हित करेगा ? उसके जानने का तो सरल उपाय तो यही है । जिसमे यह बात उठती है, जो मुझे इस अहितरूप ससार से अपने को बचाना है, वही तो आत्मा है ।

* * *

२५ फरवरी १९४५

* हममे सर्व से महान ऐब (दोष) सकोच है और वही हमारे कल्याण में बाधक है । सकोच का तात्पर्य यह है जो हमसे सर्व खुश रहें । यही वासना पतन का कारण है । परमार्थ से न तो कोई किसी का भला कर सकता है और न बुरा ।

ब्र. मूलशंकरजी

(श्रीमान् ब्र मूलशङ्करजी राजकोट (सौराष्ट्र) के रहनेवाले है । इनके पिताका नाम कालीदास जी और माताका नाम उजमबाई था । दिगम्बर मार्गको मोक्षका साधक जान श्वेताम्बर परम्पराका त्याग कर इन्होने दिगम्बर परम्परा अङ्गीकार की है । ब्रह्मचर्य दीक्षा इन्होने पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराजसे ली थी । उसका ये यथावत् पालन करते है ।

ब्रह्मचर्य दीक्षाके बाद इन्होने स्वाध्याय आदि द्वारा अपने ज्ञानमे पर्याप्त उन्नति की है । ये वक्ता भी अच्छे है । देशमे यत्रतत्र चातुर्मास आदि करके जनतामे धर्मका प्रचार करना इनका एक मात्र यही कार्य है ।

अध्यात्मरुचिवाले होनेसे श्री वर्णीजीमे इनकी विशेष श्रद्धा है । बहुत काल तक ये उनके सानिध्यमे भी रहे है । जब बाहर रहते है तब पत्र व्यवहार द्वारा अपनी जिज्ञासाकी पूर्ति करते है और उसके माध्यमसे सम्पर्क बनाये रखते है । उत्तर स्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इनको लिखे गये उपलब्ध हुए कुछ पत्र यहा दिये जाते है ।)

(१३ - १)

श्रीयुत बाबू मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जहा तक बने जिसके साथ धार्मिक स्नेह हो उसे परिग्रहसे रक्षित रखिये । कल्याणका मार्ग निर्ग्रन्थ ही है । इस मूर्च्छाने ही जिनधर्ममे नानाभेद कर दिये । इसका मूल कारण मूर्च्छा है । इसके सद्भावमे अहिसाधर्मका विकास नहीं होता । अत जहा मूर्च्छा है वहीं परिग्रह है और जहा परिग्रह है वहा महाव्रतका अभाव है ।

मनकी चञ्चलताका कारण केवल अनादि कषायकी वासना है और कुछ कारण नहीं । मनके जानेका दु ख नहीं, दु ख तो इष्टानिष्ट कल्पनाओका है । वास्तवमे उपाय तो जो बन सके तो उदय आने पर हर्ष विषाद न हो । यदि हो भी जावे तो उत्तरकालमे वासना नहीं रहने दे, वहीं तक रहने दे ।

जैसा मनुष्य लौकिक कार्योमें मग्न होकर धर्मकी ओर चित्त नहीं लगाता । यदि इसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओसे हम अन्तरङ्ग से चित्तवृत्ति हटाकर आभ्यन्तर दृष्टिको आत्माकी ओर लगा दें तो कल्याणका पथ आप ही आप मिल जावे । गरम जलको ठण्डा करने का उपाय उसकी उष्णता दूर करना ही है । आप आकुलित मत हों । घर

रहकर भी अन्त·करण निर्मल हो सकता है । अपनी आत्मा पर भरोसा रखना ही मोक्षका प्रथम उपाय है । परके द्वारा न किसीका कल्याण हुआ, न होता है और न होगा । निमित्तका अर्थ तो यही है - मुखसे उपदेश देना परन्तु उसका मर्म तो स्वय जानना होगा तथा उसे स्वय करना होगा ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१३ - २)

योग्य दर्शनविशुद्धि

तत्त्वकी मानवताका मुख्य प्रयोजन कलुषताका अभाव है । आप जहा तक बने पञ्चास्तिकाय तथा अष्टपाहुड, प्रवचनसार का अवकाश पाकर स्वाध्याय करना । अवश्य ही स्वीय श्रेयोमार्ग मे सफलीभूत होगे ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१३ - ३)

श्रीयुत महाशय मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शास्त्रके द्वारा पदार्थके स्वरूपका ज्ञान होता है । सामायिकादि क्रिया बाह्य हैं । अन्तरङ्गकी निर्मलताका कारण आत्मा स्वय है, अन्य निमित्त कारण है । किसीके परिणाम किसीके द्वारा निर्मल हो ही जावे यह नियम नहीं । हाँ वह जीव पुरुषार्थ करे और काललब्धि आदि कारण सामग्रीका सद्भाव हो तब निर्मल परिणाम होनेमे बाधा भी नहीं । परन्तु इसीका निरन्तर ऊहापोह करे और उद्यम न करे तो कार्य सिद्ध होना दुर्लभ है ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१३ - ४)

श्रीयुत महाशय, योग्य दर्शनविशुद्धि

निर्दोष वक्ता तो वीतराग सर्वज्ञ है, अत सहसा कोई कार्य करना अच्छा नहीं । दिगम्बर मदिरमे जाना परम हितकर है परन्तु प्रवचनमे भी जाना अच्छा है । मोहके

उदयमे बडी बडी भूले होती है । यह तो कुछ भूल नहीं । जबतक अपनी परिमति विशुद्धरूपा न होगी कल्याणका पथ अति दूर है । अत· जहा तक बने अपनी भूल देखो, परकी भूलसे हमे क्या लाभ । आप एक दृष्टिसे न देखिये, क्योंकि पदार्थ अनन्तधर्म्मात्मक है । गृहस्थ ही तो है अणुव्रती तो नहीं ऐसी भूले देखोगे तब मेरी समझमे इस समय वक्ता मिलना दुर्लभ है । सामान्य बात न समझना । अच्छे अच्छे जो वक्ता है वे भी ऐसी ऐसी भूलो से लिप्त है । क्रोध लोभ मान तो प्रत्यक्ष हैं माया भी है । केवल इस समय कल्याणका मार्ग, जो मनुष्य सरल भावसे अपनी प्रवृत्ति करेगा, उसीका होगा । ससारकी समालोचना किस कामकी । अपनी समालोचना करो । वही बहुत है । उसीमे काल और शक्ति पूर्ण हो जावेगी ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१३ - ५)

श्रीयुत मूलशङ्करजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप जानते है ससारमे सब प्राणियो की सुखमे इच्छा रहती है । रहो, इससे हमें क्या लाभ ? हमे देखना है कि हमारी इच्छा किस ओर जाती है ? जिस ओर जावे उसको लेकर विचार करने की आवश्यकता है । उसी के निर्णय से हमारे सम्पूर्ण निर्णय अनायास हो जावेगे । जब हमारी आत्मामे किसी विषयकी इच्छा अनायास हो जाती है उस समय हम अत्यन्त क्षुब्ध और दु खी हो जाते है । यह क्यों ? ऐसा इसलिये कि इच्छा एक वैकारिक या विकृत भाव है और वह उसके होते ही आत्मा में जो चारित्र नामकी शक्ति है वह विकृत परिणमनको प्राप्त होती है । उस कालमें उसका जो वास्तविक स्वरूप है, तिरोहित रहता है । तब जैसे कामला रोगवाले को शख पीला प्रतीत होता है उसी प्रकार मिथ्यात्व सहकृत चारित्रोदयमें यह जीव शरीरादि पर द्रव्यो को स्वात्महितका कारण मानकर दुखी होता है ।

वैशाख कृ ९, स १९९९

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१३ - ६)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मनुष्यजातिवाले ही एकसे ७ गुणस्थान तकका स्पर्शन कर सकते है । वस्त्रधर्मी व सवस्त्रधारी यह बात विद्वानो से पूछो । करणानुयोगके साथ बिना द्रव्यानुयोगके साथ मे कोई बाधा नहीं । सब अनुयोगो के साथ हो यह अति उत्तम है ।

वैशाख सुदि १२, स २००१

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१३ - ७)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप अपने को यथार्थ तत्त्ववेत्ता समझते है तथा आपका यह भी अभिप्राय है कि जो मै करता हूँ वह तथ्य है । अन्य कोई जो कुछ करता है, यथार्थ नही । ससारमे सर्वत्र मनुष्यो मे त्रुटि पाई जाती है । जो कोई व्रतादि धारण किये हैं वे कुछ न कुछ अशमे सदोष है और जो मानादि कषाय कर व्रतका पालन करते है उनका व्रत पालना चरणानुयोगके अनुसार शुद्ध होनेपर भी अन्तरग मलीनता के कारण मोक्षमार्गमे साधक नहीं । मोक्षमार्गमे अन्तरग सम्यग्दर्शन होना चाहिये । जिनके सम्यग्दर्शन है उनके बाह्यमे व्रत भी हो तब भी वह जीव देवगतिको छोडकर अन्य गतिका बन्ध नहीं करता।

(सागर)
अषाढ कृ ५, स २००१

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१३ - ८)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द स्वाध्याय कीजिये । यही परम तप है । किसकी मान्यता है इसको छोडिये । आत्मीय मान्यताका ही आत्मा पर प्रभाव पडता है । आजतक हमारा जो

ससारवास रहा उसका मूल कारण यही पर सम्बन्ध है । जहा तक परामर्श किया यही सिद्धान्त पाया कि परको त्यागने की चेष्टा ससारी जीवो का कार्य है । आत्मीय परिणमोंको जो कलुषित प्रतीत होते हो न हो यह भावना करे । त्यागका अर्थ लोकमे विद्यमानका होता है । परन्तु जो वस्तु ही नहीं उसका त्याग कैसा ? जो है उसका भी त्याग कैसा ? अर्थात् धनादि बाह्य वस्तुका त्याग तो हो सकता है किन्तु जो रागादि भाव आत्मामे हो रहे है उनका त्याग कैसा । अभी हम जिस उत्तम कार्यको करने की प्रतिज्ञा करते है उसमे अनुत्तीर्ण होते है इसका यही कारण है कि या तो हम इस योग्य नहीं या अभी हमने उस अर्थको नहीं समझा ।

सागर
वैशाख कृ १३, स २००३

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

३० मार्च १९४५

* जिन जीवो को ससार परिवर्तन का भय है । उन्हे ससार से भय करने की आवश्यकता नही । आवश्यकता इसकी है, जो अपने परिणामो को सक्लेशता से सुरक्षित रखे । उस समागम को त्यागे जिससे आत्मा मे स्नेह और द्वेष की बलबत्ता हो ।

* * *

१५ जनवरी १९४५

* हम लोको को सुनाने का प्रयत्न करते हैं । अन्य मत मे जैन मत का विकास हो । हम चाहे उसे न समझे । वास्तव मे आत्मा का स्वभाव ज्ञाता दृष्टा है । हम उसे मोह के आवेग मे आकर दूषित कर देते हैं । यह महती मुग्धता है । मुग्धता के अन्त बिना आत्महित होना कठिन है ।

ब्र. मौजीलालजी

(श्रीमान् ब्र मोजीलालजी सागर जिलान्तर्गत विनैका ग्रामके रहनेवाले थे । पिताका नाम कुल्लेलालजी था । वय प्राप्त होनेपर ये सागर आकर रहने लगे । वही पूज्य श्री वर्णीजी और सि बालचन्द्रजी अर्जीनवीसके सम्पर्कसे स्वाध्याय और चारित्रकी ओर रुचि उत्पन्न होनेपर इन्होने ब्रह्मचर्य दीक्षा ली थी । इन्होने जीवनके अन्त तक अपने चारित्र और परिणामोकी सम्हाल की है । अन्यदा और खासकर समाधिमरणके समय पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये जो पत्र उपलब्ध हुए है वे यहा दिये जाते है ।)

(१४ - १)

श्री ब्र मौजीलाल जी, योग्य शिष्टाचार

सत्यदान तो लोभका त्याग है और उसको मै चारित्रका अश मानता हूँ । मूर्छाकी निवृत्ति ही चारित्र है । हमको द्रव्यत्यागमे पुण्यबधकी ओर दृष्टि न देना चाहिये, किन्तु इस द्रव्यसे ममत्वनिवृत्तिद्वारा शुद्धोपयोगका बधक दान समझना चाहिये। वास्तविक तत्त्व ही निवृत्तिरूप है । जहा उभय पदार्थका बन्ध है वही ससार है। और जहाँ दोनो वस्तुएँ स्वकीय गुणपर्यायोमे परिणमन करती है वही निवृत्ति है । यही सिद्धात है । कहा भी है -

सिद्धातोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यता ।
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमज्योतिस्सदैवास्म्यहम् ।।
एते मे तु समुल्लसन्ति विविधा भावा: पृथग्लक्षणा: ।
तेऽह नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्य समग्रा अपि ।।

अर्थ - यह सिद्धात उदारचित्त और उदारचरित्रवाले मोक्षार्थियोको सेवन करना चाहिये कि मै एक ही शुद्ध (कर्मरहित) चैतन्य स्वरूप परम ज्योतिवाला सदैव हू । तथा ये मेरे भिन्नलक्षणवाले नाना भाव प्रगट होते है, वे मै नहीं हूँ, क्योकि वे सपूर्ण मेरे भाव परद्रव्य है ।

इस श्लोकका भाव इतना सुन्दर और रुचिकर है जो हृदयमे आते ही ससारका आताप कहा जाता है पता नही लगता । आप जहा तक हो अब इस समय शारीरिक अवस्थाकी ओर दृष्टि न देकर निजात्माकी ओर लक्ष्य देकर उसीके स्वास्थ्यकी

औषधिका प्रयत्न करना । शरीर परद्रव्य है, उसकी कोई भी अवस्था हो उसका ज्ञाता दृष्टा ही रहना । सो ही समयसारमे कहा है ।

को णाम भणिज बुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ।।

भावार्थ - यह परद्रव्य मेरा है ऐसा ज्ञानी पडित नहीं कह सकता, क्योकि ज्ञानी जीव तो आत्मा को ही स्वकीय परिग्रह मानता या समझता है ।

यद्यपि विजातीय दो द्रव्योसे मनुष्यपर्यायकी उत्पत्ति हुई है किन्तु विजातीय दो द्रव्य मिलकर सुधाहरिद्रावत् एकरूप नहीं परिणमे हैं । वहा तो वर्णगुण दोनोका एकरूप परिणमना कोई आपत्तिजनक नहीं है किन्तु यहा पर एक चेतन और अन्य अचेतन द्रव्य है । इनका एकरूप परिणमना न्यायप्रतिकूल है । पुद्गलके निमित्तको प्राप्त होकर आत्मा रागादिकरूप परिणम जाता है । फिर भी रागादिक भाव औदयिक हैं अत· बन्धजनक है, आत्माको दु ख जनक हैं, अत हेय हैं । परन्तु शरीरका परिणमन आत्मासे भिन्न है । अत न वह हेय और न वह उपादेय है । इस ही को समयसारमे श्री महर्षि कुन्दकुन्दाचार्यने निर्जराधिकारमे लिखा है -

छिज्जदु भिज्जदु वा णिजदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जम्हा तम्हा गच्छदु तह वि ण हु परिग्गहो मज्झ ।।

अर्थ - यह शरीर छिद जावो, अथवा भिद जावो, अथवा निर्जराको प्राप्त हो जावो, अथवा नाश हो जावो, जैसे तैसे हो जावो तो भी यह मेरा परिग्रह नहीं है ।

इसीसे सम्यग्दृष्टिके परद्रव्यके नानाप्रकारके परिणमन होते हुए भी हर्ष विषाद नहीं होता । अत आपको भी इस समय शरीरकी क्षीण अवस्था होते हुए कोई भी विकल्प न कर तटस्थ ही रहना हितकर है ।

चरणानुयोगमे जो परद्रव्यो को शुभाशुभमे निमित्तत्वकी अपेक्षा हेयोपादेयकी व्यवस्था की है वह अल्प प्रज्ञके अर्थ है । आप तो विज्ञ है । अध्यवासन को ही बन्धका जनक समझ उसीके त्यागकी भावना करना और निरन्तर ।

''एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो''

अर्थात् - ज्ञानदर्शनात्मक जो आत्मा है वही उपादेय है । शेष जो बाह्य पदार्थ है वे मेरे नहीं है ऐसी भावना रखो ।

मरण क्या वस्तु है ? आयुके निषेक पूर्ण होने पर मनुष्य पर्यायका वियोग ही मरण है तथा आयुके सद्भावमे पर्यायका सम्बन्ध सो ही जीवन है । अब देखिये जैसे जिस मदिरमे हम निवास करते हैं उसके सद्भाव असद्भावमे हमको किसी प्रकारका हानि-लाभ नहीं तब क्यो हर्ष विषाद कर अपने पवित्र भावोको कलुषित किया जावे । जैसे कि कहा है -

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरणं प्राणाः किलास्यात्मनो
ज्ञानं सत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित् ।।
अस्यातो मरण न किंचिद् भवेत्तद्भिः कुतो ज्ञानिनो ।
निःशङ्क· सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विन्दति ।।

अर्थ - प्राणोके नाशको मरण कहते है और प्राण इस आत्माका ज्ञान है । वह ज्ञान सद्रूप स्वय ही नित्य होनेके कारण कभी नहीं नष्ट होता है । अत इस आत्माका कुछ भी मरण नहीं है तो फिर ज्ञानीको मरणका भय कहासे हो सकता है । वह ज्ञानी स्वय नि शङ्क होकर निरन्तर स्वाभाविक ज्ञान को सदा प्राप्त करता है ।

इस प्रकार आप सानन्द ऐसे मरणका प्रयास करना जो परम्परा मातास्तनपानसे बच जावो । इतना सुन्दर अवसर हस्तगत हुआ है, अवश्य इससे लाभ लेना ।

आत्मा ही कल्याणका मन्दिर है अत परपदार्थोकी किचित् मात्र भी अपेक्षा न करे । अब पुस्तक द्वारा ज्ञानाभ्यास करनेकी आवश्यकता नहीं । अब तो पर्यायमे घोर परिश्रम कर स्वरूपके अर्थ मोक्षमार्गका अभ्यास करना है । अब उसी ज्ञानशास्त्रको रागद्वेषशत्रुओके ऊपर निपात करनेकी आवश्यकता है । यह कार्य न तो उपदेष्टाका है और न समाधिमरणमे सहायक पडितोका है । अब तो अन्य कथाओंके श्रवण करनेमे समय को न देकर उस शत्रुसेनाके पराजय करनेमे सावधान होकर यत्न पर हो जावो ।

यद्यपि निमित्त बली तर्कद्वारा बहुतसी आपत्ति इस विषयमे ला सकते है फिर भी कार्य करना अन्तमे तो आपहीका कर्तव्य होगा । अत जब तक आपकी चेतना सावधान है निरतर स्वात्मस्वरूपके चितवनमे लगादो ।

श्री परमेष्ठीका भी स्मरण करो, किन्तु ज्ञायक की ओर ही लक्ष्य रखना, क्योकि मै ज्ञाता दृष्टा हूँ, ज्ञेय भिन्न है । उसमे इष्टानिष्ट विकल्प न हो यही पुरुषार्थ करना और अन्तरगमे मूर्छा न करना तथा रागादिक भावोको तथा उसके वक्ताओको दूर ही से

त्यागना । मुझे आनन्द इस बात का है कि आप नि शल्य है । यही आपके कल्याणकी परमौषधि है ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१४ - २)

महाशय, योग्य शिष्टाचार

आपके शरीरकी अवस्था प्रतिदिन क्षीण हो रही है । इसका ह्रास होना स्वाभाविक है । इसके द्वारा और वृद्धिसे हमारा कोई घात नहीं, क्योंकि आपने निरतर ज्ञानाभ्यास किया है अत आप इसे स्वय जानते है । अथवा मान भी लो शरीरके शैथिल्यसे तद्वयवभूत इन्द्रियादिक भी शिथिल हो जाती है तथा द्रव्येन्द्रियके विकृत भावसे भावेन्द्रिय स्वकीय कार्य करनेमे समर्थ नहीं होती है, किन्तु मोहनीयउपशमजन्य सम्यक्त्व की इसमे क्या विराधना हुई । मनुष्य शयन करता है उस काल जाग्रत अवस्थाके सदृश ज्ञान नहीं रहता किन्तु जो सम्यग्दर्शन गुण ससारका अन्तक है उसका आशिक भी घात नहीं होता । अतएव अपर्याप्त अवस्थामें भी सम्यग्दर्शन माना है । जहा केवल तैजस कार्मणशरीर है और उत्तरकालीन शरीरकी पूर्णता नहीं । तथा आहारादि वर्गणाके अभावमे भी सम्यग्दर्शनका सद्भाव रहता है । अत आप इस बातकी रचमात्र आकुलता न करे कि हमारा शरीर क्षीण हो रहा है, क्योकि शरीर भी पर द्रव्य है । उसके सम्बन्धसे जो कोई कार्य होनेवाला है वह हो अथवा न हो परन्तु जो वस्तु आत्मा ही से समन्वित है उसकी क्षति करनेवाला कोई नहीं । उसकी रक्षा है तो ससार तट समीप ही है । विशेष बात यह है कि चरणानुयोगकी पद्धतिसे समाधिके अर्थ बाह्य सयोग अच्छे होना विधेय है किन्तु परमार्थ दृष्टिसे निज प्रबलतम श्रद्धान ही कार्यकर है । आप जानते है कि कितने ही प्रबल ज्ञानियोका समागम रहे किन्तु समाधिकर्ताको उनके उपदेश श्रवणकर विचार तो स्वयको करना पडेगा । मै एक हूँ, चैतन्य हूँ, रागादिक शून्य हूँ, यह जो सामग्री देख रहा हूँ परजन्य है, हेय है, उपादेय निज ही है, परमात्माके गुणगानसे परमात्माद्वारा परमात्मा पदकी प्राप्ति नहीं किन्तु परमात्माद्वारा निर्दिष्ट पथपर चलनेसे ही उस पदका लाभ निश्चित है । अत सब प्रकारके झझटोको छोडकर भाई साहब ! अब तो केवल वीतराग निर्दिष्ट पथपर ही आभ्यतर परिणमसे आरूढ हो जाओ और बाह्य त्यागकी वहीं तक मर्यादा है जहा तक

निज भावमे बाधा न पहुँचे । अपने परिणामोके परिणमनको देखकर ही त्याग करना, क्योकि जैनसिद्धातमे सत्य पथ मूर्छा त्यागवालेको ही होता है, अत जो जन्म भर मोक्षमार्गका अध्ययन किया उसके फलका समय है इसे सावधानतया उपयोगमे लाना। यदि कोई महानुभाव अन्तमे दिगम्बर पदकी सम्मति देवे तब अपनी अभ्यंतर विचारधारासे कार्य लेना । वास्तवमे अन्तरग वृद्धिपूर्वक मूर्छा न हो तभी उस पदके पात्र बनना । इसका भी खेद न करना कि हम शक्तिहीन हो गये अन्यथा अच्छी तरहसे यह कार्य सम्पन्न करते । हीनशक्ति शरीरकी दुर्बलता है । आभ्यतर श्रद्धामे दुर्बलता न हो । अत निरन्तर यही भावना रखना -

एगो मे सासदो आदा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोगलक्खणा ।।

अर्थ - एक मेरी शास्वत आत्मा ज्ञान-दर्शनलक्षणमयी है शेष जो बाहिरी भाव है वे मेरे नहीं है, सर्व सयोगी भाव है ।

अत जहा तक बने स्वय आप समाधानपूर्वक अन्यको समाधिका उपदेश करना, समाधिस्थ आत्मा अनन्त शक्तिशाली है । तब यह कौन सा विशिष्ट कार्य है । वह तो उन शत्रुओको चूर्ण कर देता है जो अनन्त ससारके कारण है ।

आ. शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१४ - ३)

महाशय, योग्य शिष्टाचार

इस ससार समुद्रमे गोते खानेवाले जीवो को केवल जिनागम ही नौका है । उसका जिन भव्य प्राणियोने आश्रय लिया है वे अवश्य एक दिन पार होगे । आपने लिखा कि हम मोक्षमार्ग प्रकाश की दो प्रति भेजते है सो स्वीकार करना । भला ऐसा कौन होगा जो इसे स्वीकार न करे । कोई तीव्रकषायी ही ऐसी उत्तम वस्तु अनगीकार करे तो करे परतु हम तो शतश धन्यवाद देते हुये आपकी भेट को स्वीकार करते हैं । परतु क्या करे निरतर इसी चिन्तामे रहते हैं कि कब ऐसा शुभ समय आवे जो वास्तवमे हम इसके पात्र हो । अभी हम इसके पात्र नहीं हुये, अन्यथा तुच्छ सी तुच्छ बातोमे नाना कल्पनाये करते हुये दुखी न होते । अब भाई साहब ! जहा तक बने हमारा और

आपका मुख्य कर्त्तव्य रागादिकके दूर करनेका ही निरतर रहना चाहिये, क्योंकि आगमज्ञान और श्रद्धासे बिना सयतत्वभावके मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं । अत· सब प्रयत्नका यही सार होना चाहिये जो रागादिक भावोंका अस्तित्व आत्मा में न रहे । ज्ञान वस्तुका परिचय करा देता है अर्थात् अज्ञाननिवृत्ति ज्ञानका फल है । किन्तु ज्ञानका फल उपेक्षा नहीं, उपेक्षाफल चारित्रका है । ज्ञानमे आरोपसे वह फल कहा जाता है । जन्म भर मोक्षमार्ग विषयक ज्ञान सपादन किया अब एकबार उपयोगमे लाकर उसे आस्वाद लो । आज कल चरणानुयोगका अभिप्राय लोगोंने परवस्तुके त्याग और ग्रहणमे ही समझ रक्खा है सो नहीं । चरणानुयोगका मुख्य प्रयोजन तो स्वकीय रागादिके भेटनेका है परतु वह पर वस्तुके सबधसे होते है अर्थात् पर वस्तु उसका नोकर्म होती है अत उसको त्याग करते है । मेरा उपयोग अब इन बाह्य वस्तुओके सबधसे भयभीत रहता है । मै तो किसीके समागमकी अभिलाषा नहीं करता हू । आपको भी सम्मति देता हू कि सबसे ममत्व हटानेकी चेष्टा करो । यही पार होनेकी नौका है । जब परमे ममत्व भाव घटेगा तब स्वयमेव निराश्रय अहबुद्धि घटजावेगी, क्योकि ममत्व और अहकारका अविनाभावी सबध है । एकके बिना अन्य नहीं रहता। बाईजीके बाद मैंने देखा कि अब तो स्वतत्र हू । दानमे सुख होता होगा इसे करके देखू। ६०००/- रुपया मेरे पास था । सर्व त्याग कर दिया, परन्तु कुछ भी शातिका अश न पाया । उपवासादिक करके शाति न मिली । परकी निदा और आत्मप्रशसासे भी आनदका अकुर न उगा । भोजनादिकी प्रक्रियासे भी लेश शातिको न पाया । अत यही निश्चय किया कि रागादिक गये बिना शातिकी उद्भूति नहीं, अत सर्व व्यापार उसीके निवारणमे लगा देना ही शातिका उपाय है । वाग्जालके लिखनेसे कुछ भी सार नहीं ।

आ. शु. चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१४ - ४)

महाशय, योग्य शिष्टाचार

मै यदि अन्तरङ्गसे विचार करता हूँ तो जैसा आप लिखते है मै उसका पात्र नहीं, क्योकि पात्रताकी नियामक कुशलताका अभाव है । वह अभी कोसो दूर है । हा, यह अवश्य है यदि योग्य प्रयास किया जावेगा तब दुर्लभ भी नहीं । वक्तृत्वादि गुण तो

आनुसगिक है । श्रेयोमार्गकी सन्निकटता जहा जहा होती है वह वस्तु पूज्य है, अत हम और आपको बाह्य वस्तुजालमे मूर्छाकी कृशताकर आत्मतत्त्वको उत्कर्ष बनाना चाहिये । ग्रन्थाभ्यासका प्रयोजन केवल ज्ञानार्जन ही तक अवसान नहीं होता । साथहीमे परपदार्थोसे उपेक्षा होनी चाहिये । आगमज्ञानकी प्राप्ति और है किन्तु उसकी उपयोगिताका फल और ही है । मिश्रीकी प्राप्ति और स्वादुतामें महान् अन्तर है । यदि स्वादका अनुभव न हुआ तब मिश्री पदार्थका मिलना केवल अन्धेकी लालटेनके सदृश है, अत अब यावान् पुरुषार्थ है वह इसीमे कटिबद्ध होकर लगा देना ही श्रेयस्कर है जो आगमज्ञानके साथ साथ उपेक्षारूप स्वादका लाभ हो जावे । आप जानते ही हैं - मेरी प्रकृति अस्थिर है तथा प्रसिद्ध है परन्तु जो अर्जित कर्म है उनका फल तो मुझे ही चखना पडेगा, अत कुछ भी विषाद नही ।

विषाद इस बातका है - जो वास्तविक आत्मतत्त्वका घातक है उसकी उपक्षीणता नहीं होती । उसके अर्थ निरतर प्रयास है । बाह्य पदार्थका छोडना कोई कठिन नही । किन्तु यह नियम नहीं, क्योकि अध्यवसानके कारण छूटकर भी अध्यवसानकी उत्पत्ति अन्तस्तल वासनासे होती है । उस वासनाके विरुद्ध शस्त्र चलाकर उसका निपात करना । यद्यपि उपाय निर्दिष्ट किया है परन्तु फिर भी वह क्या है केवल शब्दोकी सुन्दरताको छोडकर गम्य नहीं । दृष्टात तो स्पष्ट है - अग्निजन्य उष्णता जो जलमे है उसकी भिन्नता तो दृष्टिविषय है । यहा तो क्रोधसे जो क्षमाकी प्रादुर्भूति है वह यावत् क्रोध न जावे तब तक कैसे व्यक्त है । ऊपरसे क्रोध न करना क्षमाका साधक नही । आशयमे वह न रहे यही तो कठिन बात है । रहा उपायसे तत्त्वज्ञान सो तो हम आप सर्व जानते ही है किन्तु फिर भी कुछ गूढ़ रहस्य है जो महानुभावोके समागमकी अपेक्षा रखता है । यदि वह न मिले तब आत्मा ही आत्मा है, उसकी सेवा करना ही उत्तम है । उसकी सेवा क्या है - "ज्ञाता दृष्टा" और जो कुछ अतिरिक्त है वह विकृत जानना ।

आपका शुभचिंतक,
गणेशप्रसाद वर्णी

श्री धन्यकुमारजी

(श्रीमान् बाबू धन्यकुमारजी पहले जेलर थे । वहासे निवृत्त होनेके बाद धर्मसाधन करते हुए ये अपनी पत्नीके साथ ईसरी आकर रहने लगे । वहीं इनका समाधिपूर्वक पिछले वर्ष स्वर्गवास हुआ है । ये प्रकृतिके भद्र और धार्मिक रुचिके व्यक्ति थे । पूज्य वर्णीजीमे इनकी विशेष श्रद्धा थी । यहा पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये कतिपय पत्र दिये जाते है । मृत्यु - १९-२-१९५६)

(१५ - १)

श्रीयुत महाशय धन्यकुमारचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

मैने आपके पत्रको बहुत उपादेय समझा और आपको सहर्ष धन्यवाद देता हू तो आपने यथार्थ-घातक त्रुटि मेरे समक्ष रख दी । आपके सहवाससे मुझे तो लाभ ही है ।

वैशाख सु १५ स १९९७

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१५ - २)

श्रीयुत धन्यकुमारजी, दर्शनविशुद्धि

आप जानते है कि जब तक यह जीव बाह्य पदार्थोके द्वारा अपनी महत्ता समझ रहा है, उससे जो न हो, थोडा है । धर्मकी रक्षा करनेवाले रत्नत्रयधारी पवित्र आत्मा होते है । उन्हींके वाक्य आगमरूप होकर इतर पुरुषोको धर्मलाभ करानेमे निमित्त होते है । धन आदि जो बाह्य जड पदार्थ हैं उन्हे अपना मानना अपनेको जड बनानेकी चेष्टा है । यदि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ज्ञानी जीवका अनादर हो जावे तो इसमे आश्चर्य क्या है । परन्तु ज्ञानी वही है जो इन उपद्रवोसे चलायमान न हो । स्यालिनीने श्रीसुकुमाल स्वामीका उदर विदारण करके अपने क्रोधकी पराकाष्ठाका परिचय दिया, किन्तु सुकुमाल स्वामी उस भयङ्कर उपसर्गसे विचलित न होकर उपशमश्रेणी द्वारा सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके पात्र हुए । अत मै उसीको सम्यग्ज्ञानी मानता हू जिसकी श्रद्धामे मान-अपमानसे कोई हर्ष-विषाद नहीं होता ।

आत्मकल्याणके लिए अधिक समयकी आवश्यकता नहीं, किन्तु निर्मल अभिप्रायकी महती आवश्यकता है । गृहस्थ-अवस्थामे नाना प्रकारके उवद्रवोका सद्भाव होनेपर भी निर्मल अवस्थाका लाभ अशक्य या असम्भव नहीं । वासना ही ससार और मोक्षकी जननी है । मेरा स्वास्थ्य तीन माहके मलेरिया ज्वरसे दुर्बल हो गया है । इससे मै बाह्य विशेष कार्य करनेमे असमर्थ हूँ । समय पाकर आपके पत्रका उत्तर दूगा ।

ईसरी
श्रावण वदि १२, स १९९७

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१५ - ३)

योग्य इच्छाकार

हमारा विचार राजगृही जानेका निश्चित है । दीपमालिका बाद जावेगे । आप कब तक आवेगे । यह मान ही हमारे अन्तस्तत्वका बाधक है । जैसे हमारे राग-द्वेष जाते है, परन्तु फिर आते है । यही तो विपत्तिमूलक वार्ता है । घर छोडा, जगत घर बना लिया । घरमे तो परिमित कुटुम्ब होता है । यहॉ तो उसकी इयत्ता नहीं । यही ममता तो ससार की माता है ।

ससारमे मनुष्य बहुत कुछ सुख चाहते है । परन्तु जिन कारणोसे सुख होगा उनका स्पर्श भी नहीं करते । यही कारण है जो आजन्म उस नित्य स्वाधीन आत्मोत्थ सुखसे वञ्चित रहता है । केवल मोदककी कथा कर मधुरता का स्वाद लेना चाहता है जो सर्व ही अलीक है । श्रीयुत हरनारायणजी को कहना - अब तो चरम वय है । चरम पुरुषार्थ करनेकी घडी है ।

कार्तिक कृ ७, स १९९७

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१५ - ४)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मै वहाँसे एक दम चला आया । यह भी कर्मज भाव है । मेरा आभ्यन्तर किसीसे विरोध नहीं । यदि अज्ञान व प्रमादवश हुआ भी हो तब उसका पश्चाताप है । परन्तु अब ६ मासके लिये अकेले रहना है, किसीके साथमे नहीं रहना । मेरे सर्वसे उत्कृष्ट बाबाजी हैं । उनके साथमे भी न रहना मैने तय कर दिया । कोई भी चेष्टा मेरे अब कोई करेगा, विफल होगी । आश्रममे नहीं रहूँगा, क्योकि वहाँ का रहना ही लोकोको दु ख का बीज हुआ । ईसरी रहनेका निषेध नहीं । इस ससारवनमे हमने अनन्त दु ख पाये । दु खका कारण मूल हमारा ही दोष है । हम पर को अपराधी मानते है । इसीसे दु खी होते है । हे प्रभो ! कब सुमति का उदय आवे और इन मिथ्या तर्कोसे पिण्ड छूटे ।

जेष्ठ कृ १, स १९९८

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१५ - ५)

योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ उपयोगकी निर्मलता हो, वहीं रहना । उपयोग निर्मलता के अर्थ ही बाह्य प्रयास है । ससारमे शान्तिका कारण यही है । इसकी मलीनता ही ससारकी जननी है, अत उसीकी निर्मूलता करना । यद्यपि आपके रहनेसे हमको तो लाभ ही है। तथापि जहा आपको स्वय लाभ हो और आपके द्वारा अन्य व्यक्तियोको लाभ हो वहाँ पर रहना और अच्छा है । मृग कहीं जावे स्थानमे सुगन्ध नहीं, सुगन्धकी वस्तु पासमे हैं । परन्तु खोजता अन्यत्र ही है । यही भूल है । इसे जान लेना ही सम्यग्ज्ञान है।

ईसरी,
मार्गशीर्ष कृ ६, स १९९८

आपका शुभचिन्तक,
गणेशप्रसाद वर्णी

(१५ - ६)

योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द गया पहुँचे । परन्तु फिर मलेरिया सामग्री सहित आया । सानन्द वही रहता है जो किसीके चक्रमे नहीं आता । हम सानन्दकी ऊपरी बाते करते है । सानन्द क्या है इससे विमूढ है । कला जानना और बात है, उसका रसिक होना और बात है । गाना सुनकर मूर्ख लोक भी सुख मानता है, परन्तु अनुभव मृगपशुको ही होता है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१५ - ७)

योग्य दर्शनविशुद्धि

शान्तिसे जीवन बिताना यह कहना और बात है, शान्तिसे काल बिताना और बात है । उपदेश देना लिखना यह कार्य बाह्य बात है । अस्तु जो हो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१५ - ८)

योग्य दर्शनविशुद्धि

कर्मकी प्रबलताको समभावसे सहना ही हमने इस समय उचित समझा है । अन्यथा इस रूप प्रवृत्ति न होती । आप लोग नाना कल्पना करते होगे । ये सर्व अनात्मीय है । शान्तिके कारण इन सबका त्याग ही हैं । हम अब गयासे आगे नहीं जा सके । पैरके अगूठामे दर्द हो गया । अब शान्त है । यद्यपि हमारा विचार गर्मीमे प्राय शीत प्रदेशमे रहनेका रहता है । परन्तु उदयने कहा अभी जो हमारा कर्जा है, अदा करो । हमने भी देना उचित समझा, क्योकि ऋण चुकाना ही धर्म है । अब सर्व तरहसे शान्ति है । अन्तरगकी शान्ति पुरुषार्थ अधीन है । जब सुअवसर आवेगा, स्वयमेव कार्य बन जावेगा ।

चैत सुदी १४, स १९९९

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१५ - ९)

योग्य दर्शनविशुद्धि

अब कुछ कमजोरी हो गई। वह निवृत्त होने पर राजगृही जाऊँगा। जब भी अन्यत्र जानेकी चेष्टा करता हूँ यही सर्व आपत्ति आ जाती है। भीतरसे देखा जावे तो अपनी आत्मा मे ही सर्व दुखकी जड है। वह जावे, काम बने। हमने केवल परको ही उपकारका क्षेत्र बना रक्खा है। मै तो उसे मनुष्य ही नहीं मानता जो स्वोपकारसे वञ्चित हैं।

गया,
अषाढ बदी १३, स. १९९९

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१५ - १०)

योग्य दर्शनविशुद्धि

यहाँ से द्रोणगिरि ८९ मील है। अभी तक तो अच्छा हूँ। कलकी भगवान जानें। बनारसके बाद मै तो एक बार भोजन करने लगा। पानी भी दूसरी बार नहीं लेता। रुपया पैसा सर्व छोड दिया। केवल १ रजाई, २ धोती, २ चादरा, १ दरी, १ बिछौना, २ तौलिया।

देवेन्द्रनगर,
फा ब १, स २०००

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१५ - ११)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी प्रकृति परमार्थ मार्गकी ओर है। परन्तु वास्तवमें परिषह सहनका बल नहीं। फिर भी अब जो कुछ नियम लिया है, पालन करूँगा। मनुष्य जन्म दुर्लभ है।

परन्तु कायाकी रक्षा करना उससे भी कठिन है । उसका जो घात करते है वह अनन्त ससारके पात्र होते हैं । हमारा पूर्ण विचार बिहार भूमिमे ही अन्तिम आयु बितानेका है।

बड़ा मलहरा,
फा सुदि ६, स २०००

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१५ - १२)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप लोगोका धर्म साधन शान्तिपूर्वक होता होगा, क्योकि स्थान पवित्र है। यद्यपि मूल कारण तो भावमे है । फिर भी निमित्त कारण भी बाह्यमे होना चाहिये।

आश्विन कृ २, स २००१

आ. शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१५ - १३)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द जीवन बिता रहे है यह आपके पुण्य परिणामो का फल है । मुझे इसका हर्ष है जो आपका जीवन धर्म ध्यानमें सफल हो रहा है ।

ज्येष्ठ सुदि २, स २००३

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१५ - १४)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका धर्मसाधन भी योग्य रीतिसे होता होगा । यो तो ससार है । फिर भी आपसे विवेकी जन इसकी वायुसे सुरक्षित है । मैं तो हतभाग्यकी तरह इन गृहस्थोंमें

आकर फॅस गया । इसमे इनका दोष नहीं । जो जालमे फॅसता है, लोभ से ही फँसता है। मैं व्यर्थके अभिमानमे फँस गया । मैने इस देशको निज माना । इसीके वशीभूत होकर फँस गया । अब अतरगसे विचार है कि वर्षा बाद फिर वहाँ आनेका प्रयत्न करू । परसाल आता था परन्तु बिहारके झगड़ेने रोक दिया ।

सागर,
वैशाख सुदि ४, स २००४

आ. शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१५ - १५)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने जो लिखा अक्षरश सत्य है । मनुष्य वही है जो पहले आत्महित करे । परहित तो आनुषङ्गिक है । मेरा तो यह दृढ विश्वास है जो आज तक किसीके द्वारा परहित होने का प्रयत्न नहीं हुआ । निमित्त कारण की मुख्यतासे ऐसा कथन किया जाता है । मैं किसीके द्वारा यहा नहीं फसा । अपने ही दुर्बलताभावसे फस गया । और मै क्या ससारमात्र अपनी दुर्बलतासे ससार की यातनाओं को सहता है । मेरा अन्तरग विचार है जो अन्तिम आयु श्री गिरिराजजीमे ही पूर्ण करू । अपवाद और उत्सर्गमे मैत्रीभाव होना चाहिए । यही मार्ग है और इसका अनुसरण करना ही श्रेयस्कर है । परन्तु लौकिक अपवादकी रक्षा भी करनी चाहिए । यह भी हमारी दुर्बलता है, अन्यथा इसकी परवा न करते ।

आपका शुभचिंतक,
गणेशप्रसाद वर्णी

वर्णी-विचार

१८ फरवरी १९४५

* आत्म गौरव पहचानो । व्यर्थ के झझट मे मत पडो । प्रतिदिन इसको लिखते हो । अभी तक इस पर नहीं पहुँचे जो आत्मा का कल्याण क्या है ? पुस्तको मे कल्याण की गध नहीं और न साधु समागम मे इसका मिलना सरल है ।

ब्र. मंगलसेन जी

(श्रीमान् ब्र मगलसेन जी का जन्म कार्तिक कृष्णा १३ वि सं १९४७ को मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत मुवारकपुर ग्राममे हुआ था । पिताका नाम लाला भिक्खीमल जी और माताका नाम श्री मुनियादेवी था । जाति अग्रवाल है । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मेट्रिक तक हुई है । अपने व्रती जीवनमे इन्होने अपनी धार्मिक योग्यता भी बढाई है ।

विवाह होनेपर भी ये गृहप्रपञ्चमे अधिक दिन तक रत न रह सके और गार्हस्थिक जीवनसे उदास रहने लगे । फलस्वरूप इन्होने १९८१ के माघमे सप्तम प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिए । दीक्षागुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज स्वय है । अपने त्यागी जीवनमे इन्होने वेदी प्रतिष्ठा आदि अनेक कार्य कराये है । ग्राम-सुधार योजनामे रुचि होनेसे कुछ समय इनका इस कार्यमे भी व्यतीत हुआ है । ये बचपनमे भजन गायनके बडे रुचिया थे, इसलिए इनके द्वारा भी इन्होंने समाजकी सेवा की है।

पूज्य वर्णीजी महाराज से इनका पुराना सम्बन्ध है । फलस्वरूप ये बहुत काल तक उनके सम्पर्कमे रहे है और साक्षात् सम्पर्क न रहने पर पत्र व्यवहार द्वारा उसकी पूर्ति करते रहते है । यहा पूज्य वर्णीजीने इन्हे जो पत्र लिखे वे दिये जाते है।)

(१६ - १)

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जो आपकी आजीविका है उसे सहसा न मिटाओ । कल्याणका मार्ग आत्मामे। केवल परावलम्बी होकर कल्याण चाहनेसे कल्याण नहीं होता । आपकी इच्छा सो करना । स्वाध्याय करो । वही कल्याणका मार्ग है । व्यर्थ मत भटको । मै बाबाजीकी आज्ञानुसार रहूँगा ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - २)

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणका मार्ग एकतामे है । अनेकता ही ने तो ससार बना रखा है । यदि हम

अपना हित चाहे तो परसे ममत्व मिटावें, न कि जोडें । हमको तो अन्तरङ्गसे यहाँ आनेसे विशेष लाभ नहीं हुआ, प्रत्युत कई अशमे हानि हुई । मै उस समागमको चाहता हूँ जो परकी आशा न करे । बाबाजी मेरे मित्र तथा पूज्य है । जैसी उनकी आज्ञा होगी वैसा ही करूँगा ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ३)

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणपथ कल्याणमे है । हम अन्यमे देखते हैं । हे भगवन् आत्मन्! अब तो इस पराधीनबन्धनके जालसे पृथक् हो । इन परद्रव्योका आश्रय छोड । गाथा ४०८, ४०९ समयसारमे लिङ्ग छोडनेका यह आशय है जो देहाश्रित लिङ्गमे ममत्व छोडना । अनादिसे परके आश्रय ही तो रहे । इसीका नाम बन्ध है । मोक्ष नाम तो परसे भिन्न होनेका है । कब ऐसा दिन आवे जो इन परवस्तुओ से ममत्व छूटे । निर्मल आश्रय ही मोक्षमार्ग है । क्रिया तो परद्रव्याश्रित त्यागनी ही पडेगी । हमने १५ दिन मौन रखा । आगे एक दिन मौन और एक दिन बोलनेका विचार है । जितने झझटसे बचें उतने ही कल्याणके पास जावेगे ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ४)

योग्य दर्शनविशुद्धि

समताभाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोका मुख्य कर्तव्य है और सब शिष्टाचार है । उपयोग लगानेकी आशासे सर्वत्र जाइये, परन्तु अन्तिम बात यही है जो चित्तवृत्तिको शान्त करनेका प्रयत्नही सराहने योग्य है ।

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ५)

योग्य दर्शनविशुद्धि

प्रशस्त भाव ही ससार बन्धनके नाशका मूल उपाय है । शास्त्रज्ञान तो उपायका उपाय है । यावत् हमारी दृष्टि परोन्मुख है तावत् स्वोन्मुख दृष्टिका उदय नहीं । परन्तु जब स्वोन्मुख हो तब तो स्वकीय रूपका प्रतिभास हो । केवल स्वरूपका प्रतिभासक है । परन्तु तद्रूप रहना यह बिना मोहके उपद्रवके ही होगा । कहने मे और करने मे महान् अन्तर है । आप जानते है, प्रथम सम्यग्दर्शनके होते ही जीवके परपदार्थो मे उदासीनता आ जाती है और जब उदासीनताकी भावना दृढतन हो जाती है तब आत्मा ज्ञाता दृष्टा ही रहता है । अत आतुर नहीं होना । उद्यम करना हमारा पुरुषार्थ है ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ६)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथोपकथनकी शैलीको छोडकर कर्त्तव्यपथमे लग जाना ही श्रेयस्कर है । कल्याण करनेवाला आप है । परपदार्थ की आकाक्षा ही बाधक है । परके सम्बन्धसे रागादिक ही होते है और रागादिको के नाशके अर्थ ही हमारी चेष्टा है । अत नि शक होकर निराकुलतारूप उद्योगद्वारा ही आत्मतत्त्वकी विशुद्धि होगी । अत जो आकुलताके उत्पादक हो उन्हे सर्वथा त्याग कर स्वात्मगुणकी निर्मलता ही हमारा ध्येय होना चाहिये । अपनी मण्डलीको मोक्षमार्गमे साधक जान अभी आप सब एकान्तमे अपने ही ग्रामो के उपवनोमे २ या ४ दिन अवसर पाकर रहने का अभ्यास करोगे तो अधिक लाभ उठाओगे । हमारे सवारी आदिका त्याग है, अन्यथा हम आपके उन्हीं उपवनोमे झोपडी बनाकर रहते, क्योकि बाह्य साधन वहॉ योग्य थे । चिन्ता किसी बातकी न करना । मेरी तो यह धारणा है कि मोक्षकी भी चिन्ता न करो । मोक्षपथमे लग जाना चिन्ताकी अपेक्षा अति श्रेयस्कर है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ७)

योग्य दर्शनविशुद्धि

उतना परिग्रह रखना श्रेयस्कर होगा जिससे आपकी इच्छा पूर्ति हो जावे । सक्लेशता न हो और न इतना अधिक हो कि गृघ्नता पैदा हो जावे । ससार मे उन जीवो की प्रशसा है जो जालसे पृथक् होने की चेष्टा करने मे लग जाते है । आपने अच्छा विचार किया । लाला शीतलप्रसादजीने भी स २००० में गृहसे विरल होने का विचार किया है । पृथक् होनेके पहले अच्छी तरहसे चित्तवृत्तियो के निरोध करने का प्रयास करे । केवल बाह्य पदार्थो के त्यागसे ही शान्तिका लाभ नहीं जबतक मूर्च्छाकी सत्ता न हटेगी । मूर्च्छा घटाना ही पुरुषार्थ है । इसके वास्ते महान् उत्तम विचारो की आवश्यकता है ।

ईसरी,
आश्विन शु ३, स १९९६

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ८)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द समय बिताना और जहॉ तक बने निराकुलताका लक्ष्य त्यागमे रखना । जो भी कार्य करो अन्तिम फल उसका शान्तिसे देखना । यहॉ तक ही वस्तुकी व्यवस्था है । जिसने इस व्यवस्थाको जान लिया वह पर्यायकी सफलता पानेका भागीदार हो गया ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ९)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप वहा निमित्तोकी कटुतासे गृहवास छोडना चाहते हो सो भाई साहब ! इस दुष्षमकालमे सर्वत्र निमित्तोमे विपर्ययता हो रही है । यहाँ रहकर मुझे अच्छी तरहसे

अनुभव हो गया कि अपनी परणतिको पवित्र बनानेकी चेष्टा करना ही बुरे निमित्तोसे बचनेका उपाय है । निमित्त कभी भी बुरे नहीं होते । शख पीत नहीं होता, परन्तु कामला रोगवाले को पीत भासमान होता है । इसी तरह हमारी जो अन्तस्तलस्थित कलुषता न जावेगी तब तक, ससारमे भ्रमण कर आइये, शान्तिका आंशिक भी लाभ न होगा, क्योकि शान्तिको रोकनेवाली कलुषता तो वहीं बैठी हुई है । क्षेत्र छोडनेसे क्या होगा ? जैसे रोगी मनुष्यको एक मामूली घरसे निकालकर एक दिव्य महलमे ले जाया जाय तो क्या वह निरोग हो जावेगा ? अथवा कॉचके नगको स्वर्णमे पच्ची करा दीजिये तो क्या वह हीरा हो जावेगा ?

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - १०)

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । वही वृत्त जाने सो यह बारम्बार पिष्टपेषण ही है । आप वही लिखते है और वही उत्तर हम देते है । एकबार चित्तवृत्तिकी चञ्चलताको छोडो और स्वोन्मुख होओ । आज तक परोन्मुख रहे और उसका फल भी जो पर वस्तुका होता है वही हुआ । सब सगतिको छोडकर एक स्वात्मसगति करो । वही सर्वशान्तिकी जड और सर्व प्रश्नो के उत्तर करने मे समर्थ है । जो दु ख आपको है वही तो हमको है । यदि न होता तो कदापि हम उत्तर न देते । उत्तर देना ही इसमे प्रमाण है । जैसे मागनेवाला दु खी है वैसे दाता भी करुणाक्रान्त होने से दु खी है । हॉ, दु खमे कारण पृथक्-पृथक् अवश्य है । पर है दु खी दोनो । मेरी तो श्रद्धा यहॉ तक है कि जहॉ तक अभिप्रायमे परोपकारिणी बुद्धिका सद्भाव है चाहे वह दर्शनमोहके सद्भावमे हो और चाहे चारित्रमोहके सद्भावमे, आत्मामे दोनो ही बाधाकारिणी हैं । अब ऐसा भाव उत्पन्न करो कि परसे कल्याण होने की आकाक्षा ही शान्त हो जावे, क्योकि अभिलाषा अनात्मीय वस्तु है । इसका त्यागी ही आत्मस्वरूपका शोधक है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ -११)

योग्य दर्शनविशुद्धि

हम सानन्द सागर पहुँच गये और यहाँसे ५ या ७ दिनमे चलेंगे । बाईजीके कारण आना पडा । ससारमे अन्यत्र शान्ति नहीं है । अपने पास है । अन्यत्र खोजनेकी चेष्टा व्यर्थ है । आप सबसे पहले जहाँ तक बने प्रत्येक वस्तुसे मोह हटाने की चेष्टा करें और चित्तमे हमेशा शुद्ध परिणमनका अभ्यास करें । बाह्य पदार्थो से स्वात्महित नहीं होगा । अपने ही भीतर शान्ति खोजने का निरन्तर प्रयास करो । अन्य किसी के ऊपर बुरा-भला मानने का अभ्यास छोडो । मोहकी दुर्बलता भोजनकी न्यूनतासे नहीं होगी, किन्तु रागादिके त्यागनेसे होगी ।

सागर

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - १२)

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दशधा धर्म सानन्द हो गया । जब चित्तमे आकुलता हो पुस्तक लेकर बागमे चले गये । वही निर्वाण भूमि है । जो लोग विशेष रूपसे धर्मके सम्मुख नहीं है उनके लिये तीर्थयात्रा और साधुसमागम धर्मके कारण है । उसको सबोने अपना लिया । सानन्द समय तभी जावेगा जब कुटुम्बी जन तथा शत्रु और मित्रोमे समता आ जायेगी । घर छोडने मे कुछ नहीं । हर जगह घर बनाना पडेगा, क्योकि अभी आपकी इतनी कषाय नहीं गई जो अपमान और मानमे समानता आ सके । अभी तो भूमिका ही आरम्भ है । यदि नींव कच्ची होगी तो महल नहीं बनेगा । अत जहाँ तक बने बगीचामे फूसकी झोपडी बनाकर अभ्यास करो । कभी-कभी शाहपुर खतौली जाकर अभ्यास करो । ऊपरी लिबास से अन्तरग की चमक नहीं आती ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - १३)

योग्य दर्शनविशुद्धि

साता और असाता ही इस ससारमे है । दो मे से किसी एकके उदयमे ही यहॉ रहनेकी पद्धति है । इसमे हर्षविषाद करने से यह पद्धति निरन्तर रहती है, निकालने का मार्ग नहीं मिलता । जो महापुरुष इन अन्यतर परिणतिसे हर्षित और विषाद युक्त नहीं होते वे ही इससे छुटकारा पा जाते हैं । मार्ग कहीं नहीं और सब जगत् मे है । चित्तके व्यापार मे थोडे परावर्तनकी आवश्यकता है । निरुद्देश्य या गुमराह रहने से ससारवनसे पार होना अति कठिन है । बिना कुतुबनुमाके दिशाओ का ज्ञान नहीं होता और बिना दिशाज्ञानके अज्ञानान्धकारसे व्याप्त ससारअटवीसे भला कौन पार हो सकता है ? अत यहा वहा या मेरे पास आनेका विकल्प छोडकर एकबार स्वोन्मुख होकर स्वीय रत्न (आत्मज्ञान या रत्नत्रय) की खोज करो । वह अपने ही मे है । आप ही आप शान्त चित्तसे कुछ काल अभ्यास करो । सर्व आपत्तियो का नाश अनायास हो जायेगा । अब तो परकी सगति प्राप्ति और भी अलाभदात्री है । यह भ्रम भगा दो । आप ही मे स्वयभू पद है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ -१४)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

कर्मोदयकी प्रबलता देखकर अशान्त न होना । अर्जित कर्मका भोगना और समता भावसे भोगना यही प्रशस्त है । ससारमे किसीको शान्ति नही । केले के स्तम्भमे सारकी आशा के तुल्य ससारमे सुखकी आशा है ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - १५)

श्रीयुत मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पराधीनताकी श्रद्धा ही ससारका मूल है । यो तो जो कुछ सामग्री हमारे पास है

वह सर्व कर्मजन्य है, परन्तु श्रद्धा वस्तु कर्मजन्य नहीं । उसकी उत्पत्ति कर्मो के अभावमे ही होती है । इसकी दृढता ही ससारकी नाशक है । औदयिक भाव ही कर्मबधके जनक हैं और वे भाव भी केवल जो मोहनीयके उदयमे होते है, वही हैं । शेष कुछ नहीं कर सकते । वचनकी चतुरतासे कुछ लाभ नहीं । लाभ तो आभ्यन्तरकी परिणतिके होने से होता है । जहा जाओ वहीं परिणतिकी मलिनता और निर्मलताके निमित्त है ।

केवल अन्तरङ्गकी बलवत्ता ही श्रेयोमार्गकी जननी है । समवसरणमे असंख्य विभूतियो के रहने पर भी जीव अपने कल्याणके मार्गमे सावधान रहता है और निर्जन स्थानमे रहकर भी शक्तिहीन अकल्याणका पात्र बन जाता है ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - १६)

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका उत्साह प्रशसनीय है । त्याग धर्ममें कायरताको स्थान नहीं । हम तो जैसे है हम जानते है, परन्तु मार्गके अनुयायी है । आप मार्गके अनुयायी बनो । व्यक्तिके अनुयायी बनने मे कोई लाभ नहीं । जहाँ तक बने आभ्यन्तर परिणामो के आधारपर ही बाह्य त्याग करना । परिग्रह रखनेकी तो मै शिक्षा नहीं देता । जितना भी भीतरसे त्यागोगे उतना ही सुख पाओगे । जैनधर्ममे परिग्रहका त्याग बताया है । ग्रहण करने का उपदेश नहीं । कषायो को कृश करने का उपदेश है । जो समय इस विचारमे लगे वही प्रशस्त है । अपनी भूल ही से तो यह जगत है । भूल मिटाना धर्म है । परपदार्थके साथ यावत् सम्बन्ध है तावत् ही ससार है । घरसे सम्बन्ध छोडकर अन्य से सम्बन्ध करना अति लज्जास्पद है । हमारा विचार भी निरन्तर त्यागकी ओर जाता है, परन्तु अन्तरग की मलिनता कुछ भी होने नहीं देती । कहने मे और करनेमे बहुत भेद है। अनेक जन्मके अर्जित कर्मोका एकदमसे दूर हो जाना सम्भव नहीं, अत शातिसे त्याग करो । जितनी शान्ति त्याग करते समय रहेगी उतने ही जल्दी ससारका नाश होगा ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - १७)

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

'प्राणान्त होगये' यह शब्द हितकर नहीं । उसका क्या खेद जो वस्तु नियमसे होनेवाली है । उसका विचार ही व्यर्थ है । उत्तम काममे वासना ही ससारबधनको काटनेवाला आरा है । घरसे बाहर जानेमे मै तो कोई लाभ नहीं समझता । लाभ तो आभ्यन्तर उदासीनतामे है । पराधीनता कदापि सुखद वस्तु नहीं । मै सेवाधर्म नौकरीको अति निन्द्य समझता हूँ । अपनी योग्य व्यवस्थाकी कुटियासे पराधीनताका स्वर्ग भी अच्छा नहीं । परन्तु आपने जो ऐसी कल्पना कर रखी है कि अन्यत्र ही आप कल्याणका पथ देख रहे है । आपकी इच्छा । घर छोडना अच्छा नहीं । वहा तो आपकी आय है उसे भाइयोमे मेल कर व्यवस्थित करे । जब चित्त घबडावे तो दो चार दिन शाहपुर या खतौली जाकर तत्त्व चर्चा करे ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - १८)

श्रीयुत मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अभी आप स्वय ही अपनी भावसन्ततिका अच्छी तरह विचार करो । तब अनायास यह समझमे आ जावेगा कि ये भाव त्यागधर्मके बाधक है । आपके ध्यानमे न आवे तब हम से पूछो । हम अपने अनुभवके अनुसार बतावेगे - समान है या अन्तर है ? क्या करना होगा यह प्रश्न तो ऐसा है जैसे एक नवोढा गर्भवती अपनी सासुसे पूछती है और कहती है - जब हमारे सन्तानोत्पत्ति होगी जगा देना । जितने मलिन परिणाम होगे उतने ही अधिक सग्रहकर बनोगे । निर्मलतामे भयका अवसर नहीं । यदि यह होता तो यह अनादिनिधन मोक्षमार्ग कदापि विकाशरूप न होता । आजकल निर्मलताका अभाव है, अत मोक्ष मार्गका भी अभाव है । परपदार्थमे जिस दिन हृदयसे यह बात दूर हो जावेगी कि ये न मोक्षमार्गके साधक है, न बाधक है उसी दिन मोक्षमहलकी नींव धरी गई समझिये । जब तक वह श्रद्धा नहीं तबतक यह कथा सकल्प मात्रमे मोक्षकी साधक है । आप आओ इसमे हमे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु हमारी तो अन्तरगसे यह सम्मति है जो उस द्रव्यको रेलमे व्यय न करके धर्मध्यानमे व्यय करना श्रेयस्कर है । मनकी शल्यको निष्कासन कर व्रती बनो । वर्णीजी हो चाहे दिगम्बर गुरु हो, कोई भी व्रती बनाने मे समर्थ नहीं । मनकी नि शल्य वृत्ति ही

करणानुयोगके अनुसार भोजनादि करने मे व्रती बना देगी । कायरताके भाव छोडो और सिह बनो । मोक्षमार्गमे वही पुरुष गमन कर सकता है जो सिहवृत्तिका धारी हो । वहा श्रृगालवृत्तिवालो का अधिकार नहीं । आपकी इच्छा हो सो करो, परन्तु जो करो सो अच्छी तरह परामर्श कर करो । व्यक्त करना अच्छा नहीं । यदि इस भयसे व्यक्त करना है कि लोकोंके भयसे व्रत पालेगे तब वह व्रत नहीं ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - १९)

श्रीयुत महाशय लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा कि गृहस्थीमे राग द्वेष नहीं घटते सो ठीक है । किन्तु जबतक अन्तरग निर्मलताकी आशिक विभूतिका उदय न हो तबतक गृहस्थीको छोडनेसे भी रागादिक नहीं घटते । यह नियम नहीं कि घरको छोडने से ही रागादिक घट जाते है । आपने जो अनुभव किया वह एकदेशीय है । मेरा अनुभव है कि घर छोडनेसे वर्तमान कालमे रागादिक बढते है । उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं । हा, यह अवश्य है कि राजमार्ग यही है कि वीतरागमार्गके अर्थ नियमसे परिग्रह त्यागकी आवश्यकता है, परन्तु साथमे यह भी नियम है कि बाह्य योग्यताके अनुकूल ही त्याग होता है । हमारी आत्मा इतनी कायर हो गई है कि निमित्तोके सग्रह ही मे मोक्षमार्गकी कुञ्जी चाहती है। आप घरसे उदासीन हो । बाहर रहो, कौन रोकता है । परिग्रह भी निर्वाहके अनुकूल रखना अनुचित नहीं, ठीक ही है । आप जानते है कि अष्टमप्रतिमा तक परिग्रह रहता है। यदि आपका अर्जनमे उपयोग नहीं लगता, मत करो । परन्तु फिर जैसे आजकलके त्यागी है क्या उस तरहसे विचरने का अभिप्राय है या कुछ परिग्रह रखकर बाहर रहनेका अभिप्राय है, स्पष्ट लिखो । फिर हम सम्मति देगे । आजकलकी हवा विलक्षण है, इसलिये प्राचीन भाषाके ग्रन्थोका ही स्वाध्याय करना कल्याणका मार्ग है । अब मेरा स्वास्थ्य भी प्रतिदिन जरोन्मुख है, किन्तु सन्तोष ही करना लाभदायक है । आप जहां तक बने अन्तरगकी निर्मलताकी वृद्धि करना । उसके लिये एकत्वकी भावना ही कल्याणकी जननी है । कल्याणका मार्ग स्थानोंमे नहीं तथा कपडे और घर छोडनेमे भी नहीं । जहा है वहीं है ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - २०)

श्रीयुत मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला । ससारमे ऐसा ही होता है । जहा तक बने अच्छे होने पर शान्तिसे काल बिताओ । यातायातमे कुछ नहीं होता । मोक्षमार्ग निकट है, दूर नही । परके आश्रयसे वह सदा दूर रहा है और रहेगा । और जिन भाग्यशाली वीरोने पराश्रितकी भावनाको पृथक् किया वे ही वीर अल्पकालमे उसके पात्र होगे । मागने से भीख तक नहीं मिलती, फिर भला मोक्षमार्ग जिससे सदाके लिए ससारबन्धन छूट जावे जैसा अपूर्व पदार्थ क्या दानका विषय हो सकता है ? आप पथ्यसे रहना, इसीमे हित है । आत्मशुद्धिके भी कारण यदि रागादिकी मन्दता होती जावे तो कालान्तरमे यही परिणाम हो जाता है । परन्तु यहा तो कथा ही मे तत्त्वकी प्राप्ति मानकर हम लोग सन्तोषित हो जाते है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - २१)

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

चित्तमे जैसे-जैसे परपदार्थोंकी मूर्छा घटती जायेगी वैसे-वैसे शान्ति उदयरूप होगी । आप जानते हो कि इस रोगसे आप ही दु खी नहीं । जब तक मोहका अभाव नहीं, हीन पुण्यवान् से लेकर महान् पुण्यशाली तक दु खी हैं । सुख न ससारमे है, न मोक्षमे (सिद्धशिलामे) और न कर्मोके सम्बन्धमे है, न कर्मो के अभावमे । सुख तो अपने पास है । और न उसका यह पुद्गल द्रव्य रोकनेवाला ही है । हम ही अज्ञानी होकर उसके विषयमे नाना प्रकार यद्वा तद्वा कल्पना करे उसको अनेक रूप देकर अनुभव करते है । परमार्थसे वह नानारूप नहीं । अखण्ड चैतन्यके साथ अनादिकालसे तन्मय है । परन्तु कामला रोगी जैसे शखमे स्वेतता का तादात्म्य होनेपर भी पीतशखका ही अनुभव करता है उसीके समान निराकुल सुखका आत्माके साथ तादात्म्य होते हुए भी हम आकुलतारूप ही उसे अनुभवका विषय करते है । इस भूलका फल अनन्त ससार ही होता है । अत अब समस्त परपदार्थोकी ओरसे चित्तवृत्तिको सकोच कर आत्माकी और लगाओ । हममें स्वय इस विषयमे दृढता नहीं आई, इसीसे पत्र देते है । अन्यथा क्या आवश्यकता थी ?

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - २२)

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

भइया, पत्रमे सारबोधक अल्प शब्दोमे अभिप्राय आना चाहिये । जितना समय तीन पन्नेके पत्र लिखनेमे लगाया उतना समय यदि निज परिणामोंकी समालोचनामें लगाते तो जैसे-जैसे विकल्पज्वाला शान्त होती जाती वैसे-वैसे शान्ति मिलती । स्वर्ग जिसके हम कर्त्ता बन रहे हैं, यदि चाहे तो उसे हम ध्वस भी कर सकते हैं । जो कुम्भकार घट बना सकता है, क्या उसे वह फोड नहीं सकता ? इसी तरह जिस ससारको हमने सञ्चय किया, यदि हम चाहे तो उसका ध्वस भी कर सकते हैं । मेरी तो यह श्रद्धा है कि सञ्चय करनेमें अनेक कारणोकी आवश्यकता है । ध्वस करनेमे बहुत सरल उपाय है । मकान बनवाने मे बहुत काल और बहुत जनोकी आवश्यकता होती है, ध्वसमे उतना समय और उतने जनोकी आवश्यकता नहीं होती । आप समझदार होकर हमारा आश्रय चाहते हैं यह क्या उचित है ? अपने पुरुषार्थ सम्हालो, स्वप्नदशा त्यागो और धीरतासे काम लो । ज्ञानाभ्यासमे समय लगाओ । लौकिक कार्यों को उदासीन रूपसे करो । ससारको स्वप्नावस्था मानो । परमे इष्ट-अनिष्ट कल्पना छोडो । स्थानविशेष तो जहा अन्तरङ्ग मे स्वात्मस्फूर्ति हुई वहीं है । दूसरे प्राणियोंकी ही कथा मत करो, अपनी कथा करो और देखो कि आज तक मैं किन दुर्बलताओं से ससारमें रुला और उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करो यह मेरी निजी सम्मति है । आप सब लोग एकबार गावके बाहर स्वच्छ स्थानमे ही तत्त्वविचार करे । चाहे शाहपुर हो या सलावा, खातौली आपका गाव हो । केवल भोजन गावमें कर आओ । अनन्तर अपना सारा समय तात्त्विक चर्चा और साथ ही साथ रागद्वेषकी कृशतामें लगाओ । बाहर (हस्तिनागपुर आदि) जाकर भोजनादि सामग्री के फेरमे न पडो । मन चंगा तो कठौतीमें गगा । यदि मनमे शान्ति और पवित्रताका उदय है तब गावके बागमें ही हस्तिनागपुर है । यदि निराकुलतापूर्वक एक दिन भी तात्त्विक विचारसे अपने को भूषित कर लिया तब अपने ही में तीर्थ और तीर्थङ्कर देखोगे । एकबार यथार्थ भावनाका आश्रय लो और इन कलक भावोंकी ज्वालाको सन्तोषके जलसे शान्त करो। इससे अपने ही आप अहबुद्धिका प्रलय होकर सोऽह विकल्पको भी स्थान मिलनेका अवसर न आवेगा । वचनकी पटुता, कायकी चेष्टा, मनके व्यापर इन सबका वह विषय नहीं । आप यही आरोप हमपर करते होंगे, परन्तु हम भी उस जालमें हैं जिसमें आप हैं । फिर हमारी प्रवृत्तिपर ध्यान दो । यदि आप लोग सत्यपथके अनुयायी

हैं तब अपने मार्गसे चले जाओ । यही परमपदका पथ है । बाबाजीसे कहना कि महाराज ! निस्पृह होकर आपको खतौलीका रहना बाधक नहीं । जहाँ सूरज है वहीं दिन है । जहाँ शान्त परिणामी निवास करता है वही स्थान तीर्थ है । जहाँ निमित्त अच्छे हो वे ही तीर्थ हो सो नहीं । जहाँ साधुजन हैं वही तीर्थ है । विशेष क्या लिखे ? यह सर्व लिखना भी हमारे मोहका विलास है । मूर्च्छाकी न्यूनतामें ही स्वात्माकी प्राप्ति हो सकती है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - २३)

श्रीयुत् महाशय लाला मङ्गलसेनजी, दर्शनविशुद्धि

आपने जो ऐसा विचार किया सो सर्वथा उत्तम है । अब थोडेसे जीवनके लिये आप जैसे स्वतन्त्र धार्मिक मनुष्यको पराधीनतामे जीवन बिताना अच्छा नही । उदयाधीन जो होता है, होगा । जो कुछ है उसीमे पुरुषार्थ करो । उसीसे सर्व कुछ होगा। शान्तिका मूल कारण यह है कि चित्तमे जो क्षोभ है उसे त्याग दो और जो कुछ मिलता हो उसीमे सन्तोष करो । और स्वप्नमे भी पराये कल्याणकी भावना न आना श्रेयस्कारिणी है । विशेष क्या लिखू ? आप जहाँ तक बने, सानन्द जीवन बिताइये । स्वप्नमे भी आकुलता न करियेगा । बाबूजीके लिये भी स्वाध्यायका प्रेम होना हितकारी है । लौकिक वैभव आदि कोई भी सुखका साधन नहीं । उनसे शका-समाधान करके आप निश्चय करा दीजिये कि बिना आभ्यन्तर बोधके हित होना अशक्य है । लौकिक प्रभुतावाले कदापि आभ्यन्तर सुखी नहीं हो सकते । वर्तमानमे जितने प्रभुताशाली है वे अन्यन्त दु खी है । सर्वको यह चिन्ता है कि हमारी रक्षा कैसे हो ?

एक मासमे एकबार मौन रखने का अभ्यास करो । ससारमे यावत् परिणाम होते हैं, स्वाधीन होते हैं । यह प्राणी व्यर्थ कर्त्ता बनकर सबको अपने अधीन मान दुखी होता है । अनादिसे कोई भी आजतक ऐसा दृष्टान्त देखनेमे नहीं आया कि एक भी परिणमन किसीने अन्यरूप परिणमाया हो । फिर भी यह जीव मोही होकर ऐसी विपरीत चेष्टा करता है । फल उसका स्वय दु खी होना है । हे प्रभो ! यह सुमति दो कि अब हम इस कुचक्रसे बचे । फिर भी वही बात, प्रभु कौन है देनेवाले ? स्वय इस

विपर्य्ययभावको छोडकर प्रभु बन जाओ । प्रभु जो हैं सो प्रभु नहीं बना सकते; किन्तु प्रभुने जिन परिणामो से प्रभुता प्राप्त की है उन परिणामोका आत्माके साथ तादात्म्यकर हम स्वय प्रभु हो जायेंगे और इतर प्राणियो के कल्याणमे निमित्त-कारणसे 'णमो अरहताण' की जाप्यके विषय होने लगेगे । यह सब होना स्वाधीन है, परन्तु यह प्राणी अनादि कालसे परपदार्थों के साथ अभेदबुद्धिकी कल्पनाके साथ एकीभाव कर रहा है।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - २४)

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । शान्तिका मार्ग आत्मामे है । निमित्त कारणमें शान्ति नहीं । इस तत्त्वके यथार्थ ज्ञान बिना हम दुर्गतिके पात्र हो रहे हैं । ऐसी श्रद्धासे कभी भी हम कल्याणपथके पथिक नहीं हो सकते । लाला शीतलप्रसाद जी से हमारी धर्मस्नेह कहना । खेद इस बातका है कि कई जगह दिगम्बर भाई बलात्कारकी वजहसे श्वेताम्बर हो रहे है । यह बहुत ही अनुचित बात है । क्या वह पूजन करने के पात्र नहीं ? यदि आपका पुरुषार्थ हो तब लाला शीतलप्रसादजीकी सम्मति लेकर एक बार खतौली जावो और लाला बाबुलालजीको समझाओ । वह योग्य व्यक्ति है । सम्भव है इस कार्यको करनेमे योगदान देवे । इस समय आवश्यकता है, अन्यथा वे सर्व श्वेताम्बर हो जावेगे । तब पश्चात्तापके सिवाय कुछ न मिलेगा । मुजफ्फरनगरवालों के हमारे पास कई पत्र आये हैं, परन्तु उत्तर देना उचित नहीं समझा ।

२२-२-३८

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - २५)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । ससारमे शान्तिका मार्ग खोजना हमारी महती अज्ञानता है, क्योंकि मार्ग तो आप मे है, अन्यत्र खोजना रज्जुमें सर्प भ्रान्तिके तुल्य है । अन्य की कथा छोडो । जो एक गावसे दूसरे गाव जाते हैं वह भी मार्ग हमारे ज्ञानमें है ।

यदि न हो तब उत्तरसे दक्षिण जानेवाला दक्षिण क्यो चलता है, उत्तर क्यो नहीं जाता ? ज्ञानमे दक्षिणकी दिशा आती है और उस ज्ञानके अनुकूल चलकर अभीष्ट स्थानमे पहुँच जाता है । इसी प्रकार हमारे आत्मा ही मे मोक्षमार्ग है । हमारी कल्पना जब तक निमित्तो पर रहती है, हम भटकते हैं । जिस दिन आत्मामे आ जाती है उसी समय हम मोक्षमार्गी बन जाते है । इस पर गम्भीर विचार करो । केवल अनादिरुढिपर मत चलो। प्रौढ विवेक करो जो सुमार्ग पर लावे । विशेष क्या लिखे । हमारी दृष्टि अनादिकालसे परमे ही आत्मकल्याण देखकर कुण्ठित हो रही है । अत इसे विवेकरूपी मरसानसे धारदार बना लेना चाहिए । इस प्रान्तमे गर्मी अधिक पडती है, अत आपकी तरफसे जो आवेगा वह इसे सहन करने मे व्यथित होगा । अत सर्वसे उत्तम तो भाद्र मास ही रहेगा । अभी मै यहा हूँ । यहा से शायद जबलपुर जाना पडे । **स्वाध्यायका फल ज्ञान है । किन्तु ज्ञानकी महिमा चारित्रसे है । चारित्रहीन ज्ञानकी कोई विशेष प्रभुता नही ।**

नोट : १ मूर्च्छाका त्याग ही कल्याण का पितामह है ।

२ ईसरी शान्तिका स्थान था परन्तु वहाँ बाह्य निमित्तो की त्रुटि थी ।

३ आपका देश अच्छा है, परन्तु स्थान नहीं ।

शान्तिनिकुज
सागर

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - २६)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । सर्वत्र अशान्तिका साम्राज्य है । शान्तिका राज्य तो निर्मोही जीवोके होता है । यदि आप सुख शान्तिसे जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो परपदार्थके गुण दोष-विवेचक विभावको त्यागो । कोई भी वस्तु अशान्तिप्रद नहीं । हमारी रागादि परणति ही आत्मा को अशान्तिमय बना देती है । उसका त्याग करना ही हमारा कर्तव्य है । पर वस्तु न त्याग की जाती है और न ग्रहण की जाती है । जब हम अपने विभाव रागादि परिणामों को दु खोत्पादक जान सवरमय आत्माकी परिणति

करने मे समर्थ होते हैं, अनायास पर वस्तु का सम्बन्ध छूट जाता है । मै कब कहता हूँ, जो सत्समागम न करो । परन्तु शान्ति व अशान्ति समागममे नही । वह तो जहाँ है वहीं मिलेगी । हमारा विचार कुछ दिन बाद पावापुरकी ओर जानेका है । स्वास्थ्य अच्छा है।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१६-२७)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । सानन्द स्वाध्याय करिये । कल्याण का मार्ग यही है। **राग-द्वेषकी निवृत्ति ही धर्म है** । वह तो काल पाकर होगी । केवल श्रद्धा हो जाना उसके होने मे कारण है । आप जहॉ तक बने अभिप्रायको निर्मल बनाओ । गृहस्थमे आकुलता रहती है वह ठीक है, परन्तु सर्वथा आकुलताका कारण परपदार्थ को मानना हमारी महती भूल है । केवल अनादि कालसे यह जीव परपदार्थो के ससर्गमे अपनी प्रवृत्ति कर रहा है और वही सस्कार आभ्यन्तरमे है जिनके बलसे निरन्तर आकुलित रहता है । विशेष उत्तर अवसर पाकर दूगा । अभी नैनागिर जा रहा हू । फिर शाहपुर जाऊँगा, क्योकि वहा पर बोर्डिग खुलेगा । ग्यारह हजार रुपया यहॉ हुआ है ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - २८)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । स्थानकी सुन्दरता परिणामोकी पवित्रतापर निर्भर है। प्रत्येक प्राणी चाहता है - आत्माको सुख हो और उसीके अर्थ निखिल प्रयास करता है । परन्तु उन प्रयासों का फल कटुक ही होता है । सुखका उपाय आत्माके निर्मल भावोपर निर्भर है । निर्मल भावो का उदय परपदार्थों मे इष्टानिष्ट कल्पनाके अभावमे होता है । हम अपने कुटुम्बी जनको दु ख का कारण मान उन्हें अनिष्ट बतानेमें नहीं चूकते और विरक्त पुरुषो के समागमको सुखका कारण मान इष्ट कल्पना

करने मे अपनी सम्पूर्ण बुद्धि लगा देते है । यह सब भूल ही हमारे कल्याण मार्ग मे विघ्न-स्वरूप है । आप जब तक मुबारिकपुर और तीर्थभूमिमें अन्तर समझकर हेयोपादेयभावसे मुक्त न होगे तब तक शान्ति मार्गसे दूर ही रहोगे । अत चाहे वहॉ रहो चाहे न रहो, परन्तु उस क्षेत्रमे व्यर्थ की कल्पना मत करो । हम स्वय इस दोषसे रिक्त नहीं । परन्तु दोषको दोष ही मानते है । आपके मन्तव्यमे अब तक वह स्थान धर्मध्यानमे विघ्नकर है यह शल्य नहीं जाती, यही महती त्रुटि है । त्रुटिको दूर कर सत्य मगलसेन बनो । व्यर्थके ऊहापोहको त्यागो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - २९)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

असलमे जब तक अपनी कषायपरिणति है तब तक यह सर्व उपद्रव है । कषायके अभावमे कहीं रहो कोई आपत्ति नहीं । कषाय के अस्तित्वमे चाहे निर्जन वनमे रहो चाहे पेरिस जैसे शहरमे निवास करो सर्वत्र ही आपत्ति है । यही कारण है जो मोही दिगम्बर भी मोक्षमार्गसे परान्मुख है और निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गके सम्मुख है । खेद इस बातका है जो मोही जीव स्वसदृश ही निर्मोही को बनाने की चेष्टा करता है । आप मोहको नहीं छोडना चाहता । यहॉ पर क्या सर्वत्र यही बात देखने मे आती है । हम जो लिखते है उसपर अमल नहीं करते, केवल अपनी मलिन परिणतिको त्यागने के भावसे वचितकर छिपाने का प्रयत्न करते है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ३०)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, हमको अबतक मलेरिया मित्रता नहीं छोडता । जो उदय है उसे भोगना ही उचित है । यह कौन कहता है जो गार्हस्थ्य जीवनमे निराकुलताकी पूर्ति नहीं। यदि निराकुलताकी पूर्ति गृहवास मे हो जावे तब कौन ऐसा चतुर मनुष्य इसे त्याग दैगम्बरी दीक्षाका आलम्बन लेता । एक कोपीनके सद्भावमे साक्षात् मोक्षमार्ग

रुक जाता है । किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं जो गृहावस्थामें एकदेश मोक्षमार्ग न हो। यदि गृह छोडनेसे शान्ति मिले तब तो गृह छोडना सर्वथा उचित है । यदि उसके विपरीत आकुलताका सामना करना पडे तब गृहत्यागसे क्या लाभ । चौबेसे छब्बे होना अच्छा परन्तु दुबे होना तो सर्वथा ही हेय है । अभी दूरस्था भूधरा रम्या देख रहे हो । जिन्होने गृहवास छोडकर क्षुल्लक ऐलकतक पद अगीकार किया है वे मोटरो व रेल सवारियो मे सानद यात्रा कर रहे है तथा गृहस्थो से भी विशेष आकुलताके पात्र हैं । तथा जो आरम्भ त्यागके नीचे हैं वे गृहस्थसे अधिक परिग्रह पासमें रखते हुये भी त्यागी बन रहे है । तथा वृत्तिको इतनी पराधीन बना रक्खी है जो विवरण करते लेखनी कम्पायमान होती है । अपना परिग्रह तो त्याग दिया और फिर अन्यसे याचनाकर संग्रह करना क्या हुआ, खेती करने के तुल्य व्यापार हुआ । आप विवेकी हैं, भूलकर पराधीन न होना । सानन्द स्वाध्यायमे काल लगाना । किसी काममे जल्दी न करना । स्वर्गीय चिरोजाबाईजीका कहना था कि बेटा ! अपना परिग्रह छोडकर परकी आशा न करना, अन्यथा करनेसे दु खके भाजन होगे । यह हमे अनुभव हैं ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ३१)

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणके हेतु जो कुछ विकल्प होगा वह अच्छा ही होगा, उसमे अन्यथापन नही । लौकिक सुखके हेतु जो भी विकल्प होगा वह सर्वथा हेय एव दु खदायी होगा । कषायोका निग्रह और कषायो की पुष्टि करने मे जो विकल्प होते है वह भिन्न रूपके है। उनसे आत्माका परिणमन भी अन्य रूपसे कार्य करने मे प्रवृत होगा । चोरीसे धन कमाने और न्याय मार्गसे धन अर्जन करने के परिणामो में महान् अन्तर है । दण्डके निमित्तसे धन देने मे और दानके निमित्तसे धन त्यागमे कितना अन्तर है ? अत कषायोके निग्रह करने के अर्थ जो कषाय है वह बन्धका मूल नहीं ।

का कृ १२, स १९९७

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ३२)

श्रीयुत् महाशय लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हमारा यत्न निरन्तर बाह्य पदार्थो के गुण दोष विचारमे पर्य्यवसान हो जाता है, क्योकि हमारे ज्ञानमे प्राय बाह्य पदार्थ ही तो आ रहे है । अन्तस्तत्वकी ओर दृष्टिको अवकाश ही नही मिलता । दृष्टि अन्तस्तत्वकी अनुभूति कर सकती है परन्तु उस ओर उन्मुख ही नही होती । उन्मुखताका कारण जो सम्यक्त्वगुण सो मिथ्यात्वके उदयमे विकसित ही नही होता । अत यदि कल्याणकी अभिलाषा है तब इन बाह्य पदार्थो के चक्रमे न आवो । हमारी तो सम्मति यह है जो ऐसा अभ्यास करो जो यह बाह्य पदार्थ ज्ञेयरूप ही प्रतिभासे । अन्यकी कथा तो छोडो, जिसने मोक्षमार्ग दिखाया है वह भी ज्ञेयरूपसे ज्ञानमे आवे ।

ईसरी,
का सु २, स १९९७

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ -३३)

योग्य दर्शनविशुद्धि

हमे मलेरिया फिर आने लगा । बाबाजीका स्वास्थ्य गिरता जाता है । उनके रहने से हम राजगृही न जा सके । सागरसे एक रसोइया आया है । आप स्वाध्यायमे चित्त लगाओ । शान्तिका कारण आप ही की परणति है । परकी सहायता बाधक है । अन्तस्थ शत्रुका बल तभी तक है जब तक हम पराधीन है । पराधीनता ही हमे ससारमे बनाये है तथा यही निजस्वरूपसे दूर किये है । अकाट्य सिद्धान्त है जो सर्व पदार्थ अपने अपने चतुष्टय को लिये सनातनसे धारावाही प्रवाहसे चले आ रहे है । हमारी असत्कल्पनाएँ अन्यथा करना चाहती है । उल्लूकी दृष्टिमे दिन रात्रि ही दिख रहा है । पर क्या दिन रात्रि हो जावेगा ? कदापि नहीं । अत इस विवेककी कथाको अपनाओ और अनादिभूल को त्यागो । परक्षेत्र आदिके स्नेहसे विरक्त होओ । हमारा सर्वसे धर्मस्नेह कहना । यहाँ वही हलचल है । देखे क्या होता है ? मोहका प्रकोप है जो विश्व अशान्तिमय हो रहा है । जो आत्मा अपने स्वरूपकी ओर लक्ष्य रखते है और अपने उपयोगको राग-द्वेषकी कलुषतासे रक्षित रखते है वही इस अशान्तिसे दूषित नही होते।

आप जहाँ तक बने ऐसा प्रबन्ध करना जो उत्तरकालमे आपत्तिजनक न हो । परिग्रह लेने मे दु ख, देनेमे दुख, भोगनेमे दु ख, रक्षामे दु ख, धरनेमे दु ख, सडने में दु ख । धिक् इस दु खमय परिग्रह को । मेरी शीतलप्रसाद जीसे दर्शनविशुद्धि ।

पौष, सुदि ६ स १९९८

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१६-३४)

'कर्मकी गति विचित्र है' यह मानना ठीक नहीं । यह सब आत्मद्रव्य का ही विकार है । स्वपरिणामो द्वारा अर्जित ससाग्को परका बताना महान् अन्याय है । कर्मका ही मानना यही तो एकान्त साख्यमत की कल्पना है । अथवा हम ऊपरसे जैनसिद्धान्तके माननेवाले बनते है और अन्तरङ्ग दृष्टिसे एकान्त वासनासे दूषित रहते है।

ससारका अन्त करनेके लिये आत्मद्रव्यको पृथक् करने की चेष्टा करनी ही उचित है । सकल्प-विकल्पकी परम्परा ही तो हमे जगतमे भ्रमण करा रही है । जब तक इनका प्रभुत्व रहेगा, हमे इनकी प्रजा होकर ही निर्वाह करना होगा । हमारी ही कल्पनासे उद्भूत परिणामो के हम दास बन जाते है । उसमें प्रलोभन परद्रव्यकी लालसा है । वह कदापि हमे सुखकर नहीं । स्वाध्यायमे कालक्षेप करना । विश्वकी अशान्ति देख अशान्त न होना । यहाँ यही होता है । नमक सर्वाङ्ग क्षारमय होता है । ससारकी जितनी पर्याय है, दु खमय है । इनमे सुखकी कल्पना भ्रम है ।

गया,
फाल्गुन शु ९, स १९९८

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ३५)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य दर्शनाविशुद्धि

आम अच्छी तरहसे आ गये । अब मत भेजना, क्योकि फसल हो चुकी है और शाहपुर भी मना कर देना । अब यहाँ पर वर्षा होनेसे गर्मी शान्त हो गई । अब हमारा

विचार गुणावा पावापुरकी तरफ जानेका है । वर्षाऋतुमे प्राय जीवोको विशेषतया एक स्थान पर रहनेसे ही शान्ति मिलती है । अब आयुका २/३ भाग तो आपका बीत चुका है । ध्येय निश्चयका कर ही अब अपने कल्याणके मार्ग को वृद्धिरूप करना चाहिए । सर्व जीवोसे क्षमाभाव कहना । अपने कुटुम्बी जनोसे विशेषरूपसे तथा उनसे भी विशेष आत्मीय पुत्रोको क्षमा करना । पुत्रोकी अपेक्षा निज स्त्रीसे निर्मल परिणामो द्वारा त्यागमार्गको सरल करना । आजकल मेरी बुद्धिमे दो ही मार्ग उत्तम है - गृहस्थ-अवस्थामे रहना इष्ट हो तब जलमे कमलकी तरह रहना चाहिए । अष्टमी प्रतिमा तक परिग्रहका सम्बन्ध रहता है, अत यह प्रसिद्ध न करना चाहिए जो हमने सर्व कुटुम्बीजनोको त्याग दिया । जिस दिन पैसासे ममता छूट जावे, घर छोडना श्रेयस्कर है। फिर रेल आदि सवारीमे बैठना अच्छा नही । तथा सानन्द जीवन बिताओ । व्यर्थ विकल्पोमे मत पडो । यही मुख्य मार्ग कल्याणका है । कोई क्या बतावेगा ? अपनी अन्तरात्मासे पूछो । यही उत्तर मिलेगा - जिन कार्यों के करने मे आकुलता हो उन्हे कदापि न करो चाहे वह अशुभ हो चाहे शुभ हो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ३६)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । अब मेरा स्वास्थ्य अच्छा है । खतौलीसे गुडूची का सत आया था । उससे आराम हो गया । लाला हरिश्चन्द्र जी सागर है । सानन्द है। अध्ययन करते है । इन्द्रचन्द्र अच्छा होगा । आप जब आवे दो मासको निश्चिन्त होकर आना । मेरा शरीर अब नीरोग है । भैया ! ससारमे भटकने से कुछ लाभ नहीं । सर्व जगह मनुष्य औदायिक कषायोके अनुकूल ही तो चलते है । केवल घर छोड दिया, बाल बच्चे छोड दिये । क्या इसीसे निर्मल हो गये ? निर्मलतामे कारण अन्तरङ्ग मनोवृत्तिकी विकृति-परिणति न हो । सो तो दूर रहा । त्यागके छलसे अपनी कषाय पुष्ट करना ही तत्त्व रह जाता है । अत आप सर्व विकल्प छोडकर कहीं रहो, यहॉ भी आवो कुछ हानि नही । परन्तु यह प्रसिद्ध न करो जो हमने गृह त्याग दिया । जिस दिन सुअवसर आवेगा, अनायास यह घर छूट जावेगा । तत्त्वसे त्याग निज वस्तुका होता है । घर तो पर द्रव्य है । उसका त्याग कैसा । त्याग चारित्रमे जो विभाव है उसका होता है । सो यदि सामर्थ्य है तब उसे छोडो । तत्त्वज्ञान पूर्वक त्याग प्रशस्त है,

अन्यथा तो कषाय ही का हेरफेर है । नागनाथ कहो या सर्पनाथ कहो । यदि शाहपुरवाले प शीतलप्रसाद जी मिले तब हमारी दर्शनविशुद्धि कहना । मुसिफ सा से भी दर्शनविशुद्धि । श्रीइन्द्रचन्द्र व उनकी मा से आशीर्वाद ।

ईसरी,
जेठ सुदी ६, स २०००

आ. शु. चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ३७)

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जो कुछ काम करो दृढतासे करो, उसमे सफल होओगे । ५० वर्षसे ऊपर हो गये, अबतक भी वही बात । कैसे आत्महित होगा, क्या करे, किसके पास जावे, किस शास्त्रका अध्ययन करे ? सब बातो का उत्तर एक है - आत्मविश्वास करो, न कहीं जाओ, न कही आओ । घर ही मे कल्पवृक्ष है । केवल उसको जानने की आवश्यकता है । अन्यथा बालू पेलते जाओ तेलकी बूद भी नही मिलना है । तत्त्वज्ञान क्या अभूतपूर्व वस्तु है ? जहॉ आत्मबोध हुआ वही तत्त्वज्ञान हो जाता है । यदि आत्मबोध नही तो जगतभर घूम आओ स्वप्नकी दशा है । बिना समझे सकल शास्त्रो का अध्ययन मृगतृष्णा है । अत सब विकल्पो को त्यागो, एक परमात्मशरणमे जाओ ।

सागर,
जेष्ठ सुदि ९, स २००१

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ३८)

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम कटनी आ गये । एक मास रहेगे । श्री मूलशकर जी भी आजकल यहीं हैं । आप अब निश्चित होकर जैसा कहते थे आत्मकल्याणमे समय लगाइये । कहने से कल्याणका लाभ नहीं । करने से लाभ होता है । स्वाध्याय करना ज्ञानका कारण है ।

यथाशक्ति तदनुकूल अपनी प्रवृत्ति करना ही सवर निर्जराका कारण है । यही कारण है जो असयमी देवो की अपेक्षा सयमी तिर्यञ्च के विशेष शान्ति और कर्मो की निर्जरा होती है ।

कटनी,
कार्तिक सुदि ४, स २००१

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ३९)

श्रीयुत महाशय मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । शान्तिका कारण यही है जो परिग्रहसे विरक्त रहना। मेरी तो यह सम्मति है जो बात हम लोग व्यवहारमे लाते है वह अन्तस्तत्त्वमे आनी चाहिये । कल्याण कोई के द्वारा मिलता नहीं और न किसीकी उपासना उसमे प्रयोजक होती है, केवल शुद्ध द्रव्यका अवलम्बन ही उसका उपाय है । अत जहाँ तक बने परकी मूर्च्छा छोडो । सकल्पविकल्पका मिटना ही तो मोक्षमार्ग है । मै उस दिनको पञ्च कल्याणक तिथिके सदृश ही पूज्य मानूँगा । अब आप सर्व तरफ से चित्तको सकुचित करो और वर्षा कालमे जहाँ तक बने मेरे साथ रहिए । अब मै कटनी जा रहा हूँ ।

फाल्गुन बदि १, स २००१

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ४०)

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यदि आत्मीय परणति पर स्थिर हो गये तब कल्याण दूर नहीं । परपदार्थोका सम्पर्क उसका बाधक नही । बाधक अपना ही कलुषित परिणाम है । अत चाहे घरमे रहो, चाहे वनमे रहो, कलुषित परिणाम न हो इसकी चेष्टामे सावधान रहो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ४१)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे । बहुत दिनो से पत्र नही आया सो देना । बनारसवाला रुपया भिजवा दिया होगा । **दानका द्रव्य ऋण है । उससे मुक्त होना ही उत्तम है ।** स्वाध्याय सानन्द होता होगा । ससारमे शान्तिका कारण बाह्य कारणो से परे है । फिर भी उसका साधन है । अन्तरङ्गकी निर्मलता क्या है इस ओर हमारा लक्ष्य नहीं जाता । यद्यपि वह प्रतिसमय हमारे जीवनमे आती है परन्तु हम उसके विरुद्ध अनुभव करते है । जिस समय कोई कषायका उदय आता है, हमारी आत्मा कलुषित हो जाती है । साथ ही उत्तर क्षणमे कुछ शान्ति भी होती है किन्तु हम उस शान्तिको कषाय कृत कार्यका कार्य कल्पना करते है । यही विपर्यय ज्ञान हमारी शान्ति का घातक है । अस्तु, समय पाकर कार्य बन भी जावेगा । पत्रसे स्वास्थ्य समाचार देना । मनोहर वर्णी सहारनपुर गये है ।

जबलपुर, ज्येष्ठ कृ १२, स २००२

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ४२)

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे और शान्तिसे स्वाध्याय करते होगे । निमित्त कारणो की प्रणालीसे कदापि क्षुब्ध न होना । वह प्रणाली सर्वत्र है । ससारमे जहा जाइये वहीं यह अपना साम्राज्य जमाए है । परन्तु धन्य तो वह मनुष्य है जो इसके चक्रमे नही आता । निमित्त बलात्कार हमारा कुछ अनर्थ नहीं कर सकते । यदि हम स्वय उनमे इष्टानिष्ट कल्पना कर इन्द्रजाल की रचना करने लग जावे तब इसे कौन दूर करे ? हमी दूर करनेवाले है । अत सर्व विकल्पो को छोड केवल स्वात्मबोधके अर्थ किसी को भी दोषी न समझना और सब को हितकारी समझना । यदि ये बाह्य दु खके कारण न होते तो कौन इस ससारसे उदास होता, अत किसी भी प्राणीको अपना बाधक न समझ कर ही कल्याण का पथिक होता है । यदि हरिश्चन्द्रजी यात्रासे आ गये हो तब हमारा धर्मस्नेह कहना ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१४ - ४३)

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जैसी कषाय उपशम होती है वैसा ही त्याग होता है । घर को त्यागने से ही मोक्ष होता है यह श्रद्धा कथञ्चित् ठीक है । किन्तु एकान्त अच्छा नही । आप किञ्चिन्तमात्र भी अधीर न हूजिए । परिणामोकी निर्मलतासे आपके सर्व कार्य अनायास सिद्ध हो जावेगे । धीरतासे काम लीजिए । त्यागसे स्वाधीन जीविकाप्रश्न नही । यह तो दुर्बलताका भाव है जो हम पराधीन न होगे । ससारमे स्वाधीन कौन है ? त्यागी परिग्रही कैसा स्वाधीन मेरी समझमे नहीं आता । परिग्रह धर्मका साधक नही बाधक है। अत भादो आने दीजिए, अभीसे चिन्ता क्यो ? बाबाजी का आशीर्वाद

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ४४)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका समाचार आपके चि इन्द्रकुमारसे जानकर प्रसन्नता हुई । आज कल यहाँ पर लाला सुमेरचद जी आये हुए है । परम सज्जन हैं । आपका स्वाध्याय सम्यक् होता होगा । मेरी तो यह सम्मति है जो आप मनोयोगपूर्वक स्वाध्यायमे निज समयको यापन करे और यथाशक्ति रागादि को क्षीण करने का प्रयास करे । घर रहनेमे रागादिकोकी वृद्धि होती है इस भूतको हृदयसे निकाल दो और जब तक इसको नही निकालोगे कभी भी रागादिकसे निर्मुक्त न होगे । घर छोडकर फिर भी तो घर ही मे रहोगे ? अटवीमे रहने की तो योग्यता नही, क्योकि सर्व पापोको पूर्णरूपसे त्याग करने के अभी हम पात्र नहीं, अभी तो उस सकल पापत्यागकी भावनान्यासके ही हम पात्र है। जब तक परिणामोमे परपदार्थके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा है कोई भी त्याग सफलीभूत नहीं होता । चरणानुयोगमे निमित्त कारणो के दूर करने का उपदेश है, क्योकि वे सब बन्धके कारण अध्यवसान भावो के जनक होते है । परमार्थसे देखा जावे तब हम उन्हे हठात् निमित्त बना लेते है । निमित्तका यही अर्थ तो है जो हमारे रागादि भावो मे वह विषय होते है । इसका यह अर्थ तो नही जो निमित्त कारणने रागादिको को उत्पन्न किया । जैसे कोई मनुष्य आतापसे पीडित होकर छायामे बैठ

गया । तब इसका यह अर्थ नहीं जो उसे छायाने बैठाया । वह स्वय उसके पास जाकर बैठ गया । इसी तरह यह स्त्री आदि पदार्थ है । यदि यह जीव रागादिक करे तो वह उसमे विषय हो जाते है । बलात्कारसे रागादिकोके जनक नहीं होते । फिर भी यह मोही जीव उन्हे अनिष्ट मान उनके त्याग करने की चेष्टा करता है । बलिहारी इस बुद्धि की । विशेष ऊहापोह स्वय करो ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ४५)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

गोली आ गई । बाबाजीका स्वास्थ्य अत्यन्त दुर्बल है । भीतरसे सावधान है । ऐसी अवस्थामे परमात्मरूप आत्मा ही का शरण है । अन्यका शरण व्यर्थ है । मेरी तो यह धारणा है जो परकी सहायता परमात्मपदकी बाधक है । आत्माकी केवल अवस्था ही का नाम मोक्ष है । यदि आपमे इतनी समता आ गई है जो परके निमित्तसे हर्ष विषाद नही होता है । तब हमारी समझमे और इससे अधिक क्या चाहते हो ? यदि चाह है तब वह समता नहीं । समताका जहॉ उदय है वहॉ आत्माकी कृत्यकृत्यावस्था हो जाती है, करनेको शेष नहीं रहता । आप सानन्दसे रहो यही चाहते है । दूसरा पत्र शीतलप्रसाद जी का है । उन्हे पहुँचा देना । बल्कि आप एक दिन जाना और उन्हे खूब दृढ करना । आदमी योग्य हैं । गोली आपकी खायी । पर मलेरिया तो न जावे अच्छा है, क्योंकि अब आयु थोडी रह गई है । कोई बाधाजनक नहीं । माघ तक यहीं रहेगे ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ४६)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

बहुत कालसे आपका धर्मसाधनकारक कोई पत्र नहीं मिला । यद्यपि हमको पूर्ण विश्वास है आप धर्मकार्यों मे शिथिल न होगे । तथा शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होगा । आप जानते है, ससार के निवासी जीव ससारकी बात करते है और उसकी वृद्धिका ही निरन्तर प्रयत्न करते है । यदि कोई आपको निर्दोष होनेपर भी दोषी बना

देवे तब भी आपको धर्मकार्यो से विमुख नहीं होना चाहिये तथा उनके आरोपसे उनके प्रति क्षुब्ध भी न होना चाहिए तथा जो कार्य आपका, आपके श्रद्धानका साधक था उसमे अरुचि न होनी चाहिये । प्रत्युत आपत्तियोके आनेपर प्रथमापेक्षया अधिक प्रयास धर्मसाधनमे करना चाहिये । यद्यपि मेरा लिखना असगत हो, क्योकि मै जो कुछ लिख रहा हूँ किवदत्तियो के आधार पर ही तो लिख रहा हूँ, मिथ्या हो परन्तु आपका मेरे पास न आना सन्देहका ही जनक है, अत आप इसका निराकरण पत्र द्वारा शीघ्र करे, जिसमे मुझे सन्तोष हो । एक बार आकर कुछ दिन स्थानका मोह छोडिए । **स्नेह ही तो बन्धन है । संसारकी जननी यही ममता है । इसे त्यागो ससार पार हुआ ।**

जबलपुर,
अषाढ सुदी ८, स २००३

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ४७)

श्रीयुत महाशय लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आप समयसारका पाठ करते है, उत्तम है । कल्याणका मार्ग दरशानेका निमित्त है । उपादानशक्ति तो आत्मामे है । इसके उदय होते ही सर्व आपदाओसे आत्मा सुरक्षित हो जाता है । आवश्यकता हमको आत्मीय परिणतिको कलुषित न होने देनेकी है । कोई ससारमे न तो हमारा शत्रु है और न मित्र है। शत्रुता-मित्रताकी उत्पत्ति हम स्वय करते है । जब एक द्रव्य दूसरे से भिन्न है । फिर हम क्यो न उसको पर जाने । क्यो परको आत्मीय माने । यह मानना मिथ्यात्व है । यही जड ससारकी है । आज क्या अनादिकालसे यह जीव इसी मान्यतासे दुखी है । यह मान्यता जिस दिन छूट जावेगी उसी दिन ससार बन्धन छूट जावेगा । बन्धनका करनेवाला ही बन्धनको मोचन कर सकता है । हम बन्धन करनेवाले परको मानते हैं और छुडानेवाले भी परको मानते है । बन्धन करनेवाले स्त्रीपुत्रादिको मानते है और छुडानेवाले श्री अरिहन्तादिको मानते हैं । इस पर वस्तुकी व्यवस्थामे अपने अनन्त सुखको खो बैठे है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ४८)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम यहा से पौर्णमासी को भोजन कर चलेगे और बडाकर ठहरेंगे । वहा से मधुवन होकर प्रतिपदाको ईसरी पहुँच जावेगे । कठीकी भेजनेकी आवश्यकता नहीं । जलवायु यहा का अच्छा है । परन्तु शहरो मे रहना प्राय रागादिका निमित्त है । अत हम वहाँ आ रहे है । दूसरे बाबा भागीरथजीकी निष्पृहता वहा आनेको प्रेरित कर रही है। वस्तुत जब तक अपनी कषायपरिणाति है तब तक यह सर्व उपद्रव है । कषायके अभावमे कहीं रहो, कोई आपत्ति नही । कषायके अस्तित्वमे चाहे निर्जन वनमे रहो, चाहे पेरिस जैसे शहरमे निवास करो, सर्वत्र ही आपत्ति है । यही कारण है जो मोही दिगम्बर भी मोक्षमार्गसे पराङ्मुख है और निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गके सम्मुख है । खेद इस बात का है जो मोही जीव स्वसदृश ही निर्मोही को बनाने की चेष्टा करता है । आप मोहको नहीं छोडना चाहता । यहाँ पर ही क्या सर्वत्र यही बात देखने मे आती है । हम जो लिखते हैं उस पर अमल नहीं करते । केवल अपनी मलिन परिणतिको त्यागने के भावसे वञ्चित कर छिपाने का प्रयत्न करते है । कहने की अपेक्षा जानना कठिन है और जानने की अपेक्षा लिखना कठिन है और सबसे कठिन अन्तरङ्गसे उसे करना है । करने का नाम काय, मन, वचन व्यापारसे करना समझते है । असलमे उस भावका न होना है । उपचारसे त्यागव्यवहारमे परिणत हो जाता है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ४९)

योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हम आपके पत्रका प्राय उत्तर देते है । अभी गर्मीका प्रकोप बहुत है, अत आषाढ बदिमे जाऊँगा आगमज्ञान मुख्य वस्तु है । परपदार्थका ज्ञाता दृष्टा रहना ही तो आत्माका स्वभाव है और उसकी व्यक्तता मोहके अभावमे होती है । अत आवश्यकता उसीके कृश करने की है । यथार्थ ज्ञान तो सम्यग्दर्शनके होते ही हो जाता है । इष्टानिष्ट कल्पना चारित्रमोहके उदयसे होती है । उसका अभाव होना देशसयमादि गुणस्थानोके क्रमसे होगा । आप लोग एकदम चाहते हैं कि हमारे वीतरागकी शान्ति आ जावे सो मेरी समझमे नहीं आता । पर्यायके

अनुकूल ही शान्ति मिलेगी । हापटा मत मारो, शनै शनै सब होगा । विशेष क्या लिखे - तात्त्विक बात तो थोडी है, विस्तार बहुत है । मेरी तो यह श्रद्धा है जो विपरीत मोहके जाने के बाद जो आत्मानुभव सम्यग्ज्ञानीके होता है वही क्रमसे मोहादिकके अभाव होनेपर कैवल्य पदरूपमे परिणमन हो जाता है । अगर आपकी श्रद्धा सत्य है तब आप अपने को ससारी मत मानो, क्योकि सिद्ध पर्यायके सम्मुख हो । आशा है, अब सब व्यग्रताओको छोड जो पर्याय उत्पन्न हो गयी है उसे वृद्धिरूप करने की चेष्टा करोगे । कदाचित् यह कहो, सम्यग्दृष्टी भी तो निन्दा-गर्हा करता है । मेरी इसमे यह श्रद्धा है जो मम्यग्दृष्टिके मोहके उदयसे निन्दा-गर्हा होती है । वह अहम्बुद्धिसे उसका कर्त्ता नही । निन्दा-गर्हा अनात्मीय धर्म है । अनात्मीय धर्ममे उसके उपादेय बुद्धि नहीं। इसका यह अर्थ नही जो मै स्वच्छन्दताका पोषक हूँ । स्वेच्छाचारिता तो सम्यग्ज्ञानीके होती ही नही, क्योकि आत्मख्यातिमे जहाँ प्रतिक्रमणको विष कहा है वहॉ अप्रतिक्रमण अमृत नहीं हो सकता ।

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ५०)

योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणका कारण अन्तरङ्गकी निर्मलता है, न घर का छोडना है और न १२ मासका मौन है । परन्तु आपकी बात आप जाने । शीघ्रतासे काम करना परिपाकमे उत्तम हो तब तो ठीक है, अन्यथा पश्चाताप होता है । यथापदवी कार्य अच्छा होता है। आवेगमे कार्य करना ठीक नहीं । हमारा स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु योग्य रीतिसे अभी कुछ नहीं कर सकते ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ५१)

श्रीयुत् मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

उदयाधीन शान्ति है । किन्तु परिकर जो शान्ति चाहता है, अशान्त बना देता है। परन्तु जिसे जैनधर्मकी श्रद्धा है उसे शान्तिका ही लाभ है । औषधि परमात्माका

स्मरण है । इससे बडी कोई औषधि हो तो टेलीफोन द्वारा अविलम्ब भेजो । चिन्ता न करना । शक्ति आने बाद उत्तर दूँगा ।

आ. शु. चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ५२)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । कल्याणका मार्ग रोकनेवाला कुटुम्ब नही । आपकी जो इच्छा सो करो । इसमे कौन प्रतिबन्धक हो सकता है परन्तु कुटुम्बपर दोषारोपण कर त्याग करना अथवा त्याग कर उसकी शल्य रखना महान् अनर्थकी जड है । सर्व पदार्थ अपने-अपने चतुष्टयसे परिणमन कर रहे है । उनपर किसीका अधिकार नहीं, जो अन्यथा रूपको परिणमावे । व्यर्थ के विकल्पजालसे अपने को बाँध लेना उत्तम पुरुषको उचित नहीं । हमारी शक्ति ज्वर आनेमे दुर्बल हो गई है, अत विशेष पत्र नहीं लिख सकते । आप अभी न भेजना । हम यहाँ आषाढ बदि को ईसरी जावेगे ।

हजारीबाग

आ शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ५३)

श्रीयुत लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हम एक पत्र इसके पहिले दे चुके है और जो पत्र आता है उसका उत्तर भी देते है । परन्तु आप लोगों का लक्ष्य उस तरफ नहीं जाता । केवल निमित्त कारणोकी उत्तमता और जघन्यता पर ही विचार करके सन्तुष्ट हो जाते हो। घरमे रहनेसे बन्ध और बाहर रहनेसे निर्जरा यही चर्चाका विषय रह गया है । अचिन्त्य शक्तिशाली आत्माको इन पर पदार्थों के सहवाससे इतना हम लोगोने दुर्बल बना दिया है जो बिना पुस्तकके हम स्वाध्याय नहीं कर सकते, बिना मन्दिर गये हमारा श्रावकधर्म नहीं चल सकता, बिना मुनिदानके हमारा अतिथिसविभाग नहीं बन सकता, बिना सत्समागमके हमारी प्रवृत्ति नहीं सुधर सकती । कहाँ तक लिखे - यावत् कार्यो मे निमित्तका बोलबाला है । अत कल्याण करना है तब अपनी ओर देखो और

अपने ज्ञायकभावकी स्वच्छताको कलकसे बचाओ । अनायास कल्याणमार्गके पात्र हो जाओगे । विशेष पत्र देना समयका दुरुपयोग करना है ।

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ५४)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आप सानन्द होगे । दशधा धर्ममे अच्छी प्रवृत्ति रही होगी । परमार्थसे तो यह निवृत्तिरूप है । परन्तु यह मोही जीव उसे व्यवहारमे प्रवृत्तिरूप मानता है तथा मन्द कषायके कार्यो को धर्म का व्यवहार करता है । धर्म तो स्वरूपमे लीनताका नाम है । भगवान कुन्दकुन्द स्वामीने कहा है -

सपज्जदि णिव्वाण देवासुरमणुयरायविहवेहि ।
जीवस्स चरित्तदो दसणणाणपहाणादो ।।
दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्ष: ।
ततएव सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवल्केशरूपो बन्ध: ।।

इससे इष्ट फलवत्ता होने से वीतराग-चारित्र उपादेय है और सरागचारित्र हेय है । वस्तु मर्यादा यही है । वह चारित्र क्या पदार्थ है सो स्वामी कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं-

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोह-क्खोहवइहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।।

अर्थात् स्वरूपमे आचरण का नाम चारित्र है । इसी का अर्थ स्वसमयप्रवृत्ति है और यही वस्तु स्वभावपनेसे धर्म है । इसीका नाम शुद्धचैतन्य का प्रकाश है और यथावस्थित आत्मगुणपनेसे साम्यशब्दसे कहा जाता है । और यही दर्शन-चारित्र, मोहनीयके उदयसे जायमान समस्त मोह और क्षोभके अभावसे अत्यन्त निर्विकार जो जीवका परिणाम है, साम्यशब्दसे कहने मे आता है, अत दश-लक्षण पर्वमे जिन गुणोकी हम पूजा करते हैं इसीके अन्तर्गत है । यह धर्म मुख्यरूपसे निर्मोही जीवका परिणाम है और फिर इसकी मध्यम वृत्ति, निरीह वृत्ति दिगम्बर साधुओंके होती है । उससे नीचे दर्जेमे पञ्चम गुणस्थानवालो के होती है । चतुर्थ गुणस्थानवालो के उसकी श्रद्धा है । प्रवृत्तिमे वह धर्म नहीं । मिथ्यादृष्टियोके तो उसकी गन्ध ही नहीं । अत यह बात अपनी आत्मासे पूँछते है कि हमारे कौनसा भाव है केवल बाह्य मन-वचन-

कायके व्यापारसे उसका सम्बन्ध नहीं । यह तो उसके अनुमापक है । वह वस्तु तो निर्मल आत्मामे उदय होती है । जिन्हे आत्मकल्याण करना है वह इन क्रोधादिक कषायोको कम करने की चेष्टा करे । आप लोग ससारमे भयभीत हैं । परन्तु अभी निमित्त कारणो की योजनामें ही मुग्ध हो रहे हैं । अस्तु, कल्याण तो अपनी आत्माके ऊपरका भार उतारनेसे ही होगा । वह भार केवल शब्दो द्वारा दशधा धर्मके स्तवनादिसे नहीं उतरेगा किन्तु आत्मामे जो विकृत औदयिक भाव हैं उन्हे अनात्मीय जान त्यागनेसे होगा । विशेष हमारा स्वास्थ्य गत १८ माससे इतना दुर्बल हो गया है जो उपदेश करता है, - अर्हत्परमेष्ठी का ही स्मरण करो । इन लौकिक मनुष्योका सम्पर्क छोडो ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ५५)

श्रीमान् लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । मेरा तात्पर्य यह है जो आप नि शल्य होकर कुछ दिन घर ही स्वाध्याय करो और जो उदयमे है उसको आनन्द से भोगो । पुत्रकी शादी हो गई । उसकी तो आपको चिन्ता नहीं । चिन्ता करने से होता ही क्या है ? मेरा तो यह विश्वास है कि आत्मकल्याणकी भी चिन्ता न करो, कार्य करते जाओ । मनुष्य जन्ममे सयमकी योग्यता है इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य जन्म पाया और संयम हो गया । यदि कारणकूट मिल जावे, हो सकता है । कौन ऐसा मनुष्य है जो सयमकी अभिलाषा न करता हो ? परन्तु कहनेमात्रसे सयम नहीं होता । अनुकूल कारणो के सद्भावमे सयमका उदय होना दुर्लभ नहीं । अत जहाँ तक बने मूर्च्छाको छोडना और विशेष विकल्प न करना । हमारा तो आपसे प्राचीन परिचय है । यदि आपमें कोई दोष है तब आप मर्यादासे अधिक व्यय करते है । इस पर आप विचार करे । खेश आ गया। नर्म्मावाडीका होता तब अच्छा था । यह भी अच्छा है । परन्तु अब न भेजना । जब कभी नर्म्मावाडी की रुई उत्तम मिल जावे तब बनवा लेना । जल्दी न करना ।

जबलपुर
पौष बदि ७, स २००३

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ५६)

श्रीयुत् लाला मगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बहुत दिन हुए आपका पत्र आया था । वह आज मिला । आपने लिखा, मुझे भेदज्ञान हो गया । अब और क्या चाहते हो ? इसकी महिमासे आपके सब मनोरथ सिद्ध हो जावेगे । अब विकल्प छोडो । इसी के अर्थ सकल प्रयास है । शास्त्रस्वाध्यायका इतना ही फल है । अब तो जितने अश निवृत्तिके है, उपयोगमे आना चाहिये । हमारा स्वास्थ्य अब प्रतिदिन क्षीण दशाको प्राप्त हो रहा है । एक बार इच्छा थी जो उस प्रान्तमे आवे । परन्तु बाह्य कारण अनुकूल नहीं । प्रथम तो हर स्थानमे हिन्दु-मुसलमानो के झगडे हो रहे है तथा लोगो मे अशान्ति बहुत है । अन्नकी प्राप्ति दुर्लभ हो रही है । ऐसी दशा जीवो के पापोदयसे होती है । उसकी निवृत्ति शुभ परिणामो से होती है । उस ओर जीवोका लक्ष्य नहीं । अथवा यो कहिये, ससारमे यही होता है । अत जिन्हे इस चक्रमे न फसना हो उन्हे परपदार्थसे ममता त्याग देनी चाहिये। निर्मोही जीव सुखके भाजन हो सकते है । मोही जीव सर्वदा दु खी रहेगे । उन्हे सुखका मार्ग समवसरणमे भी नहीं मिल सकता । सूर्योदयमे घूघू (उल्लू) को नही दीखता । सूर्यके विकाशमे नेत्रवान् ही देखता है, यह ठीक है । फिर भी यह नियम नहीं कि देखे ही ऑख बन्द कर ले तब कोई क्या करे ? विशेष क्या लिखे - हमारा विचार कुछ दिन द्रोणागिरी रहने का है ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ५७)

लाला त्रिलोकचद्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके यहॉ बडे-बडे विद्वानोका समारोह हुआ । उनके सम्पर्कसे जो लाभ हुआ होगा वह तो आप ही जाने । हम तो इतना जानते है कि जितनी मूर्च्छा घटी होगी उतना ही आनन्द मिला होगा । इस पत्रको मुवारिकपुर भेज देना ।

सागर,
वैशाख बदि ३, स २००४

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ५८)

श्रीयुत् महाशय मंगलसेन जी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आत्मलाभसे उत्कृष्ट लाभ नहीं । यदि वह हो गया तब अब न तो हमारी आवश्यकता है और जिनसे आपको आत्मलाभ हुआ उनकी आवश्यकता है । अब तो आवश्यकता उसे स्थिर करने की है । एतदर्थ मूर्च्छा त्यागो। परसे ममता त्यागो । सानन्दसे जीवनयापन करो । यातायात छोड दो । जिससे आकुलता न हो वह करो । स्वाध्यायका फल एतावन्मात्र ही है । मुझे हर्ष इस बातका है जो आप लोगोका काल तत्त्वविचारमे जाता है। श्रीमान् त्रिलोकचन्द्रजीसे मेरी दर्शनविशुद्धि कहना । तथा लाला हुकमचन्दजी आदिसे दर्शनविशुद्धि कहना । वहाँ पर हमारा समयसार हस्तलिखित रक्खा है । उसे समगौरया श्रीमान् प मुन्नालालजीके हाथ भेज देना ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ५९)

श्रीयुत महाशय मगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप जो लिख रहे है, लौकिक शिष्टाचारकी यह प्रणाली है । परमार्थसे विचारो, शास्त्रीय शब्दोके प्रयोगको ही जब हम एकान्तसे विचारते है तब जो पर पदार्थोमे हमारी ममता है वही तो दुखकी जननी है और भी गहरेपनसे विचारो तो परको छोडो । जो हमारी निज शरीरमे आत्मबुद्धि है वह तो परमे ममताका कारण है । शरीरको भी छोडो । शरीरमे आत्मीय बुद्धिका कारण अन्तरङ्ग मिथ्यात्व है । वही हमारा प्रबल शत्रु है । यदि वह न हो तब हम शरीरको पोषण करते हुए आत्मीय न माने । अत शत्रु पर विजय करना ही हमारा कर्त्तव्य होना चाहिये । जिसके एकत्व भावना हो गई उसके सर्व धर्म हो गया । धर्म कोई बाह्य वस्तु नहीं । अन्तरङ्गमे कलुषित भावका न होना यह भाव कब होते है, जब अन्तरङ्ग अभिप्राय अति निर्मल हो जाता है । उसके लिये केवल अपनी तरफ देखना ही बहुत है । परकी तरफ देखना ही ससारका कारण है । आत्माका ज्ञान इतना विशद है जो उसमे निखिल पदार्थ प्रतिबिम्बित हो सकते है । परन्तु हमारे देखनेमे राग, द्वेष, मोह नहीं होना

चाहिये। अन्तरङ्गमे न तो आप मुझे चाहते है और न मै आपको चाहता हूँ। बहिरगसे आप हमारे और हम आपके यही बात मोही पदार्थोमे लगाना। जहा एक तरफ मोह है वहा दूसरी तरफ उपचारसे जो चाहो सो कहो। जैसे भगवानमे दीनदयालु पतितपावन आदि अनेक आरोप प्रतिदिन लोग करते ही है।

ज्येष्ठ सुदी ४, स २००४

आ. शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६०)

श्रीयुत् महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। आप जानते है हमारा आपसे धार्मिक स्नेह है और जबतक हमारे व आपके यह मोह है वहा ही यह ससार बन्धन है। जिस अन्तरङ्गमे यह वासना मिट जावेगी, न मै आपका और न आप मेरे। हम और आप तो अभी उस पथके श्रद्धालु है, चर्यामे आनेसे आपसे आप ममता मिटती जाती है। समता आती जाती है। एक दिन न रहेगी ममता न चाहेगे समता। न रहेगा बास न बजेगी बासुरी। जो उपयोग शिष्टाचारमे जाता है वह अपने ही स्वरूपके सभालने मे जावे तब परकी अपेक्षा न रक्खो। हम तो स्वय इस जालमे फसे है परन्तु आपको हितैषी जान यही कहेगे आप इसमे मत फसो। यदि हमारी सम्मति मानो तब परमेश्वरमे प्रेम भी त्यागो। भक्ति करो यह भी कमजोरीका उपदेश है। मोहके सद्भावमे ही यह होता है। परन्तु तात्त्विक दृष्टिसे सम्यग्ज्ञानी कुछ नहीं करता। इसका अर्थ यह नही जो उसके भक्ति नही, परन्तु उसके अभिप्रायकी वही जाने। मेरा तो यह विश्वास है - कोई किसी की क्या जाने। अपना २ परिणमन अपने २ मे हो रहा है। व्यवहार की कथा विचित्र है।

जेठ सुदि ६, स २००४

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ६१)

श्रीमान् लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आपका आया । वृत्त जाने । कायरता ही मोक्षमार्गकी घातिका है । इसे स्थान मत दो । पर का आश्रय त्यागो । स्वाधीन बनो । जब हम और आपको यह निश्चय हो गया जो सब द्रव्य अपने-अपने रूप परिणमते है तब आवश्यकता नहीं जो हम किसीकी अनुचित प्रशसा करे । भगवान वीतराग सर्वज्ञ हैं तथा मोक्ष मार्गोपदेशी हैं। मोक्षमार्ग क्या, ससारमार्गके भी उपदेष्टा हैं । इतना ही भगवान का स्वरूप है । इतर व्यवहार करना क्या उचित है ? परन्तु मोही जीव जो न करे सो अल्प है । आपको कल्याण करना इष्ट है तब वह प्रवृत्ति जो अनादिसे अपना रहे हो, त्यागो । शूरवीर बनो । पर पर ही है । अपना अस्तित्व जो परके सम्बन्धसे विजातीय हो रहा है उसको छोड़ो । दृढप्रतिज्ञ बनो । यही ससार को छेदने का उपाय है । अपनी सत्ता को अपनाओ ।

अषाढ वदि ५, स २००४

आ शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६२)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

अब मै यहीं रहूँगा । आप स्वाध्यायमे सत्समागमकी अपेक्षा विशेष प्रवृत्ति करिये । सत्समागम आस्रव का कारण है और स्वाध्याय स्वात्माभिमुख होनेका उपाय है । सत्समागममे प्रकृति विरुद्ध भी मनुष्य मिल जाते है । स्वाध्याय मे इसकी सम्भावना भी नहीं । इसकी समानता रखनेवाला अन्य कोई नहीं । चाहे करके देख लो । इसकी अवहेलनासे ही हम आज पद पदमे तिरस्कृत होते है, दर-दर गिडगिडाते हैं ।

सागर,
अषाढ शु ६, स २००४

आ शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६३)

श्रीयुत् लाला मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे । स्वाध्याय सानन्दसे होता होगा । कल्याण का मार्ग तो आभ्यन्तर कषायके अभावमे है । यह स्वाध्याय सहकारी कारण है ।

मागर,
श्रावण शुक्ला ११, स २००४

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६४)

श्रीयुत महाशय लाला मङ्गलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । समाचार जाने । देखो, यह जो हमारी आपकी कल्पना है जो परसे कल्याण होता है, निमित्ताधीन होती है और मोहज है । अत श्रद्धामे तो यह रखना चाहिये कि जिस दिन यह कल्पना मिट जायगी उस दिन क्या होगा ? यह वही कह सकते है जिसके कल्पना मिटेगी । वही जानेगा भी । पहले तो हम और आप आगमके बलसे कहते है, अनुभव होना अशक्य है । हॉ, जब किसी विषयका राग होता है और उसका विषय सिद्ध होने पर वह राग मिट जाता है उस समय जो शान्ति आती है, उससे अनुमान कर सकते है जो सम्पूर्ण मोहाभावमे अखण्ड शान्तिका अनुभव होता होगा । अथवा वहा अनुभवका क्या काम है । कोई किसी प्रकार का विकल्प ही नहीं । हमारी तो यह सम्मति है जो इन विकल्पोको छोडिए । शास्त्रोमे जो प्रक्रिया इसकी लिखी है उसी उपायका अवलम्बन कर परिणति स्वच्छ बनानेका प्रयत्न करिये । अथवा आगम की कथा छोडिए । जिस जिस कार्यके करनेमे सक्लेश होता है वे सब कार्य त्यागनेकी चेष्टा करिये । हम तो एक यही उपाय कल्याणका समझते है । मै कुछ नहीं जानता, फिर भी लोग मुझे एक जाननेवाला मानते है । न जाने इसमे कौनसा हेतु है ? आजकल वर्णी मनोहरलालजी यही है । बहुत सुबोध है । मेरी तो यह सम्मति है कि अब आप थोडे दिन शान्तिसे स्वाध्याय करो और जो पास मे है उसीके अनुसार व्यय करो । आपके अनुकूल व्यय उत्तम होता है । समयकी बात है जब जैसा आवे सन्तोषपूर्वक बिताना चाहिये । मैं भाद्र मास तक यही रहूँगा । एक बार बरुआसागर जानेका विचार

है । अभी, ग्रामके बाहर हू । आपका विचार क्या भादोमे आनेका है ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ६५)

महानुभाव इच्छाकार !

मै आपको पुण्यशाली समझता हूँ जो तत्त्वज्ञ महाशयोके सहवास मे आपका समय जाता है । यद्यपि आत्मा स्वभावत अद्वैत है । आत्मा ही क्या सभी वस्तु अद्वैत है । और कल्याण-लाभ के लिये यह अद्वैत भावना अत्यन्त उपयोगिनी है । एकत्व भावना का यही तत्त्व है । परन्तु मोह मे हमारी आत्मा इतनी पतित हो चुकी है जो हम स्वय अद्वैत होकर जगतको अपना मानने का प्रयास करते हैं । 'ममेद अस्याहम्' यह मेरा है मै इसका हूँ इत्यादि विकल्पोमे उलझकर ससारके पात्र बने है । तथापि अहमेद इत्यादि कम्मे णोकम्मम्मि इत्यादि - पाठ हम पढते है । परन्तु उस रूप होने का प्रयत्न नहीं । केवल सम्यग्दर्शन की कथा कर सन्तोषामृत का पानकर तृप्ति कर लेते है और वह भी कथामे ही रह जाता है । यदि परीक्षा करना हो तब जो तत्त्व का विवेचन कर रहा है उसके प्रतिकूल शब्दो का प्रयोग करके प्रत्यक्ष उसके भावोका निर्णय कर लो । अस्तु, इसमे क्या रखा है ? जो हो, आप लोग जाने या प्रभु जाने । हम ससारको सुलझानेका उपदेश देते है, परन्तु स्वय नहीं सुलझते । ब्रह्मचर्य आश्रम व्यवस्थित चलता है और चलेगा, यह तो ठीक है, परन्तु त्यागाश्रम ठीक चलता है इसकी कथा भी नहीं । यह क्या बात है ? उस प्रान्त को पाकर यदि इस धर्म की पुष्टि न की तब तो मै यही समझा जो अभी उस आश्रम की नीव पक्की नहीं । अत आवश्यकता त्यागधर्म की है । इसके होनेसे एक ब्रह्मचर्याश्रम क्या, सभी धर्मके कार्य निर्विघ्न चल सकते हैं । इसके बिना लवण बिना भोजन की तरह कोई भी कार्य की पूर्ति नहीं । मेरा यह विश्वास है कि जो **भोगी ही योगी हो सकता है । बिना भोग के योग नहीं । मुख्यता सुखी जीव ही काल पाकर वीतरागी होता है** । यह उत्सर्ग नहीं, अपवाद भी नहीं । दु खमे भी भावना अच्छी होती है । प्राय तीर्थङ्कर स्वर्गसे ही इस भूलोकमे अवतीर्ण होते है । किन्तु नरकसे भी आकर तीर्थङ्कर होते हैं । अत कहने का तात्पर्य यह है जो उस प्रान्तके मनुष्य भोगी बहुत है । अब उन्हे उचित है जो त्यागधर्मको अपनावे । बहुत दिन गाढी दालमे घी का स्वाद चखा, मधुररसका स्वाद लिया,

पुण्यफलको भोगा । आजन्मसे आज तक यही किया । परन्तु इससे शरीर ही को पुष्ट किया जो पर वस्तु है और परसे ही पुष्ट किया । गारा, चूना, ईंटसे मकान ही बनता है, इन्द्र-भवन नही बन जावेगा । इसमे हमारा कोई अपराध नहीं । किन्तु उसको अपना माना यही हमारी महती अज्ञानता है । अब इसे त्याग देवे, अतएव त्यागधर्म की आवश्यकता है। अत आवश्यकता हमको इस बातकी है जो बहुत दिन पर को अपना माना, आजन्मसे यह कार्य किया, अब इस चोट्टापन को त्याग कर अपने को अपनावे जिससे ससार की यातनाओके पात्र न हो । इसके होते आपका जो आश्रम है वह अनायास चलेगा । अथवा आपका न आश्रम है और न आप आश्रमके हैं । यह व्यवहार भी न रहेगा । अथवा आपकी उसमे जो निजत्व की कल्पना है तब इस धर्म की महिमासे वह भी विलीन हो जावेगी । वह क्या विलीन हो जावेगी, श्रीगोमट्टस्वामी यात्राके जानेका विकल्प है वह भी शान्त हो जावेगा । जो कुछ आपके पास है उसे त्यागो और ब्रह्मचर्याश्रमको देकर अपरिग्रही बनो । श्रीगोमट्टस्वामी जाकर क्या इससे अधिक निर्जरा सम्पादन कर लोगे ? सम्भव है आपकी मण्डली इस वाक्यसे असन्तुष्ट हो जावे। परन्तु मेरा जो विश्वास है, त्यागमे निर्जरा है और वन्दनामे पुण्य है । आजकल अष्टान्हिका पर्व है । देव लोग नन्दीश्वर जाते है । पुण्यलाभ सम्पादन करते है । यदि हम चाहे तब सयम धारण कर उनसे अधिक लाभ ले सकते है । किन्तु सयम पाले तभी । अत आप वहॉ जो आवे उससे यही उपदेश देना जो ब्रह्मचर्यका पालन कर देवोको मात करदो । त्यागधर्मका व्याख्यान करना यह पत्र सुना देना, यह आकाक्षा न करना जो हमारे आश्रमको यह बलाय मिले । सर्व मडलीसे यथायोग्य ।

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६६)

योग्य इच्छाकार

हम तो शान्ति उसको समझते हैं जहाँ फिर उस विषयका विकल्प ही न उठे । हम तो अब तक ऐसे शान्ति रसास्वादनसे वञ्चित हैं । हॉ, श्रद्धा अवश्य है और यह विश्वास है कि काल पाकर शान्ति भी मिलेगी । आप लोगोके चक्रमे आ गये । यह आपका दोष नहीं हमारी मोहकी दुर्बलता है । अन्यथा कोई कुछ नहीं कर सकता । आत्मा सर्वत्र स्वतन्त्र है परन्तु मोही जीव निरन्तर पर पदार्थोंमे दोषारोपण करता है ।

कल्याणका मार्ग कहीं नहीं आप ही में है । यदि आप इसपर अमल करोगे तो अल्पकालमें सुखके पात्र हो जाओगे । यदि मोहके आवेगमें आकर इतस्तत भ्रमण करोगे तब जैसे वर्तमानमे हो वहीं रहोगे । केवल गाँठका द्रव्य खो दोगे । हमारी तो यही सम्मति है कि किसीके चक्रमे न आओ, अन्यथा जो ससारी जीवोंकी गति है वही गति होगी ।

भाद्रपद सुदी १३, स २००५

आ शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६७)

योग्य इच्छाकार

आत्मा अनादिसे अनन्त ज्ञायक है । परद्रव्यसे भिन्न स्वरूपसे अभिन्न होकर भी अनादिसे कर्मबन्धके साथ यह दशा हो रही है जो प्रत्येक प्राणीको अनुभूत है । कौन मनुष्य दु ख चाहता है परन्तु कर्मबन्धका ऐसा विलक्षण प्रभाव है जो परको निज मान जगत रागद्वेषमय हो रहा है । हाँ, ऐसे भी विरले प्राणी हैं जो इस चक्रमे होकर भी शान्त हैं । इसका आश्चर्य नहीं । भीतरकी निर्मलतामे वह शक्ति है जो इन सब विरुद्ध समागमके सद्भावमे भी जिसके प्रभावसे जलमें कमलवत् निर्लेप रहते हैं वह प्राणी इनमे है । कुछ उनका देश भिन्न नहीं । कहना कुछ शान्तिका उत्पादक नहीं है । शान्तिका उदय अन्तरगमे स्वाभाविक परिणामसे होता है । मोहके अभावमें आत्मा विकृत भावोसे रहित हो जाता है । यही कैवल्यावस्था है । इसकी महिमा कुछ पदार्थोके आभाससे नहीं और न प्रतिभास सुखका कारण है । अत हमको आवश्यकता विकृत भावोसे बचनेकी है । यदि विकृतभाव औदयिक होवे, होने दो । उसमे निजत्व कल्पना न करो । इससे अधिक हमार पुरुषार्थ नहीं । बड़े-बडे पुरुष भी इससे अधिक क्या करते हैं ? कुछ नहीं, केवल अभिप्रायकी निर्मलता है जो बुद्धिपूर्वक सर्व दु खापहारिणी है । अत उसको निर्मल बनाना ही हमारा कर्तव्य होना चाहिये । स्वप्नमे भी किसीको अन्यथा नहीं मानना चाहिये और न किसी प्राणीको शत्रु मानना चाहिये, चाहे कोई कितना ही अपकार करे । उसके प्रति हमारा विषादरूप परिणाम न होना चाहिये और चाहे कोई कितना भी उपकार करे उसके प्रति हर्षभाव न होना चाहिये । हर्ष-विषाद दोनो ही परिणाम विकृत हैं । मोहसे इनमें उपादेय और अनुपादेय

बुद्धि होती है । दोनो ही ससारके जनक हैं । हमको तो कुछ विशेषता प्रतीत होती नहीं, जिससे उसके विषयमे हम क्या कह सकते हैं ? मेरा यह विश्वास है, अन्यका अभिप्राय अन्य कुछ नहीं कह सकता । जो व्यवहार होता है वह निजके ज्ञानमें जो आता है वही कहा जाता है । प्रमाणके लिये यह कहा जाता है - भगवानके ज्ञानमे ऐसा ही आया है ।

कठवर कूपिका,
आषाढ शु ८, स २००८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ६८)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, सतोष हुआ । तब तो परमार्थसे यही है जो परपदार्थ को पर मानना आपको आप मानना । ज्ञानमे ज्ञेय आता है यह तो उसकी स्वाभाविक स्वच्छता है । उसमे ज्ञेय झलकता है अर्थात् ज्ञेय निमित्तक ही वह विकारावस्थाको प्राप्त होता है । व्यवहार यह होता है हम ज्ञेयको जानते है । आपके पत्रसे यह निश्चय हो गया जो आप समयसारके तत्त्वको समझने लगे है । रागद्वेषकी हानि स्वयमेव ज्ञानीके हो जाती है । हम कुछ नहीं जानते ऐसा स्वप्नमे भी खेद नहीं करना चाहिये । तत्त्वसे विचार करो, केवलीके ज्ञान और सम्यग्दृष्टिके ज्ञानमे विशेष अन्तर नही । वे भी स्वपरको जानते है यह भी स्वपरको जानता है । वे बहुत पर्यायोको जानते है यह अल्प जानता है । सूर्य दीपककी तरह ही तो अन्तर है । अत खेद करना हाय हम कुछ नहीं जानते अच्छा नहीं । स्वपरभेद ज्ञानसे अन्य अब क्या चाहते हो । रागादिक होते है एतावता सम्यग्दृष्टिके क्या बिगाड हो गया । उन्हे ज्ञेयरूप ही तो जानता है । औदयिक भाव ही तो उन्हे मानता है । उन परिणामोंको उपादेय तो नही मानता । जैसे मुनि महाराजके सज्वलनके उदयमे महाव्रतादि होते है, उन्हे करता भी है और यथायोग्य भोक्ता भी होता है परन्तु वह मुनि उन्हे उपादेय नहीं मानता । जिन्हे उपादेय नहीं मानता उनके होनेमे परमार्थसे प्रेम नहीं । इसी तरह सम्यग्दृष्टि जीवोकी विषय कषायके कार्योमे पद्धति है । उनकी गाडी मोक्षमार्गमे तेज चालसे जा रही है और इसकी मन्द चालसे जा रही है, अन्तर इतना ही है । अत सर्वप्रकार के विकल्पोको त्याग स्वाध्याय करते

जावो । अन्य विकल्प करनेकी चेष्टा न करो तथा वह अच्छा और अमुक निकृष्ट यह सब विकल्पोको त्यागो । आपके पत्रसे हमको प्रसन्नता हुई । आपको जब अवकाश मिले, आना । नि शल्य होकर आना ।

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ६९)

श्रीयुत् महाशय ला. मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

अपने परिणाम निर्मल करनेकी चेष्टा करना ही पुरुषार्थ है । असख्यात लोकप्रमाण कषाय है । कल्याणका मार्ग सुलभ है । सरलता चाहिये । जो काम करे निष्कपटतासे करे । हमको आपका देश इष्ट था, क्योकि उस प्रान्तमें विवेकी है किन्तु हमारी मोहान्धता ने यहाँ ला पटका । परन्तु इसका भी विषाद नहीं । हमने अपनी परीक्षा कर ली । आप किसीसे ममता न करना । मै तो कोई वस्तु नहीं परमात्मासे भी ममता न करना । यही तत्त्व है । स्नेहको निर्मूल करना यही भावना हितकारी है । हमको इत बातकी बडी प्रसन्नता है कि आप अब पहिलेसे बहुत शान्त हैं । मेरी मुजफ्फरनगरवालोसे दर्शनविशुद्धि कहना ।

सागर,
जेष्ठ सुदि ९, स २००९

आ.शु.चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ७०)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी साहब, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आपका लाला सुमेरुचन्द्रजी के पास आया, समाचार जाने । महाशय ! व्यग्रता बाह्य कार्योंसे नहीं होती । व्यग्रता यदि अन्तरगमे हो तब समझना चाहिए कि अब हमारा पतन हुआ । ऐसे तो आप जानते है हम आपको प्रतिदिन व्यग्र होना पडता है । अन्तरङ्गसे पर को पर समझो । निरन्तर अपनेमे दोष और गुण की परीक्षा करते जाओ । जो गुणो की वृद्धि हो, जानो आज दिन अच्छा गया । हमको उस ओर बुलाने

की चेष्टा करना कोई लाभदायक नहीं । अब हमारी शक्ति नहीं कि कुछ कर सके । आप स्वाध्याय करो और इन सम्मेलनोके चक्रमे न पडो ।

बरुआसागर

आ.शु.चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ७१)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपका पवित्र विचार ही ससार बन्धन मिटानेमे कारण है । पर तो पर ही है । पदार्थ व्यवस्था इस प्रकार की ही है । हम आज तक आत्मीय स्वरूप को जाने बिना ही पर को निज मान भ्रमण कर रहे है । जब यह निश्चय हो गया कि हम ज्ञाता दृष्टा है तब फिर स्वय यह भ्रम जो हमे परमे आत्मा मना रहा था अनायास चला जावेगा । देखो अष्टावक्रगीतामे लिखा है -

श्रद्धस्व श्रद्धस्व तात नात्र मोहं कुरुष्व भो ।
ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृते: पर: ।।

अत सर्व विकल्प त्याग उपेक्षा को अपनाओ । हम ससारी कायर है ऐसी हीनता नियमसे छोड दो । भगवान् के समक्ष भी अज्ञानी बनकर स्तवन मत करो । जब आपने भगवान को जान लिया तभी तो भक्ति करते हो फिर अज्ञानी मानना अच्छा नहीं। हमको आपका समागम इष्ट है । अब हमारी अवस्था भी पक्वपान सदृश है । कब आओगे, उत्तर देना । हम सागर ही है ।

बरुवासागर

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ७२)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, चश्मा नहीं मिला । यदि कल्याण चाहते हो तो स्वतत्र बनने का प्रयास करो । पर जितने हैं पर है वे हमारा क्या कर सकते हैं । हम उनका क्या कर

सकते है ? यदि इनको अपनाया अपने अस्तित्वमे अन्तर आया, क्षति हुई । मेरी बात मानों किसी का भी साथ मत करो । आप ही का साथ करो ।

क्षेत्रपाल-ललितपुर,
कार्तिक सुदि २, स २००९

आ शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ७३)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी सा , योग्य इच्छाकार

पत्र आया, अब सर्व विकल्प छोडकर अन्तरग मूर्च्छा को कृश करो । कल्याण का मार्ग आप ही मे है । व्यर्थ ससारमे भटकना है । निमित्तमे निमित्तका परिणमन रहेगा। उपादानमे उपादानका परिणमन रहेगा । निर्निवाद विषयमे विवाद करने का समय नहीं । अनादिसे हम अपनी ही भूलसे ही बन्धको प्राप्त हो रहे है । जिस समय यह अज्ञान गया अनन्त ससार चला गया । विशेष यह है कि परकी आशा छोड़ो ।

२०-१०-५०

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१६ - ७४)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । मै हृदयसे कहता हूँ जो परके अतिशयको जानकर मत लुभाओ । व्यर्थके परिणमन हैं, होते ही रहते है । शुद्ध जीव पदार्थके परिणमनको आगम द्वारा जानकर उसके ऊपर भी लुभानेकी चेष्टा मत करो । होना था हो गया । यदि शुद्ध परिणमनसे मोहित हो तब आकाशादि पर क्यो नहीं मोहित होते । कदाचित् यह कहो जो उसमे चैतन्यशक्ति नहीं । शुद्ध जीवमे जो चैतन्य शक्ति है क्या उससे तुम्हें कुछ लाभ है या नहीं ? लाभ होता है यह तो कह नहीं सकते । 'अण्णदवियेण' गाथा देखो । तब यही कहना पड़ेगा जो कुछ नहीं । तब जैसे शुद्ध आत्मा वैसे ही आकाश । कदाचित् कहो - उनमे शुद्ध चैतन्यका परिणमन होनेसे राग होता है तब राग तो बन्धका

ही कारण हुआ । अत ऐसा चिन्तवन करना चाहिए । जिससे राग न हो फिर चाहे वह शुद्ध चैतन्यका हो व शुद्ध द्रव्यका हो व घटादिकका हो । अत इन अतिशयके विकल्पोको त्यागो और आत्महित करो । हमसे भी अब विकल्प त्यागो । जब आपकी इच्छा हो आजाना, न हो न आना । हम तो यही चाहते है और उसीको प्रबल आत्मा मानते है जो आपको रागादिसे लिप्त नहीं होने देता । शास्त्रस्वाध्याय करनेका यही फल है जो परपदार्थोमे इष्टानिष्ट कल्पना मिट जावे । पर पदार्थ न तो मिटेगे और न तुम्हारी इच्छाके अनुकूल परिणमन करेगे । व्यर्थके उपद्रव बलात्कार क्यो करते हो ? सनत्कुमार व उसकी मॉ का स्वामित्व छोडो, चाहे घर रहो चाहे अन्यन्त्र रहो । विशेष क्या लिखे ? जो लिखते है अपनी परिणतिसे दुखी होकर लिखना पडता है, लिखना नहीं चाहते । जिस दिन पत्र देना आपसे छूट जावेगा । फिर आप जान लेना अब वर्णीजीका हमसे सम्बन्ध नहीं रहा ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ७५)

श्रीयुत महाशय मंगलसेन जी, इच्छाकार

बहुत काल बाद पत्र आया । शान्ति आपको आई, इसका कारण आपकी निज परिणति है । अन्य तो निमित्तमात्र है । अत आप तो विशेष प्रयास, जिससे कि स्थायिनी शान्तिके पात्र हो, उसीमे करिए । मै तो जो हूँ सो हूँ । किन्तु आराध्य आत्माओ का अवलम्बन त्याग स्वात्मावलम्बनमे ही रमण कीजिये । अनायास यह बन्धन हमे अनन्त ससारका कारण बना रहा है । बन्धन क्या हमारा जो स्वजन्य मोह है वह विलय जावेगा । श्री सनत्कुमारसे आशीर्वाद । यदि सुख चाहो तब स्वात्मावलम्बनका पाठ पढो, आयके अनुकूल व्यय करो ।

सागर,
कार्तिक सुदि ३ स २००९

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ७६)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । कल्याणका मार्ग परावलम्बन त्यागे ही होता है । इस शिष्टाचार पद्धतिने अबोध-पद्धतिकी तरह ही आज तक हमें निजस्वरूपसे वञ्चित रक्खा है । अत अब इस पराधीनताको त्याग स्वाधीन-मार्गमें लगना ही श्रेयोमार्ग है । आपने स्वाध्याय अच्छा किया है । अत आपको विशेष क्या लिखूँ - आप आवेंगे उस समय स्वय ही यही कहेंगे । सनत्कुमारसे आशीर्वाद कहना तथा यह कहना जो थोडा-बहुत स्वाध्यायमे उपयोग लगावे तथा जहाँ तक बने ब्रह्मचर्यकी रक्षा करे । विशेष क्या लिखे । जो जितना विषयोसे उदासीन रहेगा उतना ही अधिक प्रसन्न रहेगा। धनादिकी विपुलता सुखका कारण नहीं, मूर्च्छाकी न्यूनता सुखका कारण है । आप सागर ही आवे ।

सागर,
कार्तिक सुदि ६, स २००९

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ७७)

श्रीयुत महाशय मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । भाई साहब कल्याणका मार्ग तो जहाँ है वहाँ ही है। यह तो हमारी आपकी कल्पना है जो पर भी कारण है इसका निषेध नहीं, परन्तु कार्य-सिद्धि कहाँ होती है इसपर दृष्टिदान देना चाहिये । सामग्री कार्यकी जनक है । किन्तु कार्य कहाँ होता है यह भी विचारणीय है । आप तो सानन्द स्वाध्याय करिये और जो कुछ परिणतिमे रागादिक हो उनमे तटस्थ रहिए । यही उनका त्याग है । अनन्त जन्म बीत गये, हमने अपनी परिणतिपर अधिकार न पाया । उसीका यह फल है जो अनन्त-ससारकी यातना भोगी । इसका खेद व्यर्थ है जो गयी सो गई । वर्तमान पर्यायको अन्यथा न जाने देना चाहिये यही हमारा आपका कर्तव्य है । सब अच्छा होगा । हम दो मास और यहाँ रहेगे ।

सागर,
अगहन बदि ३, स २००९

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ७८)

श्रीयुत महाशय मगलसेनजी, इच्छाकार

आप आनन्दसे जीवन-यात्रा समाप्त करना । किसी की चिन्ता न करना । आत्मा एकाकी है । मोहके वशीभूत होकर नाना यातनाओकी पात्र हो रही है । आप तत्त्वज्ञानी है । सब विकल्प त्याग कर अन्तिम कार्य करना । मुझे पूर्ण श्रद्धा है जो आप सावधानीपूर्वक उत्सर्ग करेगे । आपके बालक समर्थ है । आप स्वय समर्थ है । यही समय सावधानीका है । मूर्च्छा त्यागना । मै तो कोई वस्तु नहीं, परमात्मासे स्नेह त्यागना ।

सागर,
अगहन वदि ६, स २००९

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ७९)

श्रीयुत महाशय लाल मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपकी श्रद्धा निर्मल है, यही कल्याणकी जननी है। आत्मामे जो देखने-जाननेकी शक्ति है वह निरन्तर रहती है । तरतम परिणमन रहे, इससे हानि नहीं । हानि का कारण परमे निजत्व कल्पना है । यही ससार की दादी है । जहाँ तक साम्य-भाव है, वहाँ तक ही यह निजस्वरूपमे रहता है । अगाडी बडा फॅस गया । फॅसानेवाला स्वय विकृत भाव है -

'साम्यसीमानमालम्ब्य कृत्वात्मन्यात्मनिश्चयम् ।
पृथक्करोति विज्ञानी सश्लिष्टे जीव-कर्म्मणी ।।''

अत आपत्ति आने पर स्वरूपसे च्युत न होना चाहिये । आप जानते है, नारकी कितनी वेदनामे ग्रस्त रहते है परन्तु वे भी उस अवस्थामे स्वरूपलाभके पात्र हो जाते है । अत शारीरिक वेदना अन्तर्दृष्टिकी बाधक नहीं । फिर भी मोही जीव इस चक्रमे आते रहते है । पर-पदार्थका अणुमात्र भी अपराध नहीं ।

'रागी बध्नाति कर्म्माणि वीतरागो विमुच्यते ।
एषः जिनोपदेशोऽयं सक्षेपाद्बन्ध-मोक्षयोः ।।'

सानन्दसे दिन बिताना और शीतऋतु बीतने पर आना । शीघ्रता न करना । बालकोसे आशीर्वाद तथा हमारा यह सदेश कहना - स्वाध्यायमे दत्तचित्त रहे । चाहे १५ मिनटका कर्तव्य जान कर करे । ब्रह्मचर्य सभी पर्वो पर पालन करें ।

सागर,
अगहन सुदी २, स. २००९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ८०)

श्रीयुत लाला मंगलसेन जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । आपका शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा हो गया यह पढकर अति प्रसन्नता हुई और आप रोग-आक्रान्त होने पर भी स्वभावसे च्युत नहीं हुये इसकी महती प्रसन्नता हुई । यह तो पर्य्याय कारणकूटसे उत्पन्न हुई है, एक दिन अवश्य ही विघटैगी । इसके रहनेका हर्ष नही और जानेका विषाद नहीं करना ही महापुरुषोका मुख्य कार्य है । स्वभावमे विकृति न आने पावे यही पुरुषार्थ है । श्रद्धा अटल रहना ही मोक्षमार्गकी आद्य जननी है । आप निश्चिन्त रहिये और जो कुछ दृढ निश्चय किया है वह न जाने पावे, यही महती पुरुषार्थता है । सम्यग्दर्शन होनेके बाद फिर अनन्त ससारकी जड कट जाती है । फिर वह नहीं रह सकता । अपनी आत्मा ही अपनेको अनन्त-ससारसे पार उतारनेवाली है । परावलम्बन ही बाधक है । आपके बालक सुबोध है । पुत्रोका यही कर्त्तव्य था जो आपके पुत्रोने किया । मै उनको यही आशीर्वाद देता हूँ जो वे धर्ममे इसी प्रकार निरन्तर दृढ रहे । आप शीत कालमें न आना। वसन्तऋतुमे आना । मुझे आनन्द है जो आपका जीवन धर्ममे जा रहा है । श्री सनत्कुमार दर्शनविशुद्धि । मेरी भावनाका पाठ कर लिया करो । यही सन्देश श्री इन्द्रकुमारको देना ।

सागर,
अगहन सुदी ५, स २००९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ८१)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

समगौरया द्वारा वस्त्र आगये, उपयोगी हैं । आपका स्वास्थ्य अच्छा है । सयमकी सिद्धिका मूल है । अब शीत-काल मे एक स्थान पर ही रहना और बाह्य परिश्रम विशेष न करना । समय पाकर ही विशेष कल्याण होगा । तथा मेरा तो निजका यह विश्वास है - जिसने मोह पर विजय प्राप्त करली उसने ससार पर विजय प्राप्त करली। सबसे प्रबल अरिके विजय होने पर शेष कोई रहता ही नहीं । अन्य कर्मोमे अरिकल्पना सहकारितासे है । परमार्थसे शत्रु तो मोह ही है । धन्य है उन महानुभावोको जिन्होने इस अरिको ही अरि समझा । जिसने इस पर विजय प्राप्त कर ली वही परमात्माका उपासक और निर्ग्रन्थपदका पात्र होता है । यह भी एक कहना कुछ दिनका है वह स्वय परमात्मा है । परमार्थ से वह वही है । उसकी कथा कहना मोहीका काम है । व अनिर्वाच्य है । श्रीइन्द्रकुमार जी तथा श्री सनत्कुमार जी योग्य दर्शनविशुद्धि । जहॉ तक बने स्वाध्यायसे प्रेम करना ।

सागर,
अगहन सुदि ९, स २००९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ८२)

श्रीयुत लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । कल्याणका मार्ग यही है जो परमे निजत्व कल्पना न करना । आपत्तियॉ तो औदयिकी है । आती जाती रहती हैं । ऐसा उपाय करना जो अब अग्रेतन कालमे न आवे । मूल उपाय यही है । उन्हे ऋणवत् अदा करता जावे । विशेष क्या लिखू - सन्तोषसे जीवन बिताओ ।

सागर,
अगहन सुदि १२, स २००९

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ८३)

श्रीयुत महाशय लाला मंगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । कल्याणका मार्ग कहीं नहीं, अपनेमे ही है । आवश्यकता श्रद्धा एव निर्मल परिणामोंकी है । जिसकी श्रद्धा दृढ है उसका उत्थान अनायास हो जाता है । अनादि कालसे हमारी प्रवृत्ति परपदार्थोंमे रही । उसीसे आत्माका कल्याण अकल्याण मानकर मोह, राग, द्वेष द्वारा अनन्त यातनाओके पात्र रहे । अत इन पराधीनताके द्वारा हुए सकटोंसे यदि अपनी रक्षा करनेका भाव है तब अपनेको केवल जाननेका प्रयत्न करो । दृष्टि बदलना है । समीप ही श्रेयोमार्ग है । पराधीनता त्यागो । शुद्धचित्तसे परामर्श करो, कहीं भ्रमणकी आवश्यकता नहीं । उष्ण जलको शीतल करनेके अर्थ जैसे उष्णता दूर करनेकी आवश्यकता है, शीतलता तो उसकी स्वाभाविक वस्तु है । इसी तरह आत्मामें शान्ति स्वाभाविक है । परन्तु अशान्तिके कारण मोहादि शत्रुओंको दूर करनेकी आवश्यकता है । शान्ति तो अन्तस्तलमे निहित है । श्री सनत्कुमारजी आशीर्वाद । जहाँ तक बने बाह्याडम्बरसे बचना ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१६ - ८४)

श्रीयुत लाला मङ्गलसेनजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आये, समाचार जाने । मेरा शरीर निरोग है । यह गल्प है जो मेरा फागुनमें अवसान होगा । आप चिन्ता न करे । ससारमे शान्तिकी मूल चिन्ता निवृत्ति है । मेरी तो यह भावना है जो अपने स्वरूपको छोड अन्यत्र मनको न जाने दो । मोक्षमार्गका मूल कारण परमे निज कल्पनाका त्याग है । जिस कालमे मोहका क्षपण हो जावेगा राग-द्वेष अनायास चले जावेगे । आप तो ज्ञानी है । सब पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं । फिर अपनाना कहाँ का न्याय है । जिस हित अपनाया जावेगा अनायास यह आपत्ति टल जावेगी । आप भूलकर अभी आनेकी चेष्टा न करना । श्री सनत्कुमार आशीर्वाद । जितना निर्मल रहोगे उतना सुख पाओगे ।

सागर,
पौष सुदि १२, स २००९

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१६ - ८५)

श्री महाशय, कल्याणके पात्र हो

पत्र आया, समाचार जाने । स्वाध्याय ही कल्याण करेगा । हमने कुछ नहीं किया । आपकी योग्यताने आपका विकास किया । एक बार प्रवचनसार भी वाचना और जहाँ तक बने ममता त्यागना । सार यही है । ससार का बीज मोह है । यही जीतना ज्ञानियोका काम है । अभी गर्मी बहुत है । वर्षामे आनेका विचार करना ।

ईसरी बाजार,
जेठ वदि १, स २०११

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१६ - ८६)

श्रीमान् लाला मगलसेनजी, योग्य इच्छाकार

अन्तरङ्गसे जो रुचि है वही कल्याणका मार्ग है । अन्यत्र कही कुछ नही । इसका अर्थ यह है कि हमारे लिये कुछ नहीं, हमारा कल्याणमार्ग हम मे ही है । हम जहाँ जावेगे वहीं हममे है । आप जब आवे, बडी प्रसन्नता हमे है परन्तु कार्यकी उत्पत्ति तो आप मे ही होगी । स्वाध्याय करना परम धर्म है ।

ईसरी बाजार,
जेठ सुदि ११, स २०११

आ शु चि
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

१९ फरवरी १९४५

* यह ससार विषम वन है । इसमे नाना प्रकार के जन्तु समुदाय रहते है । कई तो ऐसे है, जिनका यही कार्य है, जो पर का घात कर अपना उदरपोषण करते है । कई ऐसे है जो स्वोदर निमित्त प्राप्त अन्न का त्याग कर पर का पोषण करते है, परन्तु ऐसे कम हैं ।

ब्र. गोविन्दलाल जी

(श्रीमान् ब्र. गोविन्दलालजी का जन्म अषाढ सुदि १ वि स १९३५ को गया मे हुआ था । पिता नाम श्री लक्ष्मणलालजी जैन था । जाति खण्डेलवाल और गोत्र लुहाड्या था । इनकी शिक्षा इटरमेडिएट तक हुई थी । स्वाध्याय द्वारा इन्होने अपनी धार्मिक योग्यता भी अच्छी तरह सम्पादित कर ली थी ।

ये शिक्षा प्राप्त करने के बाद जजकी कचहरी मे शिरस्तेदारके पद पर रहकर सरकारी नौकरी करने लगे थे । वहाँसे निर्वृत्त होनेके बाद इन्होने ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली थी । इनके दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज ही थे ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके सम्पर्कमे आनेके बाद अपना उदासीन जीवन व्यतीत करते हुए ये ईसरी उदासीनाश्रममे रहने लगे थे । इन्हे सरकारकी ओरसे पेशन मिलती थी । इसलिए ये अन्त तक अपना खर्च स्वय वहन करते रहे । इनके पास जो सम्पत्ति थी उसमेमे लगभग ५-७ हजार रुपया इन्होने दानमे भी व्यय किया था । वि स २००९ कार्तिक मासमे समाधिपूर्वक इन्होने इहलीला समाप्त की थी । इनका जीवन निस्पृही, परोपकारी और धर्मनिष्ठ था । ये प्राय पूज्य श्री वर्णीजी महाराजको उनकी अनुपस्थितिमे पत्र लिखा करते थे । यहाँ उत्तर स्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी महाराजने इन्हे जो पत्र लिखे थे वे यहाँ दिये जाते है ।)

(१७ - १)

श्रीयुत महाशय गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । आपके द्रव्यको तो हम न्यायमार्ग का समझते है । परन्तु हमारा उदय अभी वहाँकी यात्राका नहीं, अन्यथा हमारा प्रयास विफल न होता, सरियातक आये । अकस्मात् पैरमे वेदना हो गई, अब एकदम शान्त है किन्तु मार्गमे स्वाध्यायकी त्रुटि हमको एकदम असह्य हुई जो कि हमारा जीवन है । यह शीतऋतु है। स्वाध्याय रात्रिमे ४ घटा हमारा ईसरीमे होता था वह एकदम चला गया, अत खेद हुआ । शक्ति तो हमारे पैरोमें १६ मील चलनेकी है । ६ बजे बाद चौधरीवान से चले और १२ मील चलकर १० बजे सरिया आ गये । दूसरे लिखनेका एकदम अभ्यास छूट गया । हम रिक्सामे बैठना तो उचित नहीं समझते । मनुष्य सवारीका तात्पर्य डोलीसे है सो भी जब चलनेकी शक्ति एकदम न रहे उस समयकी बात है । आप जानते है कि मैंने

जब गिरिराजपर डोलीपर जाना अनुचित समझा तब श्रीवीरप्रभुके निर्वाणक्षेत्रको रिक्सा पर नहीं जा सकता । **वन्दनाका अर्थ अन्तरङ्ग निर्मलता है** । जहाँ परिणामोंमें सक्लेश हो जावे वहाँ यात्रा जानेका तात्त्विक लाभ नहीं । आपने लिखा कि हमारे द्रव्यसे यदि यात्रा नहीं करना चाहते तो श्री कन्हैयालालजी वा श्री पतासीबाई खर्च करनेका प्रस्तुत हैं सो यह कहना तो तब उचित था जब आपके द्रव्यको अयोग्य समझता । तथा मेरे पास भी १००/- थे जिनको मैंने बनारस भिजवा दिये । अब यदि २ मास बाद निमित्त मिल गया तब जा सकते है परन्तु अभी तो शीतकालमें नहीं जावेगे। समयसारकी यात्रा करेगे । यह नियम तीन मास तक लिया है जो प्रात काल स्वाध्यायके समय बोलना और फिर नहीं बोलना । तथा ईसरी जाकर १ मासमे एकबार ही पत्र डालना, प्रतिपदाको पत्र देना । शेष कुशल है । यदि मेरे निमित्तसे आपको कोई प्रकार व्याकुलता हुई हो तो क्षमा करना जो कर्मरूप उसमें मै हो गया ।

आ. शु चि

गणेश वर्णी

(१७ - २)

श्रीयुत बाबू गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आपका वा श्रीबाबू राजेन्द्रकुमार जवेरीका वा पुन कितारी और दूसरा पत्र आया, समाचार जाने । आप जानते है यह ससार रागद्वेषमूलक है । तथा जब हमारे पास परिग्रह है तब हम कहे - हमे इसकी मूर्च्छा नहीं, असम्भव है । वह विकल्प नहीं, अन्य हो गया । **विकल्पजाल छूटना ही मोक्षमार्गका साधक है** । हमारा दिन मौनका सुख और शान्तिमे जाता है । निमियाघाटसे ईसरी आगये, परन्तु स्थान यदि मेरेसे पूछा जाय तब निमियाघाट शान्तिप्रद और रम्य तथा जल व वायु दोनोंकी अपेक्षा ईसरीसे अच्छा है ।

आ. शु. चि.

गणेश वर्णी

(१७ - ३)

श्रीयुत बाबू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने लिखा यहाँ आनकर ससार समुद्रके विषभँवरमे फस गये, सो छूटे कब थे ? बाबूजी जबतक आभ्यन्तर मोहकी सत्ता बलवती है तबतक इस जीवका कल्याण

होना दुर्लभ है । आचार्योंने जो लिखा है **'नि:शल्यो व्रती'** सो इतना उत्तम लक्षण है जो वचनागोचर इसका भाव है । हम धर्मसाधन तो करना चाहते हैं और उसके अर्थ घर भी छोड़ देते हैं, धन भी छोड देते हैं परन्तु शल्य नहीं छोड़ते । यही कारण है जो आप बिना फसाये फस गये । अस्तु अब इस कथाको छोडो । श्री रतनलालके वियोगसे इस समय उसकी अनाथ विधवा असहाया तथा हीना है, अत आपका जितना पुरुषार्थ हो उसे लगाकर उसके धनकी रक्षाका प्रबन्ध कर देना तथा उन दोनो माँ बेटीकी सुरक्षित स्थानमे रहनेकी व्यवस्था करके ही अबकी बार नि शल्य होकर ही आना । हम लोग अभी बहुत जघन्य श्रेणीके मनुष्य हैं और चाहते हैं कि उत्तम श्रेणीवालोके आत्मीक रसका आस्वाद लेवे । सो स्वाद तो दूर रहा जो है उसीके स्वादसे वञ्चित रहते है । उतावली न करना, धीरतासे काम करना । यदि उसके कुटुम्बी आपत्ति करे तब पञ्चायतकी शरण लेना । श्रीयुत बाबू विलासरायजी तथा सेठी चम्पालालजी आदि वहाँ है । आप कुछ भी भय न करना । आप स्वय ३० वर्ष अदालतमे बिताए, आप क्यो भीरु होगे ? राजगृही जानेका विचार पक्का है परन्तु कारणकूट मिलने पर ही तो कार्यमें परिणत होगा । आजकल सेठी प्रेमसुखजी ३ दिनसे ज्वरसे पीडित हैं, कुछ नहीं खाया । आज कुछ शान्ति है । शेष ब्रह्मचारी आपको इच्छाकार कहते हैं । श्रीकुञ्जीलालजी अच्छे हैं । भगतजी कलकत्ते गये । यह न समझना हमे बिल्कुल नादान समझ लिया । आपका तो उनसे सम्बन्ध था इससे यदि दु ख हो तो आश्चर्य नहीं । परन्तु हम तो आपसे भी विलक्षण है जो बिना सम्बन्धके दुखी हैं ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१७ - ४)

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

रतनलालजीका असामयिक स्वर्गवास अति दु खका कारण सुननेवालोको हुआ। फिर आपकी तो कथा ही दूसरी है । सबसे बलवान दु ख तो उसकी गृहिणी और बच्चीको हुआ होगा । आप जहाँ तक बने उन्हे अच्छी तरह सान्त्वना देना, क्योकि आप उनके हितैषी है । **विपत्तिमे शान्ति देना उत्तम पुरुषोंका काम है । संसार दु:खमय है । वही पुरुष इसमें सुखी हो सकता है जो मूर्छा छोडे** । परन्तु वह विचारी अनाथ विधवा क्या कर सकती है ? उसकी रक्षा करना मेरी समझमें एक महान् पुण्यके बराबर है । विशेष क्या लिखे । हमारा आप कोई विकल्प न करना ।

योग्यता मिलने पर राजगृही जावेगे । हमारे तो श्री पार्श्वनाथ और वीरप्रभुमे कोई अन्तर नहीं ।

आ. शु. चि.

गणेशप्रसाद वर्णी

(१७ - ५)

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हमने पत्र दिया है । हमारा विचार राजगृही जानेका है परन्तु अभी जाना कठिन है, अत आपको यदि अवकाश हो तो देख जाना । ससार दु खमय है । इससे उद्धारका उपाय मोहकी कृशता है । उसपर हमारी दृष्टि नही । दृष्टि क्यो हो, निरन्तर परपदार्थो मे रत है, अत तत्त्वज्ञान भी कुछ उपयोगी नहीं । केवल तत्वज्ञानका उपयोग, हमारी प्रतिष्ठा रहे इसीके लिये है । व्रतादिकका उपयोग पर पदार्थकी मूर्च्छा जाए बिना कुछ नहीं । सेठ कमलापतिका कोई समाचार नही । अति लोभी, एक पोस्ट कार्ट तक नहीं दिया । आपकी उनपर बडी श्रद्धा है तथा उनकी आप पर है, अत एक पत्र डाल देना । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । आप हमारी चिन्ता न करना, क्योकि उदयाधीन सर्व सामग्री मिलती है । आपका आना तब होगा जब वीर प्रभुने ज्ञानमे देखा होगा । कहने से कुछ नही, अत नि शल्य होकर वहीं सानन्दसे स्वाध्याय आदिमे समय बिताइए यही कल्याण का पथ है । देखिए उदयकी बात, हमारे मनमे यह आई थी जो आपसे ताजा घी मगावे, परन्तु मनने कहा क्यो लिखते हो पर आपने भेज दिया । यह क्या है उदय ही तो है । यह सर्व होकर भी मनुष्योकी यथार्थ प्रवृत्ति न हो यही आश्चर्य है ।

श्रीयुत लालचन्दजी से इच्छाकार, आप सानन्द नित्य नेममे उपयोग लगाइए यही पर्यायका लाभ है ।

आ शु चि

गणेशप्रसाद वर्णी

(१७ - ६)

श्रीयुत महाशय गोविन्द बाबु, योग्य दर्शनविशुद्धि

बन्धुवर, आप रञ्चमात्र विकल्प न करना । आपको मेरी प्रकृतिका पता है । फिर आप लिखते है - आपका क्षमा माँगना ( ) का कारण है । नहीं, मेरी बाल्यावस्थासे ही किसी भी प्राणीके प्रति स्वप्नमे द्वेषबुद्धि नहीं रहती फिर आप तो

हमारे धर्मात्मा स्नेही सज्जन है । प्रत्युत आपके बिना मुझे यहाँ बहुत ही खेदसा रहता है। मैं उनसे प्रसन्न रहता हूँ जो अन्तरग खुश दिल रहते है । अब आप मेरी तरफसे कोई भी कणिका शल्यमयी न रखिये और जहॉ तक बने धर्म ही अपना कल्याणकारी है इसी ओर लक्ष्य रखियेगा । मैंने ब्रह्मचारियोसे पूछा तब निम्न पुस्तके उनने मॉगी । समयसार सटीक ब्रह्मचारी भगवानदास और ब्र आत्मानन्द, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ब्र कमलापति । १ पत्र आप इस पतेसे डाल देवे, बी पी का पता ईसरी मगलसेनके नाम लिख देवे । मोक्षमार्ग मिलता नहीं, अत नहीं लिखा । और पुस्तके आपके आनेपर मॅगावेगे । बादाम प्राय मै जबसे आम आए नहीं खाता, अत हमारे व आपके व जगत पूज्य पार्श्वप्रभुके चरण समर्पितका रञ्ज न करना । फिर भी हम भी तो आखिर छद्मस्थ अल्पज्ञ प्रमादी जीव है । यदि किसी प्रकारकी त्रुटि हो जावे तो उसे अनात्मधर्म जान वस्तु मर्यादा जान दृढ ज्ञानी होना, न कि खेद करना । आप जानते है आज तक हम और आप जो इस ससारमे भ्रमण कर रहे है उसका मूल कारण यही प्रमाद दशा है । यदि हम प्रमादसे अन्यथा लिख देवे तब क्या यह लिखना श्रेयस्कर होगा, कदापि नहीं । अथवा आप लिख जावे अथवा कोई लिख जावे, प्रशसनीय नही। जब आप यहॉ शुभागमन करेगे मै सर्व समाधान कर दूगा । और भी लिखता हूँ मेरी ऐसी प्रकृति है जो बिना देनेवालेकी मर्जीके बिना तथा अपनी आवश्यकताके बिना रुपया व्यय करना नहीं जानता । स्याद्वाद विद्यालयसे अन्त प्रेम है, अत पुनरुक्ति आदि आपसे हो गई न कि भ्रम । मेरे पास अब कुल १०००/- था उसमे ७००/- और स्याद्वाद विद्यालयमे देनेका निश्चय किया है । केवल डाकखानेसे निकालनेका विलम्ब है, ३००/- रह गये है, इसीमे स्वकीय आयुको पूर्ण करूँगा । यदि न्यूनता पडेगी, आप सज्जन है, मुझे किञ्चित भी विकल्प नहीं । शेष आपके सर्व समाचार लोकोसे कह दिये । आपका पत्र आने पर सन्तोष होगा ।

जेठ सुदी ९, स २००४

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१७ - ७)

श्रीयुत महाशय बा गोविन्दलालजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे यह एक पद्धति लिखनेकी है । वास्तव आनन्द तो तब होगा जब यह रागादि शत्रु दूर हो । इनके सद्भाव मे काहेका आनन्द । जिसका रोगको हमने पर्याय भर जाना और जिसके अर्थ दुनियॉ के नामी वैद्य हकीमों को नब्ज दिखाया तथा

उनके लिखे या बने या पिसे पदार्थोंका अनुपान किया और कर रहे हैं वह तो वास्तवमे हमारा रोग नहीं, जो रोग है उसको न जाना और न उसके जानने की चेष्टा की और न उस रोगके वैद्यो द्वारा निर्दिष्ट रामबाण औषध का प्रयोग किया । यद्यपि उस रोगके मिटनेसे यह रोग सहज ही मिट जाता है । जैसे सूर्योदयमे अन्धकार । अस्तु, अब मै यहा से जेठ सुदी १ या २ को चलूंगा । कोई को मेरे पास भेजनेकी आवश्यकता नहीं, मेरा उदय ऐसा ही कहता है जो सानन्द रहो और किसी को अपनेसे कष्ट मत पहुँचाओ तथा पर्यायकी सार्थकता करो यही तुम्हारा कर्त्तव्य है । श्री चन्दाबाईसे मेरा इच्छाकार कहना । मै तो उन्हे बहुत सज्जन और धर्मात्मा जानता हूँ । यद्यपि मेरा विचार जल्दी आनेका न था परन्तु ऐसा ही होना था, निश्चित सिद्धान्त तो यही है, आजका यह भाव है । श्री छोटेलालजीको इच्छाकार तथा सर्व ब्रह्मचारियोसे इच्छाकार । जो मनुष्य अपनी आलोचना करेगा वह ससारसे पार होगा । जो परकी समालोचनामें अपना समय लगावेगा वह ससार मध्यका पात्र होगा, विशेष क्या लिखे ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - ८)

श्रीयुत बा गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अपरच हमारा आना जाना पराधीन हो गया । यहा से मैंने कई बार आनेका प्रयत्न किया परन्तु कारण कूटके न मिलनेसे नहीं आ सका । अब गर्मी बहुत पडने लगी है । यहा पर केवल ४ बजे तक गर्मी रहती है । इस से यह विचार किया जो जेठ भर यहीं रहना उत्तम होगा, क्योकि वहा की अपेक्षा गर्मी कम पडती है । आज प नन्हेलालजी वैद्य आए हैं । २०) मासिक का १ मकान भाडा लेनेका विचार है । नन्हेलालको भेज देवे । जैसे आश्रमवाले कहे सो लिखना । आश्रमवासी सम्पूर्ण ब्रह्मचारियो से इच्छाकार । श्रीयुत प्रेमसुखजीसे दर्शनविशुद्धि ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - ९)

श्रीयुत बा गोविन्दलालजी, दर्शनविशुद्धिः

पत्र आया, समाचार जाने । आपकी जो श्रद्धा है उसके हम स्वामी नहीं । परन्तु

हमारी श्रद्धा है जो किसीके उपदेशका किसी पर प्रभाव नहीं पडता है । यदि ऐसा था तब अनन्त बार समवसरणमें गए और अनन्तबार द्रव्यलिग धारण कर ग्रैवेयक गए परन्तु आत्मकल्याणसे वञ्चित रहे, अत मेरे निमित्तसे आप आनेकी चेष्टा कर रहे हैं यह मेरी बुद्धिमें नहीं आता है । बच्ची की दयासे वहा पर हैं यह भी बुद्धिमें नहीं आता है । जिस मोहसे ठहरे हो उसका नाम भी नहीं । अपने मोहभावसे सर्व चेष्टा है, बच्चीकी दया नहीं । अपने परिणाममे जो उसके निमित्तसे अनुकम्पा हुई है उसके दूर करने की सर्व चेष्टा है ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - १०)

श्रीयुत महाशय गोविन्दरामजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द आ गए । उदयाधीन सामग्री भी मिल गई, परन्तु गर्मीका प्रकोप सर्वत्र है। सर्वसे बडा सुख इस बातका हुआ जो चित्त अब क्षुब्ध नहीं होता । हमारा यह विचार यहा आनेसे हुआ जो श्री तीर्थराजको छोड गृहस्थोके सम्बन्धमे रहना अच्छा नहीं, क्योकि ममत्व ही बन्धका जनक है । यहा तक निश्चय किया, चाहे आप लोग रहो या न रहो । भाद्रमास तक तो ईसरी ही रहना ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - ११)

श्रीयुत बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

दु ख तो कल्पनामे है, कल्याण आत्मामे है । मै स्वय अकिचित्कर आपसे पुरुषोका उपकार कर सकता हूँ ? फिर फागुन बदी १ को वहा आऊगा ही । श्रीप्रेमसुखजीसे दर्शनविशुद्धि । कलकत्तेसे कोई समाचार आया नहीं । गृहस्थका सग दु खद है ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१७ - १२)

श्रीयुत महाशय बाबूजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सानन्द स्वाध्याय होता होगा, स्वाध्यायका फल रागादिको की उपशमता है । यदि उपशमता तीव्रोदयसे न भी हो तब मन्दता तो अवश्य ही होनी चाहिये । मन्दता भी न हो तो विवेक अवश्य होना चाहिये । यदि विवेक भी न हो तब तो स्वाध्याय करनेवालेने क्या लाभ स्वाध्यायसे लिया ? जो मनुष्य अपनी प्रवृत्तिको निरन्तर अवनतकर तात्त्विक सुधार करनेका प्रयत्न करता है वही इस व्यवहारधर्मसे लाभ उठा सकता है । जो केवल ऊपरी दृष्टिसे शुभोपयोगमे ही सन्तोष कर लेते है वे उस पारमार्थिक लाभसे जिससे चिरकालीन शान्ति मिले वचित रहता है । जो परिग्रह वर्तमानमे आकुलता का उत्पादक है यदि व्यवहार धर्मसे वह मिल गया तब मेरी समझमे आकुलताके सिवाय क्या लाभ उठाया ? यदि अज्ञानी जीव इससे सन्तोष कर ले तब आश्चर्य नहीं । परन्तु जो स्वाध्याय करके तत्त्वज्ञानके सम्पादन अर्थ निरन्तर प्रयास करते है यदि वे मनुष्य सामान्य मनुष्योकी तरह भी इसीमे सन्तुष्ट हो जावे तब आश्चर्य है । जिन्होने शान्तिके ऊपर ही अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है उन्हे इन बाह्य ज्ञेयो मे उलझना उचित नही । अपनी लालसाको छोडने के अर्थ जिन जीवोने त्यागधर्मको अङ्गीकार किया फिर भी उन्हींकी तरफ यदि लक्ष्य रक्खा तब उस जीवने उस त्यागमे क्या लाभ उठाया ? क्योकि त्यागका अर्थ आकुलताका अभाव है । यदि वह न हुई तब उस त्यागसे क्या लाभ ? जितने कार्य्य ससारमे मनुष्य करता है उसका लक्ष्य सुखकी ओर रहता है और सुखोत्पत्ति वास्तव रीतिसे विचार किया जावे तब त्यागसे ही होती है । इसीसे जैनधर्मका उपदेश त्यागको लक्ष्य करके ही है । यदि इसपर लक्ष्य न दिया तब वह मार्मिक ज्ञानी नहीं । इसके ऊपर जिनकी दृष्टि रही वही त्याग कर सफल प्रयत्न हो सकते है । हम जेठ बाद आवेगे ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१७ - १३)

श्रीयुत बाबुजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मनुष्य वही है जो निर्द्वन्द्व रहे । हम तो ऊपर से बहुत चेष्टा निर्द्वन्द्व होनेकी करते है परन्तु आभ्यन्तर व्यापारके बिना कुछ होता नहीं । वहा की उपेक्षा यहा अशान्तिके बहुत बाह्य कारण है फिर भी उनसे आत्मरक्षाकी निरन्तर चेष्टा रहती है । मोही जीव

बाह्य कारणो से पृथक् होनेका प्रयत्न करता है परन्तु जो कारण हैं अशान्तिके हैं उनका परिज्ञान ही नहीं । यही कारण है कि एक बाह्य कारणसे छूटता है और उससे कहीं अधिक सग्रह कर लेता है यही तो महती मूढता है । जब तक इसको न निकालेगा सभी प्रयास निष्फल हैं । हम अपनी व्यवस्था जो अनुभूत है लिख रहे हैं । आप लोगोंकी आप जाने या वीर प्रभु जाने । हम भी जानते है परन्तु हमारा जानना अनुमानाभास भी हो सकता है । **आभ्यन्तर कलुषताको छोड़नेकी चेष्टा ही मोक्षमार्गमे जानेकी गली है । इस गलीसे मोक्षमार्गका पन्थ दीखता है ।**

सागर,
जेष्ठ बदि ११ स २०००

आ शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१७ - १४)

श्रीयुत् बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया समाचार जाने । भाग्यवान् जीव ही श्री १००८ पार्श्व प्रभुके निर्वाण क्षेत्रमें निवास करनेका पात्र होता है । आप लोगो के सौभाग्यका उदय है जो निराकुलतामे धर्म साधन कर रहे है । ऐसी भावना भावो जो हम भी आ जावे । अब हमारा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है । २ या ३ वर्षके मिहमान हैं, आप लोगों के समागममे समाधिमरण हो । अन्तिम आशा है जो अन्तिम सस्कार श्री पार्श्व प्रभुके पादमूलमे आप लोगो द्वारा हो । प शिखरचन्दजीसे दर्शनविशुद्धि । योग्य व्यक्ति है । जो त्यागी महाराज हो, सर्वसे यथायोग्य ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(१७ - १५)

श्रीयुत बाबु गोविन्दलालजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । पैदल चलनेवालो को गर्मी और शर्दी का पता मालूम होता है । सवारीमे जानेवालो को इसका बोध नहीं हमे श्री गिरिराज आना इष्ट है परन्तु किस प्रकार पहुँचेगे इसका पता नहीं । उदय ही पहुँचायेगा । उदय भी पुरुषार्थका भेद है । किन्तु एक बात स्मरण रखना - हमको बहुत अशो मे आपकी समाज नहीं चाहती, अत सब तरहसे परामर्श करके ही हमारे बुलानेका प्रयत्न करना।

अभी कुछ नहीं गया है । श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरके पट्टशिष्योने हमको कमडलु छीनने की धमकी दी है । प्राय आपकी समाज अधिकाशमें उनके श्रीमुखसे निकला उसे ही आर्षवाक्य मानती है, अत हम तो आवेंगे ही परन्तु अब आप लोगो के द्वारा आना अच्छा नहीं । इसे अच्छी तरह विचार लेना । व्यर्थके झगड़ेमे मत पडना । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । स्वाध्याय ही परम तप है । प्रायश्चितके विषयमे लिखा था सो कोई विकल्प न करो । यदि विकल्प मेटना है तब दो दिन मौनसे बिताओ और एक पात्रको भोजन करा देना ।

इटावा,
चैत्र सुदि ६ स २००६

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - १६)

श्रीयुत बाबु सा इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । हम तो आपके द्वारा स्वप्नमे भी अपमानित नहीं किए जाते, क्षमा काहे की करे । आप सानन्दसे धर्म साधन करिए । आपके हृदयमे यह कैसे आ गई जो मै विलायत जाता हू और यदि आगमानुकूल जाऊँ तब क्या क्षति है ? विलायत तो भरतक्षेत्रमे ही आगमानुकूल है । मेरा तो यह कहना है कि १०० गृहस्थ हो, २० विद्वान् हो, २० त्यागी हो । एक बडा भारी जहाज हो । उसमे शुद्ध खानपान रहे । अथवा हवाई विमान हो, ५० लाख रुपया हो, २४ घटे मे लन्दन पहुँच जावे । वहाँ पर १५ लाख रुपया लगाकर एक मन्दिर बनाया जावे । तथा वहाँ ऐसी प्रभावना की जावे जो यह जैनधर्म कहलाता है । ऐसी ही प्रभावना अमेरिकामें भी की जावे । परन्तु यह होना क्या सम्भव है ? अस्तु मैं तो जैनधर्मका श्रद्धालु हूँ । कोई कुछ समझे । तथा यह भी मेरी भावना है जो प्राणी मात्रको धर्म समझाया जावे, चाहे किसी वर्गका हो । केवल हम ही उसके पात्र है यह मत ठीक नहीं । प शिखरचन्दजी से दर्शनविशुद्धि । सर्वत्यागी गणसे इच्छाकार ।

इटावा,
आ ब ६, स २००६

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१७ - १७)

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । हमारा स्वास्थ्य अच्छा है । परन्तु जसवन्तनगर आए, एकदम ज्वर आ गया तथा पैरो मे सूजन आ गई । अभी अच्छे होनेकी सम्भावना नही । एक मासमे आराम होगा । तबतक इटावा ही रहेगे । क्या होगा हम नहीं कह सकते । हमने पुरुषार्थ मे त्रुटि न रक्खी परन्तु भाग्यमे सहायता नहीं । आपको इसका खेद न करना चाहिए । मेरा सर्व महाशयोंसे इच्छाकार । श्री अधिष्ठाता सोहनलालजीसे विशेष कहना । सेठजी का अब स्वास्थ्य अच्छा होगा । हमारी क्या दशा होगी, श्री भगवान जाने ।

इटावा,
पौष सुदि १२, स २००६

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(१७ - १८)

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दलालजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । मै सब प्रकारसे आपकी वैयावृत्य करने को तैयार हू परन्तु यहॉ से सब चले गये, कोई यहॉ पर नहीं है । तथा यहॉ पर गर्मी बडे वेगसे पड रही है । आप जानते है **आजकल ऐसा काल है जो ऊपरसे व्याख्यान देनेवाले बहुत हैं अमल करनेवाले न वक्ता हैं और न श्रोता हैं ।** अस्तु आपने आजन्म धर्मसाधन किया है । यथाशक्ति दान भी दिया है । अब अन्तिम समय श्री पार्श्वप्रभुके पादरजको न छोडिए और अन्तरग मे निर्मल वृत्ति रखिए । अन्य तो निमित्तमात्र हैं । आत्मीय मूर्च्छाको छोडिए । आत्मा अकेला है, अकेला ही जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है और अकेला ही मुक्तिका पात्र होता है, अत आप शान्तिसे रहिए और असाध्य बीमारी न हो तब शीघ्रता न करिए । जो रुचे सो अल्प भोजन करिए । औषधिके चक्रमे न पडिए। केवल पार्श्व स्मरण औषध सेवन करिए, और समाधिमरणका पाठ सुनिए । पर्यायके अनुकूल त्याग करिए, आडम्बरमे न पडिए । राग-द्वेषके अभावमे आप स्वय परमात्मा है, अत परमेश्वर की भक्ति करिए परन्तु भक्तिमें राग न करिए । परमेश्वर विषयक स्मरण ही आत्माको शान्तिदायक होगा । यदि किसीसे ममता हो

तब उसे त्यागिए यही कल्याणका मार्ग है । बाह्य में निमित्त कारणका ही त्याग किया जाता है परन्तु अन्तरग त्याग बिना यह त्याग थोथा है । मैं आशा करता हूँ जो आप सब विकल्प छोड शान्त होनेका प्रयास करेगे । आप स्वय वर्णी है । आपकी वृत्तिसे अन्य वर्णी बन जाते है । आप क्या वर्णीका आश्रय लेते हैं ?

इटावा,
वैशाख सुदि ९, स २००७

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१७ - १९)

श्रीमान् बाबुजी, योग्य इच्छाकार

मै आपको पत्र दे चुका । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । आनन्दसे स्वाध्याय करिए । स्वाध्यायका तात्पर्य आत्मा पदार्थ पर से भिन्न है, ज्ञाता दृष्टा है । कोई द्रव्य का कोई द्रव्य न कर्ता है न धर्ता है और न नाशक है । व्यर्थ की कल्पना छोडिए । मैं तो कोई ज्ञानी विज्ञानी नहीं किन्तु जो वीतरागी विज्ञानी हैं उनकी भी आशा छोडिए । अपनी भूल मेटो यही शिवमार्ग है ।

इटावा,
वैशाख सुदि ९, स २००७

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - २०)

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

आपकी सम्मति प्रशस्त है परन्तु वहा पहुँचना तो कठिन हो रहा है । शरीरशक्ति प्रबल नहीं । भावना यही है जो आपकी सम्मति है । मै आपको निजी समझता हू । सर्व त्यागी मण्डलसे इच्छाकार ।

इटावा,
जेठ सुदि २, स २००७

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१७ - २१)

श्रीयुत बाबु गोविन्दप्रसादजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । अब मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन पक्कपान सदृश ही होता जाता है । गर्मी के प्रकोपसे एक मील चलना असम्भव है । कहा यह उत्साह था जो श्री गिरिराज के पादमूल मे समाधि करूगा । अब कहा यह भावना जो एक स्थान मे शान्तिसे जीवन यापन करू । अब अन्तरगसे किसीसे भाषण करने को उत्साह नहीं होता किन्तु श्रद्धामे न्यूनता नहीं । आप भी शरीरकी कुछ भी दशा हो परिणामोमे उत्साह रखना । **कल्याणका मूल परिणामकी अमलता है, समलता घातक है ।** समलताका कारण अन्तरङ्गसे भेदज्ञानका अभाव है । अत अपनेको भेदज्ञानसे ओतप्रोत रखना । गल्पवादमे काल न जावे । भगवती आराधनाका स्वाध्याय करना । शल्य न करना । अब समय सावधानीका है । बाबु धन्यकुमार इच्छाकार, योग्य है । तथा उनके घरसे भी इच्छाकार कहना ।

इटावा,
द्वि अषाढवदी ३, स २००७

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१७ - २२)

महानुभाव, इच्छाकार

मैने पत्र डालना बन्द कर दिया है । शरीर की अवस्था दूषित न हो ऐसा उपाय करना, यही कल्याणका पथ है । मेरा तो यह विश्वास है जो पर पदार्थमे मूर्च्छा त्यागो चाहे वह लौकिक पदार्थ हो, चाहे अलौकिक हो । **कल्याणका मार्ग तो निरीह वृत्तिमें हैं। उपेक्षा ही मोक्षकी जननी है** । अब एकोऽह नान्योऽहं यही भावना भावो । अब हमारा शरीर यात्रा योग्य नहीं ।

इटावा,
श्रावण वदी ६, स २००७

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१७ - २३)

श्रीयुत महाशय बाबु गोविन्दप्रसाद जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । अब वृद्धावस्थामे मकरध्वजकी आवश्यकता नहीं। आपको भी मै सम्मति दूंगा जो अब आप भी सर्व विकल्पोको त्यागिए । तथा अधिकाश यही भावना भाइए -

''जन्मे मरे अकेला चेतन सुख दुखका भोगी''

इसका ही सहारा कल्याणकारी है । कोई शक्ति नहीं जो आत्माका कल्याण कर सके । हम मोही जीव ससार भरको अपना कल्याणकारी मान लेते है । जैनसिद्धान्त तो यह कहता है -

''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:''

सर्वथा असत्यार्थ ही न मानना यही पाठ ही ठीक है । धन्यकुमारजी आगए अच्छी तरह है ।

ललितपुर,
श्रावण सुदि ४, स २००९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१७ - २४)

श्रीयुत महाशय बाबू गोविन्दलाल जी, जैन इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मै आपका अपराध क्षमा करूँ इसका यह अर्थ हुआ जो कि आपको अपराधी बनाऊँ अत मेरी तो यह भावना है जो आप किसी के अपराधी नहीं और न है, और न आगामी होगे । थोडे कालकी ससार स्थिति है उसे पूर्ण कर लो पश्चात् यथा नाम तथा होगे । खाने पीनेसे आत्मा अपराधी नहीं होता । **गृद्धता अपराधकी जनक है । सो नही होनी चाहिए ।** अत पर्यायानुकूल भोजन करने मे कुछ भी अपराध नहीं । व्यर्थके विकल्प मत करो । सानन्द से स्वाध्याय करो। कार्य करते जाओ । सबसे ममता त्यागो । मेरी तो यह श्रद्धा है जो अन्य से ममता

त्यागो यह तो सब कोई कहता है पर धर्म तो यही कहता है कि अपनेसे ममता त्यागो । हम क्या कहे?"

"अपनी सुध भूल आप आप दुख उपायो ।"

किसी को क्या दोष देवे ? अस्तु पछताने मे कुछ लाभ नहीं । सन्तोष ही लाभका जनक है । **सन्तोषका अर्थ परसे सम्बन्ध छोड़नेका है** । अब जहाँ तक बने आपकी दृष्टि ही कल्याण जननी है । अनादि कालसे पर दृष्टि ही रही, हमने परको अपराधी समझा यही पहली त्रुटि जीवनमे रही, इसे त्यागो । सब त्यागियो से इच्छाकार । मैने न तो कोईका अपराध किया और न कोईने मेरा अपराध किया, अत क्षमा मागना उचित नहीं समझता हूँ । यदि मै अपराधी हू तो अपना ही अपराधी हू । जब तक इसे न छोडूगा कुछ भी न होगा ।

क्षेत्रपाल ललितपुर
अषाढ सुदी ३, स २००९

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

२८, २९ मई १९४५

* पर पदार्थो मे इतनी आसक्ति जो इसके बिना आत्मज्ञान को तिलाजली दे चुके हो । आत्मीय सत्ता को भी भूल गये । आत्मीय सत्ता का अभाव नहीं होता, किन्तु तुम तो कर ही चुके हो । कोई उत्तम पुरुष अपने को पशु मान ले । एतावता वह पशु नहीं । परन्तु आपकी भूल से पशुवत् आचरण कर रहा है । वास्तव मे वह पशु नहीं, यह ठीक है । परन्तु ज्ञान मे अपने को पशु मान तो रहा है । पशुतुल्य आचरण भी करता है । अत उस समय मनुष्य के आचरण से हीन होकर वह अवश्य अज्ञानी है और अज्ञानता का फल भी उसी को भोगना पड़ेगा । नहीं, नहीं भोग रहा है ।

ब्र. हुकुमचन्द्रजी

(श्रीमान् ब्र हुकुमचन्द्रजीका जन्म मेरठ जिलान्तर्गत सलावामे कार्तिक कृष्णा ९ वि स १९५२ को हुआ था । पिताका नाम लाला माडूमलजी और जाति अग्रवाल है । प्रारम्भिक शिक्षा लेने के बाद ये अपने घरका कार्यभार स्वय देखने लगे । इनके यहॉ जमींदारी और कपडेका व्यापार होता था ।

इनका विवाह तो हुआ था । किन्तु ३५ वर्षकी उम्रमे ही पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृह-कार्यसे विरत हो आत्मसाधनामे लग गये । स्वाध्याय द्वारा इन्होने षट्खण्डागम और कषायप्राभृत जैसे महान् ग्रन्थोमे भी प्रवेश पा लिया है । सर्वप्रथम इन्होने ब्रह्मचर्यके साथ व्रत प्रतिमाके व्रत लिए थे और कुछ काल बाद ब्रह्मचर्य प्रतिमा स्वीकार कर ली है । दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णीजी महाराज है ।

अपने गार्हस्थिक जीवनमे इन्होने काग्रेस द्वारा देशसेवाके कार्यको भी रुचिपूर्वक किया है । कुछ दिन तक ये नगर काग्रेसके मत्री भी रहे है । उत्तर प्रान्तीय गुरुकुल खुल जानेपर ये बहुत कालतक उसके अधिष्ठाता भी रहे है । आजकल ये इस गुरुकुल द्वारा धर्म और समाजकी सेवा करते रहते है । इनकी चित्तवृत्ति माध्यस्थ्य, सेवाभावी और निरहकारी है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति है । अक्सर इनका अधिक समय उनके सानिध्यमे जाता है । अलग रहने पर पत्राचार द्वारा अपनी जिज्ञासा पूर्ति करते रहते है । उत्तरस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी महाराजद्वारा जो पत्र इन्हे लिखे गये है उनमे से कतिपय उपलब्ध हुए पत्र यहाँ दिये जाते है ।)

(१८ - १)

श्रीयुत महाशय पण्डित हुकुमचन्द्रजी जैन ब्रह्मचारी, योग्य इच्छाकार

मै का सुदि २ को श्री गिरिराजजीकी ओर प्रस्थान करूँगा वहा पर महान् समारोह होनेवाला है । व्याख्यान तत्त्व विवेचन तो होवेंगे ही किन्तु यह होना प्राय· कठिन है । जो ४ या ६ व्यक्ति जो कि सर्व तरहसे सम्पन्न हैं मोक्षमार्ग पर आरूढ हो । मोक्ष मार्गसे तात्पर्य निवृत्तिमार्गसे है । सयम बिना सम्यग्दर्शन ज्ञान कर्मबन्धन नहीं काट सकते । आपेक्षिक विवेचना कर मूल अभिप्रायका घात नहीं होना चाहिए ।

अत जहांतक पुरुषार्थ हो इसमें लगाना जिससे मेला और यात्राकी सार्थकता हो। आज जो धार्मिक संस्था यथार्थ नहीं चलती उसका मूल कारण हमारे गृहस्थ भाई त्यागी होकर सस्था नहीं चलाते। अत परिश्रम कर अबकी बार वह प्रयत्न करना जो ४ या ६ गृहस्थ आप लोकोकी गणनामें आ जावे। केवल शब्दो की बहुलतासे प्रसन्न हो जाना पानी विलोवन सदृश है। तथा वहा पर जो सस्था है उसमे २०० छात्र अध्ययन करें ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए। तथा आपकी जो मण्डली हो कमसे कम २० महानुभाव उसमे होना चाहिए। इस प्रकारके व्याख्यान होना चाहिए जो प्राणीमात्रको उसमे रुचि हो। **धर्म्म वस्तु व्यक्तिगत है। विकाशकी आवश्यकता है।** जब असख्यात लोकप्रमाण कषाय है तब उनका अभाव भी उतने ही प्रकारका होगा। पूर्ण कषायके अभावका नाम ही तो यथाख्यातचारित्र है। एक भी भेद जहा रहे वहा वह यथाख्यात नहीं हो सकता। भगवान् समन्तभद्रने तो लिखा है - **'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो'**- आदि अत ऐसा विवेचन करो जो सर्व मनुष्य लाभ उठा सके।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - २)

श्रीमान् पं. हुकुमचन्द्र जी तथा सर्व मण्डली, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। प्रसन्नता इस बातकी है जो आप लोक सामूहिक रूपसे एक विशेष क्षेत्रपर तत्त्व विचार कर रहे हैं। किन्तु अब अन्यत्र जानेकी इच्छा करना ही आपके तत्त्व विचारमे बाधक है। इस विकल्पको त्यागो जो अन्यत्र विशेष लाभ होगा। लाभ तो पर समागम त्यागमे है, न कि पर समागममे। हम शिखिरजी मोह वश जा रहे हैं। लाभ विशेष होगा यह नियम नहीं। फिर आप ये कहोगे क्यों जा रहे हो। मोहकी प्रबलतासे।

आपका समागम अति उत्तम है। तत्त्व विचार क्षयोपशमके अधीन है। कल्याण होना मोहकी कृशतामे है। समयसार ही कल्याणमे प्रयोजक हो सो नहीं, **कल्याणका कारण तो अन्तरंगकी निर्मलता है। कल्याणकी व्याप्ति मोहके अभावमें है।** सर्वागमका ज्ञान इसका साधक नहीं, अत भूलकर इस भीषण गर्मीमे अपने उपयोग का दुरुपयोग न करिए। मैं आधे जेठमे गया पहुँचूगा। जहा पर हूँ यहा से २५ मील है। श्री हस्तिनागपुरके मदिर की शीतलताको त्याग बिहारकी ज्वालामे

भूलकर अभी मत आइए । मै आपको तथा आपकी मण्डलीको उत्तम दृष्टिसे देखता हूँ, अत यही सम्मति दूगा जो बाहर जानेके विकल्प त्यागिए । मै तो अब मदिरमे जाता हूँ तो प्रतिमा के समक्ष यह भावना व्यक्त करता हू - भगवन् ! आपके ज्ञानमें ऐसा देखा गया हो जो अब वापिस न आना पडे । मेरी कार्य मात्र करने मे यही भावना रहती है जो अब फिर न करना पडे, चाहे शुभ कार्य हो चाहे अशुभ । आप लोक ज्ञानी है । ज्ञानके साथ मुमुक्षी भी है । फिर अब चिर स्थितिका एक स्थान बनाकर सर्वसे सम्बन्ध छोडिए और मुझे भी अपना जान इन विकल्पोसे मुक्त कीजिए । विशेष क्या लिखू ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - ३)

श्रीयुत महाशय पं हुकुमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने । आप विवेकशील हैं, अतएव आप जहॉ रहेगे वहॉ उसीका प्रचार होगा । आप करे चाहे न करे मेरी तो यह सम्मति है जो अन्तरग परिणामोमे परमे निजपना न आवे यही तत्त्व मोक्षका उपयोगी है । चाहे कहो चाहे सुनो, जब तक परको नहीं भूलोगे शान्ति न मिलेगी । एक ही तात्पर्य है । **'आतमके अहित विषय कषाय'** इसका वही अर्थ है । मुजफ्फर नगरवालो को यही सदेश कहना और कहना इसीके अनुयायी बने । जो काम करो यह तत्त्व न भूलो चाहे वह कार्य यथाशक्ति कुछ हो, आपका सम्पर्क सर्वको इष्ट है । सम्पर्कसे लाभ होता ही है, नियम नही । परन्तु जब होगा तब ससर्गसे ही होगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - ४)

श्रीयुत महाशय लाला हुकुमचन्द्रजी साहब, श्रीयुत पण्डित शीतलप्रसादजी व श्रीयुत लाला मक्खनलाल जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप लोको का समागम अत्यन्त हितकर है परन्तु उदय भी होना चाहिए । कल्याणका मार्ग सुलभ है, किन्तु हृदय सरल होना आवश्यक है । हृदयकी सरलताका अर्थ है अन्तरङ्ग मोह ग्रन्थी नही होनी चाहिए । हम अपनी

कहते है । ७८ वर्षके हो गए परन्तु भीतरसे जिसको कहते है उसपर अमल करनेसे वञ्चित रहे । निरन्तर जगत् की चिन्तामे व्यस्त रहे । इसमे अन्तरङ्ग रहस्य स्वप्रशसाके भिक्षुक रहे । बाहरसे भद्र बनना अन्तरङ्गकी भद्रताका अनुमापक नहीं । आप लोकों को धन्य है जो निर्ममतासे क्षेत्र पर धर्मध्यान करने का लाभ ले रहे हो । आप कुछ विचारे, हमे जैसा ज्ञानमे आया लिख दिया । हमारा विचार श्री ईसरीमें अन्तिम आयुके अवसान का है । अब श्री पार्श्वनाथका ही शरण है । आपको वचन दिया था उसका पालन न कर सके इसकी क्षमा चाहते है ।

पौष वदि ३, स २००९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१८ - ५)

श्रीयुत महाशय लाला हुकुमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार अवगत किए । मेरी तो अन्तरङ्गसे यही सम्मति है - आप लोकोने पुरुषार्थ कर जो समागमका लाभ लिया है वह सर्वको हो । अत जहाँ तक बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ चले उसे एक मिनटको भी भग न करना । मुझे तो आप महानुभावो के समागमसे अपूर्व लाभ होगा इसमे कोई शका नहीं, परन्तु मैं हृदयसे यही चाहता हूँ जो आप लोको का निरपाय समागम हुआ है वह आनिर्वाण भग न हो । पुरुषार्थोमे परमपुरुषार्थ मोक्ष ही है । तीन पुरुषार्थोमे शान्ति नहीं । चरामवस्था भी उनकी हो जावे, परन्तु उनमे शान्तिका आस्वाद नहीं । तथा हि -

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्म्मणा ।
एभ्यः संसारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मनः ।।
विहाय बैरिण काममर्थञ्चानर्थसंकुलम् ।
धर्म्ममप्येतयोर्मूलं सर्वत्र चानादरं कुरु ।।

तात्पर्य यह है जो धर्म अर्थ कामसे ससारमे शान्ति नहीं प्रत्युत अशान्तिकी ही उत्पत्ति होती है । अत आप लोकोका जो पुरुषार्थ है वह निरपाय पदके अर्थ है । समागम उत्तम हो यह भी एक कहनेकी शैली है । न हो यह भी एक कथन पद्धति है । वस्तुकी स्वच्छावस्था ही तो हमको प्राप्त हो, निरन्तर यही ध्येय ज्ञानीके है । यद्यपि

श्रद्धाकी प्रबलतासे सम्यग्ज्ञानीकी महिमा अनिर्वाच्य है तथापि चारित्रमोहनीयकी महिमासे ६ मास मृत मनुष्यको बलभद्र छोड न सका । अस्तु, इसके लिखने का आपके सामने अवसर न था । विशेष क्या लिखूँ, **कल्याणका मार्ग आपमें है । हम अन्यत्र अन्वेषण करते है** । यही महती है ( ) है । बीचमे जो है सो मैं क्या लिखूँ । मेरा तो यह कहना है - जितना पुरुषार्थ शब्द वर्गणाओमें हमारा है उसका शताश भी यदि आभ्यन्तरमे हो तब यह जो कुछ पर्य्यायमे होता है, अनायास शान्त हो जावेगा । बलवन्तसिह यहाँ आ गए सानन्द है । सर्वमण्डलीसे यथायोग्य । सत्समागममे यथार्थ निर्णय हो सकता है, आजकल प्राय जो लिखनेकी पद्धति है उसमे अहम्मन्यताकी गन्ध प्राय रहती है । अस्तु हम लोको को उचित है जो अन्त करणकी शुद्धिपूर्वक तत्त्वका निर्णय करे । यदि अन्त करण न माने मत मानो फिर निर्णय करो ।

भाद्र सुदि ९, स २०१०

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - ६)

योग्य इच्छाकार

आज भगवान् के निर्वाणका दिवस है । साथी लोक पावापुर गए है । कुछ मनमे आया जो लोकोको कुछ लिखू । अन्तरगसे मै आप लोको के समागमको चाहता था परन्तु कारणकूटके अभावमे नहीं हो सका । परन्तु आपको सम्मति देता हू जो भूल कर भी हस्तनागपुर क्षेत्र को त्याग कर अन्यत्र न जाना । कहीं कुछ नहीं और सर्वत्र सब कुछ है । तब भ्रमण करने से क्या लाभ । वहीं पर जो लाभकी वस्तु है अपनेमे ही है । जब यह सिद्धान्त है तब व्यर्थ भमण करनेसे क्या लाभ, प्रत्युत हानि है । मोही जीव जो न करे सो थोडा । मोही जीव ही तो यह कहता है -

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत् परान् प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदह निर्विकल्पकः ।।

अनवस्थित चित्तवाले तो कुछ भी नहीं । उनका समागम भूलकर न करना । और आपकी जो मण्डली है, प्रत्येक व्यक्तिको इच्छाकार कहना और यह कहना सर्वसे ममता त्यागो । सर्वसे तात्पर्य अपनेसे भी है । जो अपनेसे ममता त्याग देगा वह फिर

अन्यसे ममता करेगा सम्भव नहीं । यदि उचित समझो तब गुरूकुलकी अपील हो तो यह सन्देश हमारा सुना देना जो आप लोको का व्यय हो उसमे १/- रु में पैसा गुरुकुल को देवे । जैसे आपका वार्षिक व्यय ४०००) है तब ६२।।) गुरुकुलको है । खर्च भोजन वस्त्र विवाह । छात्र सम्मेलनमे यह कहना जो छात्र १००) मासिक व्यय करें वह १।।) गुरुकुल को देवे । यदि क्षुल्लक मनोहरजी आए हों तब हमारी इच्छाकार कहना और कहना गुरुकुल सस्था को पुष्ट करो इसमे विशेष लाभ है । निवृत्ति मार्गमे यह सर्वथा अनुचित नहीं ।

जिनभवन गया,
का व ३०, स २०१०

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(१८ - ७)

श्रीयुत महाशय लाला हुकुमचन्द्रजी, योग्य कल्याणभाजन हो

सानन्दसे स्वाध्याय होता होगा । ज्ञानके द्वारा ही आत्मकल्याण होता है । हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ यही है । अनादि कालसे इसको न पाकर जो दशा जीवकी हुई वह प्रत्यक्ष है, परन्तु जीव लापरवाहीसे उसका प्रतीकार नहीं करता । अत्यन्त सन्निहित प्रतीकार है, परन्तु परके द्वारा ही उसको चाहता है यही दोष है । जब तक यह दोष न जावेगा यही दशा होगी । हमने सुना है मुजफ्फरनगरमे पञ्चकल्याणक होनेवाले हैं । क्या यह सत्य है । यह सत्य है तब आपका शुभागमन तब तक रुक ही जावेगा । यदि वहावाले इसे वहीं पर एक ऐसा ज्ञानाश्रम खोले जिसमे आप की गोष्ठी वहा रहे तब प्रान्त भरके मुमुक्षुओको आश्रय मिले । मै हृदयसे लिखता हूँ । विशेष आपके समागमको सर्व चाहते हैं । वहा की समाज विवेकशील है ।

अ सु १० स २०११

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - ८)

श्रीयुत महाशय पं हुकुमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द होगे । सानन्द तो असम्भव नहीं । मेरा तो विश्वास है, आनन्द का विपरिणमन बहु कारणसाध्य है और आनन्दका विकाश स्वाधीन है । परन्तु अज्ञानी जीवकी मान्यता ही विघातक है । अत जिसे आनन्दरसामृत पान करना हो उसे पराधीनताका त्याग करना उचित है । आपकी मण्डली जो हो सर्वसे यही बात कहना। हमारी तो बुद्धिमे आता है जो व्यग्रता नहीं होना चाहिए । यह कार्यमात्रका बाधक है।

ईसरीबाजार,
आश्विन सुदि ६, स २०११

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - ९)

श्रीयुत महाशय पं. हुकुमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

महानुभाव सकल पश्चान मुजफ्फरनगार योग्य कल्याणपात्र हो । क्या लिखू अब मेरी शक्ति इस योग्य नहीं जो आप लोको के सम्पर्कमे आ सकूँ । यदि मेरी सम्मति मानो तब स्वय आप लोक सर्व कर सकते है । आपके प्रान्तमे बाह्य साधन भी है, उपयोग करना चाहिए । प हुकमचन्दजी एक योग्य व्यक्ति है । हम भी उपयोग कर सकते है परन्तु उस ओर लक्ष्य नहीं । आप लोक तो साक्षर है । चारो जाति मे श्रेयोमार्ग खुला है । साक्षान्मार्ग इसी पर्य्यायमे है । परन्तु हम तो अपने को बिलकुल अकर्मण्य समझते है । एक ने कहा है -

अहो निरञ्जन शान्तो बोधोऽहं प्रकृते: पर: ।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बित: ।।

जिस समय उस ओर लक्ष्य दिया यह ससार अनायास मिट जावेगा । गल्पवादके रसिक नहीं होना चाहिए । हम तो अब लिखनेमे भी आलस करते है ।

ईसरी बाजार,
पौषसुदि ११, स २०११

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - १०)

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी हुकुमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । अशुद्ध साजन ये भावो के विशेषण है, विशेष कुछ नहीं । हमारा स्वास्थ्य अब अवस्थानुकूल है । आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । श्रीशीतलप्रसादजी से इच्छाकर कहना और जो जो महाशय हो सर्वसे यथायोग्य कहना । मेरी तो यह सम्मति - मार्गदर्शकका स्मरण मोक्षका कारण नहीं । उसने जिन कारणो से जो अभिमत प्राप्त किया उन कारणो पर चलना चाहिए ।

फागुन बदि ३०, स २०११

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१८ - ११)

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी हुकुमचन्द्रजी, योग्य इच्छामि

पत्र आया, समाचार जाने । आप सानन्द होगे । ससार का मूल कारण यह आत्मा जब अशुद्ध साजन भावरूप परिणमन करता है तभी तो ससारका जनक होता है अशुद्ध भावो का तादात्म्य आत्मासे । इन्हीं भावो का नाम रागादि है और साजन भाव परिणमन पुद्गलोका है । जिसे ज्ञानावरणादि कह सकते है । ये दोनो अविनाभावी हैं । एकके अभावमे अन्य नहीं रह सकता है । जिस समय सूक्ष्म लोभका अभाव होता है अन्तर्मुहूर्त्त बाद ही ज्ञानावरणादि कर्मकलक अपने आप उदय देकर खिर जाते हैं । अत आवश्यकता राग दूर करने की नहीं। वे तो स्वय काल पूर्ण कर विनष्ट हो जावेगे और न मोहादि द्रव्यकर्म पृथक् करने की है । केवल रागमे रा न करने की आवश्यकता है । जिस समय रागादि परिणाम हो, भीतरसे उनमे रुचि न हो । विशेष नहीं । अब हमारी अवस्था कुछ भी परिश्रम करने मे अक्षम हैं । सर्व साधर्मियों से उपेक्षारूप रहे । यही सदेश कहना । जितना घनिष्ट हो उससे प्रथम ही यही सदेश कहना । गुरुकुलका ऐसा उत्सव करना जिससे मासवाद फिर लोको को बिना पत्रिका के स्वयमेव आनेकी रुचि हो । छात्रो की ऐसी रुचि हो जो ब्रह्मचर्य्य ही में जीवन व्यय हो । ऐसा दृश्य कर्त्तव्यरूपमें छात्रलोक दिखावें जो युवको के मनमे गुरुकुलमें छात्र बनकर अध्ययन करे ऐसी जिज्ञासा हो जावे । लाला मक्खनलालजी सानन्द होगे । श्री लाला

त्रिलोकचन्द्रसे कहना तत्त्वश्रद्धान शून्य मनुष्यकी दशा जो होती है उस पर दोष करना ही व्यर्थ है ।

फा सु १०, स २०११

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१८ - १२)

श्रीयुत महाशय पण्डित हुकुमचन्द्रजी, योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने । आप वस्तुस्वरूप जानते है । क्या लिखे, जिसमे शान्ति मिले सो करना । सम्यग्दृष्टि उदयानुकूल वर्त्तमानमे कार्य्य करे इसमे कोई विवाद नहीं । परन्तु उस उदय मे वह शक्ति नहीं जो उसके मूल श्रद्धानको हानि पहुँचा सके । ससारका कारण परमार्थसे तो उसके रहा नहीं । मेरी तो यह सम्मति है जिससे मुजफ्फरनगरवालो को आप द्वारा शान्ति मिले सो करिए । हमारी ओरसे यह कह देना-

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जन्यः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ।।

अत समाजको यह कह देना, यदि कल्याण चाहते हो तब श्लोक पर दृष्टि दो -

वैशाख वदि ३० स २०१२

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - १३)

कल्याण भाजन हो

यह क्या लिखते हो । अकुर हीसे तरु होता है । अत कुछ न कहो । मोहकी महिमामे जो न हो थोडा है । मोह भावमे तो कुछ नहीं होता । आप सानन्दसे जीवन बिता रहे हो । मेरा विश्वास है तत्त्वज्ञ जीव कहीं रहे कुछ व्यग्र नहीं होता । व्यग्रताका कारण परको अपनाना है । जिसके यह छूट गया वह सदा अव्यग्र रहता है । जो परको अपनाते है वे कभी भी आनन्दका स्वाद नहीं पाते । **जिनोंने आप जाना उनोके सर्व कल्याण हो गया ।**

येन द्रष्ट परं ब्रह्म सोऽह ब्रह्मेति चिन्तयेत् ।
किं चिन्तयति निश्चिन्तो द्वितीय यो न पश्यति ।।

ईसरी बाजार, जि हजारीबाग
जेठ सुदि ६, स २०१२

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१८ - १४)

श्रीमान् प हुकुमचन्द्रजी, श्रीमान लाला शीतलप्रसादजी
योग्य कल्याणमय जीवन हो

पत्र आया, समाचार जाने । गुरुकुलकी सेवा आप लोक कर रहे है यह तो उपचार है । परमार्थसे आप अपनी ही सेवा कर रहे हैं । सेवा ही बलात्कार करनी पडती है । जिसकी सेवा कर रहे है परमार्थसे तो वह तो न निरोग है और न रोगी है । परन्तु अनादि मोहादि निमित्तक रोगोसे आक्रान्त हो रहा है । एतन्निवारणके अथ ही यह औषध है । मेरी तो यह श्रद्धा है, जो नवीन रोगका कारण मिट गया है । परन्तु जो प्राचीन रोग सत्तामे बैठा है उसके अपहरण करने के अर्थ ही यह गुरुकुल सेवा, साधर्मियो की वैयावृत्य, स्वाध्याय प्रवचन, पञ्चपरमेष्ठी स्मरण आदि उपचार हैं । काल पाकर यह औषध भी छूट जावेगी । हम लोक अपने को कायर न माने और न यह कहे क्या करे पञ्चम काल है । रहो हम तो पञ्चम काल नहीं । विशेष क्या लिखें, पक्वपान हैं । फिर भी आप लोको की शूरता वीरता और वीतरागता देख चित्तसे प्रसन्न रहते हैं । आपके जानेसे हमको अन्तरङ्गसे जो मोही जीवोको होता है वह ऊपरसे न हो फिर भी है । किन्तु प्रसन्नता इस बातकी है जो आपकी मण्डलीको आपके वहा रहनेसे आनन्द है । परमार्थसे तो जितने उपद्रव दूर हो अन्तरगसे उतना ही प्रसन्नता होनी चाहिए । हम लिखना जानते है परन्तु उतना कर्त्तव्यमे नहीं लाते यही दुर्बलता है । सर्व मण्डलीसे यथायोग्य कहना और यह कहना जो उत्तरप्रान्तमे विशेष शीतलता है वह हममें भी आवे । श्री हरिश्चन्द्र दर्शनविशुद्धि । समागम पाकर कमल न रहना ।

ईसरीबाजार,
आषाढ बदि १, स २०१२

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१८ - १५)

श्रीयुत महाशय पं. हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, श्री प. शीतलप्रसादजी,

योग्य कल्याणभाजन हो

पत्र आया, समाचार जाने । आप लोक भ्रमणकर परोपकार कर रहे है । इस अवस्थामे ऐसा होना स्वाभाविक है और स्वभावाप्तिमे बाधक नहीं प्रत्युत साधक ही है। व्यर्थकी उदासीनतामें कुछ तत्त्व नहीं । बडे आचार्य प्रमत्तगुणस्थान तक क्या यह नहीं करते । तद्रुक्त -

यत्परै: प्रतिपाद्योऽहं यत्परान्प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पक: ।।

क्या यह निर्विकल्पकता मोहाभावके पहले नहीं होती है ? यदि होती तब ये वाक्य न निकलते । अत मै तो आपके कार्य्यसे प्रसन्न हू । धार्मिक वृत्तिका विस्तार ही होना श्रेयस्कर है । वहा पर जो मण्डली हो उसको कहना जो धर्मके कार्य है उनमे इसी प्रकारकी तन्मयता कल्याणजननी है । सर्वसे महान् यह भाव होना चाहिए जो महापुरुष हुए वे मनुष्य ही तो थे । हम भी तो मनुष्य हैं । किन्तु अन्तर इतना ही है जो हम लक्ष्यकी ओर दृष्टिपात नहीं देते । दृष्टि तो है । जो ज्ञान परको जाने और आपको न जाने यह बुद्धिमे नहीं आता । हम आत्माको नहीं जानते सो बात नहीं, जानते है। किन्तु उसमे जो विकार भाव है उन्हे अपनाने लगे । अपनानेवाले हम ही तो है यह प्रत्यय किसे नहीं । रही बात ये जो विकृतभाव है वे औपाधिक है । जो क्लेशकर है उसे त्यागो । शरीर वृद्ध है, विशेष लिखनेको उत्साह नहीं होता ।

नोट - यदि कल्याणकी इच्छा है तब परका सहारा त्यागो इससे अधिक कुछ नहीं । विशेष बात जो भाई कल्याणके अभिलाषी है वह तीर्थयात्राकी तरह १ मास २ मास हस्तनागपुर रहे । कल्याणका कारण गृहत्याग भी तो है । मूर्च्छा त्याग ही तो कल्याण है । ज्ञानार्जन का फल भी यही है । यदि यह नहीं हुवा तब जैसा धन वैसा ही ज्ञान । विचारसे कुछ अन्तर नहीं ।

ईसरी बाजार, हजारीबाग,
आषाढ बदि १२, स २०१२

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१८ - १६)

श्रीयुत महाशय पं हुकमचन्द्रजी साहब, योग्य कल्याणभाजन हो

मेरा तो यह दृढतम विश्वास है, जिसकी ज्ञानमें रुचि हो गयी उसको देव गुरु शास्त्रमे श्रद्धा हो गयी । यह तो उसका फल है । केवल ज्ञानगुणकी महिमा है जो स्वपरकी व्यवस्था बनाए है । उसके विभावमे यह सर्व दृश्यमान हो रहा है । उसके स्वभावमे तो वही वही है । अत सर्व विकल्पोको त्याग उसीका विकल्प रहे यही कर्त्तव्य मार्ग होना श्रेयोमार्ग है । अब हमारी अवस्था परिश्रम करने योग्य नहीं । यदि त्रिलोकचन्द्रजी मिले तो कहना - श्री विश्वम्भरको न देखो अपनेको देखो । बालकको आशिर्वाद ।

ईसरी बाजार, हजारीबाग,
अ सुदि ६, स २०१२

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१८ - १७)

श्रीमान ब्रह्मचारी पं हुकमचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । वहाँकी समाजकी कृतज्ञता जान परम प्रसन्नता हुई। मेरी तो यह सम्मत्ति है जो आप प्रथम भादो सुदि ५ से पूर्णिमा तक उन्हे सानन्दसे दशधा धर्मका व्याख्यान देकर तृप्त कर देवे । ऐसा करनेमे कोई क्षति नहीं । कल्याणका मार्ग तो हर कालमे है । पर्व विशेष दिनोमे होता है परन्तु जब सिद्धोकी स्थापना कर हम पूजादि व्यवहार करते है - मूर्तिमे भगवानकी स्थापना कर पूजादि करते है तब यह करना अनुचित नहीं । विशेष क्या लिखे । समाजको अब इस बातका प्रयत्न करना आवश्यक है जो स्वय परिश्रम कर तत्त्ववेत्ता बने । जो ज्ञान जगत् की व्यवस्था कर सके और स्वकीय स्वरूपको न जाने, समझमें नहीं आता । परन्तु हम औरोको उपदेश देते है स्वय उससे तटस्थ रहते है । अत जो चतुर हो उन्हे उचित है - १० दोहा या गाथा या चौपई या श्लोक प्रतिदिन कण्ठ करे । २ वर्षमे ७२० गाथा कण्ठस्थ हो सकती है, जीवकाण्डके पण्डित हो गए । इसी प्रकार ३ वर्षमे कर्मकाण्डके विद्वान् हो सकते हैं । १/२ श्लोक कण्ठ करे । १० वर्षमे और १/४ करनेसे २० वर्षमे नम श्रीवर्द्धमानाय

इतना भी प्रतिदिन याद करे । २० वर्षमें जीवकाण्ड कर्मकाण्डके प्रौढ विद्वान् हो सकते है । परन्तु टससे मस नहीं होना चाहते है । परसे ही सर्व हो जावे । सो तो आज तक हो ही रहा है । भगवानका नाम लेना भगवान् नहीं बनावेगा । भगवान् निर्दिष्ट पदपर चलनेसे भगवान हो जावोगे । करके देख लो । आपके पत्रसे सर्व प्रसन्न हुए । प्रसन्नताका कारण यथार्थ है । गुणानुरागी लोक है । श्री प शीतलप्रसादजीसे इच्छाकार । प त्रिलोकचन्द्रजीसे धर्मस्नेह । ज्ञान पानेका फल तो सर्वसे उपेक्षा करना। परन्तु यथाशक्ति कार्य भी करना । पूर्ण उपेक्षा तो पूर्ण चारित्रमे है । अविरत अवस्थामे तो असम्भव है, श्रद्धा मे है । परन्तु अभी वह विकाशमे नहीं । मै तो उन्हे वैसा ही मानता हूँ जैसा कि पहले मानता था ।

ईसरी बाजार,
भाद्र सुदि १, स २०१२

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१८ - १८)

श्रीयुत पं हुकमचन्द्रजी ब्रह्मचारी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । कल्याणका पथ तो मोहके अभावमें है । मेरी तो यह दृढ श्रद्धा है - जितने प्रयास सम्यग्दृष्टि करता है उसका उद्देश्य उन कार्योकी सन्तति अगाडी नहीं चाहता, अत सम्यग्दृष्टि ही सवर होता है । उसके कर्तृत्व बुद्धि नहीं । कर्तृत्व होना और बात है । दोष मेटनेको सम्यग्दृष्टि बनना अच्छा नहीं । श्री लाला मक्खनलालजी व श्री पण्डित शीतल प्रसादजीसे घने स्नेहसे कल्याणभाजन हो कहना । स्नेह पत्र तो स्नेह विरहका सूचक जानना । माघ बदि १४ से ३ दिन बनारस विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती होगी ।

पौष बदि ९, स २०१२

आ. शु चि
गणेश वर्णी

ब्र. कमलापतिजी सेठ

(श्रीमान् ब्र कमलापतिजी सेठका जन्म लगभग सत्तर वर्ष पूर्व मध्यप्रदेशके वरायठा (बडा) मे हुआ था । जाति गोलापूर्व थी ।

इनके दो विवाह हुए थे । उनमेसे प्रथम पत्नीसे एक पुत्रकी प्राप्ति हुई थी और दूसरी पत्नीसे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी । सब सन्तानें जीवित है और सदाचारपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन यापन कर रही है ।

सेठजी स्वभावके सरल और धर्मात्मा पुरुष थे । जो भी इनसे सम्पर्क स्थापित करता था उसपर ये अपनी ममता उडेले बिना नहीं रहते थे । अपने जीवनमे इन्होने ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार किये थे और उनका अच्छी तरह पालन करते थे ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके प्रति इनका विशेष अनुराग था और अधिकतर समय उन्हींके सानिध्यमे जाता था । यदाकदा अलग होनेपर ये पत्रो द्वारा अपनी जिज्ञासा प्रकट किया करते थे । उत्तर स्वरूप पूज्य वर्णीजी इन्हे जो पत्र लिखते थे उनमेसे उपलब्ध हुए कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते है ।)

(१९ - १)

श्रीमान् महाशय सेठ कमलापतिजी, योग्य इच्छाकार

आपकी प्रवृत्ति बहुत ही निमित्तमार्गकी ओर प्रसार कर रही है । इसका आपको तो आनन्द आता ही होगा, परन्तु हमको श्रवण कर ही आनन्द आता है । मनुष्य-जन्म लाभका यही फल है । अनन्त मनुष्य जन्म पाए, परन्तु सयमरत्नके बिना नहीं के तुल्य हुए । यदि इस जन्मका भी सयमकी रक्षामे उपयोग न किया तब इतर जन्मो से कौनसी विशेषता इसके लाभ मे पायी । विषयसुखकी सामग्री तो सर्वत्र सुलभ है । संयमके लाभकी योग्यता इसी मनुष्यजन्ममे है । जिन महाशयोने या महापुरुषोंने इस ओर लक्ष्य दिया उन्हींने कुछ अपने महत्त्वको समझा । हम तो आपके वियोगसे व्यामोहजालमें उलझ गये । मनुष्य पर्यायबुद्धि होता है, यह सर्वथा नहीं । हम सदृश ही इसके पात्र हैं। परन्तु फिर भी निवृत्तिमार्गके उत्कृष्टकी श्रद्धा हृदयमें जाज्वल्यमान रहती है । अनेक बार मनमे उत्कृष्ट श्रावकके उत्कृष्ट भावकी अभिलाषा रहती है, परन्तु अन्तरङ्गकी

दुर्बलता और कारण-कलापके अभावमे मनकी कल्पना मन ही मे विलीन हो जाती है। अहर्निश निष्परिग्रहव्रतकी अभिलाषा रहती है और ऐसा भी नहीं है जो कुछ भाव न हों, परन्तु वास्तवमे उपादानकी न्यूनता प्रबल बाधक है। जिन जीवोकी भवस्थिति अल्प रह गयी है उन्हे अनायास साधन मिल जाते है। जिनकी भवस्थिति बहुत है उन्हे साक्षात्कारण मिलने पर भी विपरीत परिणमन हो जाता है। जैसे, मरीचिकुमार। इसका यह तात्पर्य नहीं जो पुरुषार्थकी ओर दृष्टिका निषेध हो। श्रद्धामे अन्तर न होना चाहिए। आपके समागमके बाद हमको तो निरन्तर हानिका ही लाभ हुआ। इसमे किसी का दोष नहीं। मै निजकी भूल ही मानता हू। फिर भी -

"जो जो देखी वीरप्रभुने सो सो होसी वीरा रे"

इससे चित्त व्यग्र नही होता।

अब तो अन्तरङ्गसे यह प्रबल भावना हो गई है जो वर्षा बाद पार्श्वप्रभुके शरणमे अपने को पहुँचा देना। फिर क्या होगा श्री पार्श्वप्रभु ही जाने। हमारी भावना यह है तथा ऐसा नियम भी है जो भावनाके अनुकूल कार्य होता है। सम्भव है जो हमारी भावना सफलीभूत हो जावे। यह भी नियम नहीं जो आप लोगोके समागमादिसे हमारी कषायकृशता हो जावे। निमित्त तो निमित्त ही है। आप लोगोके परिणामोकी कथा श्रवण कर कुछ साहस होता भी है, परन्तु फिर अन्तमे यही मान लेना पडता है जो कार्यकी उत्पत्तिके प्रति मुख्य उपादान यथार्थ होना चाहिये। उपादानकी योग्यता इस पर्याय मे है। सम्भव है, व्यक्त हो जावे। सयम कोई अलौकिक वस्तु नहीं। सज्ञी जीव मनुष्यपर्यायमे उसका लाभ ले सकता है। हम लोग भी तो उसके पात्र हो सकते है, परन्तु मनोदुर्बलताके कारण दैन्यवृत्तिवाले बन रहे है। बाह्य तपकी कठिनता देखकर ही भयभीत हो जाते है। परमार्थसे विचार किया जावे तब भय तो कषायमे है। इसके अभावमे काहेका भय। अस्तु, हम आपके व्रतकी प्रशसा करते है। इस वाक्यका अर्थ यह है जो व्रत वस्तु सर्वथा प्रशस्त है। श्रीबाबू गोविन्द, सोहनलालजीसे दर्शनविशुद्धि। यदि वहॉ पर पतासीबाई हो तब मेरा उनसे इच्छाकार तथा सावित्री, चन्दाबाई, सरस्वती आदिसे इच्छाकार सबसे कहना। मनुष्य-जन्मका यही फल है जो अपनी आत्माको सयममार्गमे लगाना। और सामग्री सब सुलभ है परन्तु सबसे कठिन सयम मिलना है। यह साधारण लोगोकी धारणा है, परन्तु ऐसा नहीं। और सामग्री का लाभ तो कठिन है, क्योकि पराधीन है। सयम मिलना स्वाधीन

है, क्योकि आत्मधर्म है । जैसे क्रोध करनेमे अनिष्टपदार्थका सहवास आदि अनेक कारण चाहिये और **क्षमाके लिये केवल आत्माकी आवश्यकता है** । विशेष क्या लिखे - कषायसे दग्ध हैं । अत बुद्धि अपना कार्य नहीं करती । अथवा यो कहिये बुद्धिका काम तो होता है, परन्तु कषायके समिश्रण होनेसे स्वच्छ नहीं होता । अत जिन महानुभावोको आत्महित करना हो उन्हे इसका सस्कार मिटाना चाहिये । अथवा मिटावो । हमको यही उचित है जो हम आपसे ससर्ग त्याग देवे ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

२ अगस्त १९४५

* सर्व से उत्तम तो यह बात है । जो अपनी वृत्ति को दूषित न बनाये । दूषित बनाने मे आप स्वय कर्ता होता है और जहा जिस वस्तु का आप कर्ता बनता है । तब उसमे निजत्व का अहकार होता है और निजत्व का अहकार हुआ तब उसकी रक्षा करने मे व्यग्र होना पडता है । जहा व्यग्रता हुई, वहा स्वयमेव निरन्तर व्याकुलता रहती है । जहा व्याकुलता का उदय हुआ, वहा सक्लेशता रहती है । जहा सक्लेशता है, वहा निरन्तर पापास्रव होता है । पापास्रव मे आत्मा की दुर्गति होती है ।

* * *

११, १२, १३ जनवरी १९४५

* कल्याण का मार्ग सरल और सुलभ है । यहा पर की अपेक्षा नहीं । यहा केवल आत्मबल की आवश्यकता है । हम इसके विपरीत मार्ग पर चलते है । पर को कल्याण का मार्ग जान उसकी रक्षा का उपाय करते है । यह महती अज्ञानता है । **पर के बल से आत्मा में कभी भी बल नही आ सकता ।**

सिं. राजारामजी

(श्रीमान् सिंघई राजारामजीका जन्म लगभग ६७ वर्ष पूर्व सागर जिलाके अन्तर्गत पाटन ग्राममे हुआ था । पिताका नाम बशीधरजी और माताका नाम जियाबाई था । जाति गोलापूर्व थी । अपनी प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका ध्यान मुख्य रूपसे व्यापारकी ओर आकर्षित हुआ और इस निमित्त ये सागर आकर रहने लगे ।

सागरमे रहते हुए अपनी व्यापारिक कुशलताके कारण इन्होने व्यापारमे बडी उन्नति की और वहाँके धनी-मानी पुरुषोमे इनकी गणना होने लगी । वर्तमानमे इनका परिवार बहुत ही समृद्ध और खुशहाल है । सागरनिवासी श्रीमान् प मुन्नालालजी राधेलीय इनके लघुभ्राता है ।

जीवनके अन्तिम दिनोमे ये गृहकार्यसे विरक्त हो गये और ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर उनका योग्यतापूर्वक पालन करने लगे । इन्होने ऐहिक लीला सन् १९५० मे समाधिमरणपूर्वक समाप्त की थी ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य श्रद्धा थी । फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते है ।)

(२० - १)

श्रीयुत महाशय ब्र. सिंघई राजारामजी, योग्य इच्छाकार

आपका कई बार पत्र आया, मै उत्तर न दे सका । इसका मूल कारण यह है जो मेरी सम्मति तो यह है जो ये पत्र व्यवहार भी कुछ हितकारी नहीं । एक तरहसे निवृत्तिमार्गमे बाधक है । जितना सम्पर्कसे परिग्रह है, उससे अधिक पत्रसे होता है । अत मेरी सम्मति मानो तब जो काल पत्रके लिखनेमे जाता है वह काल स्वाध्यायमे लगाओ । जहाँ तक बने, परकी गुणदोष-विवेचना छोडो । गृहस्थके घर जो भोजन मिले, सन्तोषपूर्वक कर लो । जिसके घर भोजन करो उसके हितकी बाते कहो । भोजनकी स्वच्छताका उपदेश दो । वस्तु, चाहे भोजन में अल्प हो, स्वच्छ हो । पानी छाननेका वस्त्र अत्यन्त स्वच्छ हो । अस्तु, यह चर्चाकी आवश्यकता यहाँ न थी, इस बातकी है जो अपनी आत्माको स्वच्छ बनाया जावे, क्योकि हमारा अधिकार सीमित है, वस्तुमर्यादाके अनुकूल ही रहना चाहिये । सिद्धान्तका भी यही अभिप्राय है । सर्व

पदार्थ अपने-अपने रूप मे ही रहते है । कल्पनासे कुछ ही मान लो, परन्तु कल्पनाके अनुसार पदार्थ नहीं बदलता । अपने ज्ञानमे हमने रसरीको सर्प मान लिया, एतावता रसरी सर्प न हुई, परन्तु हमारी कल्पनाने सर्प मानकर हमको भयभीत कर दिया । अत पर पदार्थको अनादिसे सुखकर व दु खकर माननेकी जो प्रकृति है उसे त्यागो । यह अभ्यास यदि दृढतम हो जावेगा, अनायास इस ससार-बधनसे हमारी मुक्ति हो जावेगी। इससे हमारे साथ जो पत्र-व्यवहारकी प्रकृति है, त्याग दो । उससे दो लाभ होगे - परपदार्थको जॉचनेकी आदत छोडनेका अवसर मिलेगा तथा परिग्रह-पापसे छूट जावोगे । सर्वमडलीसे इच्छाकार ।

ईसरी बाजार,
जेठ बदि १२, स २००५

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(२० - २)

श्रीयुत् महाशय ब्र सिंघई राजारामजी, योग्य इच्छाकार

वास्तवमे प्रशसासे कुछ लाभ नहीं । लाभ तो आत्माकी प्रशसा व अप्रशसा दोनोही मे, जहॉ हर्ष-विषाद न हो, वहॉ है । उस दिनको अपने कल्याणका समझो जब आत्मामे परकृत उपकार-अनुपकारकी भावना मिट जावे । भैया राजाराम ! मेरे अपनाने से न तो आपका कल्याण होगा और न आप मुझे अपनावेगे । इससे मेरा भी कुछ कल्याण न होगा । वह दिन आपके उत्कर्षका होगा जिस दिन आप अपनेको अपनावेगे । भैया ! यदि मेरी बात पर श्रद्धा है तब अब ये सर्व कल्पनाएँ छोड दो । मै सागर ही रहता, परन्तु न तो मैने अपनेको अपनाया और न सागरने अपनेको अपना समझा । यह तो मैने वास्तविक तत्त्व, जो समझा, आपको लिखा । अब लौकिक बात लिखता हूँ । वैशाख सुदि १२, स २००४ को श्री द्रोणगिरि क्षेत्र पर मैंने यह प्रतिज्ञा ली थी कि सागर-समाज एक लाख रुपया महिला-समाज महिलाविद्यालयको देवे तब जाना, अन्यथा सागर न जाना और यदि जाना हो जावे और वह यह पूरी न करे तब क्षुल्लक हो जाना । मै सत्याग्रह न करता था, परन्तु मुझे हठात् ले गये । फल जो हुआ सो आपसे गुप्त नहीं । यही दशमी-प्रतिमाका कारण हुआ, परन्तु मेरी कुछ क्षति न हुई। हॉ, इतनी क्षति अवश्य हुई कि श्री १००८ पार्श्वप्रभुकी निर्वाणभूमि छूट गई तथा

जलवायुके लिये वह स्थान अच्छा था वह भी छूट गया । अस्तु, इसका कोई हर्ष-विषाद नहीं । उदयानुकूल सब बाह्य सामग्री मिलती है, परन्तु मोक्षमार्गका लाभ उदयाधीन नही । यह तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है । हर स्थान और हर सज्ञी पर्यायमे इसका लाभ होता है । अत सन्तोष है । यदि यह न हुआ तब मनुष्यपर्यायका कोई तत्त्व हमने न निकाला । अत जहॉ तक बने, आप कहीं रहो परन्तु बुद्धिपूर्वक मोक्षमार्गके लाभसे वञ्चित न रहना यही मेरा सन्देश सब त्यागीवर्गसे कह देना । जो ज्ञानी है, उनसे क्या कहूँ ? उनके तो यह खेल बाऍं हाथका है । परन्तु श्रोतावर्गसे अवश्य कहना । शास्त्र बाँचने और सुननेका फल तत्काल मोक्षमार्गका आशिक लाभ है । यदि यह न हुआ तब कुछ न हुआ । स्त्रीसमाजसे भी कहना, शास्त्र श्रवणका फल यह है जो पर्यायमे निजत्व-कल्पना छोड दो । आत्मा न तो नपुसक है और न स्त्री है और न पुरुष है । अत पर्यायमे जो अपनेको तुच्छ समझती हो उसे छोडो और निजत्व का अनुभव करो । अपना कर्तव्य सम्हालो । जिनको तुम अपना मानती हो वह न तुम्हारे है और न तुम उनकी हो । वैसे कौन कहता है, तुम्हारी यह सम्पदा नहीं है, परन्तु इसमे मग्न न होओ । यदि व्यापारी-वर्ग हो तब कहना, यह जडवाद बहुत अर्जन किया और इसीको खाया, दान दिया अथवा न खाया और न दान दिया, तिजोडी भर दी जो सात पीढी खावे । फल क्या हुआ सो आपको अनुभूत है । परन्तु अब कुछ दिन आत्मीयगुणोका विकास करो । विकारको तजो जिससे आत्माको शान्ति मिले । हम तो सागरसमाजका उपकार मानते है जो उसके द्वारा हम उस पतित-अवस्थासे इस वेषमे पहुँच गए । परिणामवस्तु अन्तरङ्गकी अवस्था विशेष है । उसके विषयमे हम आपको क्या लिखे - न तो हम आपके स्वामी है और न आप हमारे है । सिघईजीसे कहना - पर्यायकी अन्तिम अवस्था है, जितना इसमे मूर्च्छा त्यागोगे, सुख पावोगे । न तो वर्णी शान्ति देगा और न गुलाब-तारा और न उनकी मॉ और न रज्जू मुनीम और न मन्दिर-सरस्वतीसदन मानस्तम्भ आदि । ये तो सर्व ऊपरी निमित्त है । कल्याणका मार्ग तो अन्तरङ्गकी निर्मल-परिणति ही होगी जिसमे इन विभावोके कर्तृत्वका अभिमान नहीं । हम क्यो बार-बार लिखते है ? तुम्हारा अन्न खाया है तथा और बहुत उपकार हमारे ऊपर है उसीका यह तमाशा है । यद्यपि कोई किसीका कुछ नहीं करता । हम जो लिख रहे है सो निमित्तकारणकी मुख्यतासे । अथवा आज गर्मीका प्रकोप था, अत उपयोग अन्यत्र न जावे । अथवा इस जातिकी कषाय थी । शेष शुभ । सर्व त्यागीवर्ग तथा विशेषतया प छोटालाल वर्णीजीसे इच्छाकार ।

नोट - श्रीयुत प लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त' जी से कहना - आपके भावोको जानकर प्रसन्नता हुई, परन्तु हमारी रक्षा करनेवाला न कोई है और न था और न होगा, क्योकि हमारी पुण्यप्रकृति ऐसी है और हम इससे दु खी भी नहीं । हॉ, आपके परिणाम अति प्रशस्त है । श्रीयुत विद्यार्थी नरेन्द्रजीसे आशीर्वाद । दवाई आ गई, परन्तु अभी हमारे उस चालका उदय नहीं जो दवाई लाभ पहुँचा सके । कार्यके प्रति कारणकूट होना चाहिए । हमको इस बातका अफसोस है जो आप छात्र पदकी अवहेलना करते हो । तुम्हारी इच्छा जो हो सो करो, परन्तु हम इसे अच्छा नहीं मानते । यह भी विश्वास है जो आप हमारा कहना भी इस विषयमें उपादेय न मानोगे ।

मुरार छावनी, ग्वालियर,
जेठ सुदि ६, स २००५

आपका शुभचिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

श्री ब्र. शान्तिदासजी

(श्रीमान् ब्र शान्तिदासजी नासिकके रहनेवाले थे । इन्होने जीवन कालमे बूढी चॅदेरी क्षेत्रकी बहुत सेवा की है । स्वभावके शान्त और निरहङ्कारी थे । पूज्य श्री वर्णीजी के प्रति इनकी बडी श्रद्धा थी । पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हे जो पत्र लिखे है उनमेसे उपलब्ध हुए दो पत्र यहॉ दिये जाते है ।)

(२१ - १)

श्रीमान् ब्रह्मचारी शान्तिदासजी, योग्य इच्छाकार

आपकी हिम्मत प्रशसनीय है । हम तो अकिञ्चित्कर है । आप पुरुषार्थी है । जो चाहो करो, परन्तु सघ न होनेसे होना कठिन है । धर्मध्यान अच्छा होता होगा । हमारा भी अच्छा होता है ।

ईसरी बाजार,
आषाढ सुदि १५, स २०११

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(२१ - २)

श्रीमान् ब्र शान्तिदासजी, योग्य इच्छाकार

आपके पत्रसे आपकी अन्तरङ्ग-परिणति प्राणियोके कल्याण की है, परन्तु किया क्या जावे । असघरित-मनुष्योमे आपका जो भाव है तदनुकूल-प्रवृत्ति होना असम्भव है । मेरी तो यही सम्मति है - सानन्दसे स्वाध्याय करो तथा अन्य विकल्प त्यागो । हम स्वय आपकी बातको उत्तम समझते है, किन्तु क्या करे ? अत आपकी शक्ति जो है उसे अन्यत्र मत लगाओ, केवल स्वहितमे लगाओ । आनुसङ्गिक परकी भलाईमे लगे इसका विकल्प न करो ।

ईसरी बाजार,
श्रावण सुदि ४, स २०११

आ शु चि
गणेश वर्णी

ब्र. खेतसीदासजी

(श्रीमान् ब्र खेतसीदासजीका जन्म वि स १९३५ को बिहार प्रदेशके गिरडीह नगरमे हुआ था । पिताका नाम प्रयागचन्द्रजी, माताका नाम रुक्मिणीदेवी और जाति खण्डेलवाल थी । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी फिर भी इन्होने स्वाध्याय द्वारा अच्छी योग्यता सम्पादित कर ली थी ।

इनके श्री गिरनारीलालजी, चिरञ्जीलालजी और श्री महावीरप्रसादजी ये तीन पुत्र तथा श्री पूर्णीबाईजी और ईसरीबाईजी ये दो पुत्रियॉ इस प्रकार कुल पॉच सन्ताने है । श्री ईसरीबाई यद्यपि अजैन कुलमे विवाही गई है पर ये अपने पूज्य पिताजीके द्वारा प्राप्त सस्कारोके कारण जैनधर्मका उत्तम रीतिसे पालन करती है ।

ब्र जी स्वभावके उदार, कट्टर तेरह पन्थके अनुयायी और सप्तम प्रतिमाके व्रत पालते थे । इन्होने अपने जीवन कालमे एक शिखरबन्द मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी व्यवस्था के लिए दो मकान लगा गये है ।

वैसे तो ये अपने पुत्रोके पास ही रहते थे फिर भी इनका अधिकतर समय स्वाध्याय आदि कार्योमे ही व्यतीत होता था । इन्होने समता तत्त्वका अच्छी तरह

अभ्यास किया था । इनका समाधिमरण फाल्गुन शुक्रा ८ वि स २०११ को हुआ था।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी विशेष भक्ति थी । फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखा गया एक पत्र यहाँ दिया जाता है ।)

(२२ - १)

श्रीयुत ब्रह्मचारी खेतसीदासजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

सर्व कुटुम्बसे दर्शनविशुद्धि । आप तो आप ही है । आपको क्या लिखे ? मनुष्यको सब बन्धनोमे स्नेहबन्धन अतिप्रबल है । मै आपको निरन्तर कहता था - छोडो इस जालको, परन्तु मै सागरके चक्रमे आ गया । अब मुझे आप लोगोकी सूक्तियॉ याद आती है जो श्री पाश्र्वप्रभुका शरण मत छोडो । उस समय मोहके नशामे एक न मानी । जब नशा उतरा तब अब याद आती है । हॉ क्या अनर्थ हुआ, परन्तु अब क्या होता है । जब जीव नरकमे पहुँच जाता है तब याद आती है जो मनुष्य पर्यायमे सयमादि न पाला । अब क्या होता है । बहुत उडाग मारे तब सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है । अस्तु, आप भी अब मोहको छोडिये और शेष जीवनको सुखमय बिताइए । आपके बालक प्राय अब शुद्ध प्रक्रियासे ही भोजनादिकी व्यवस्था करते होगे तथा सदाचारादिकी रक्षामे सावधान होगे ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

२७ फरवरी १९४५

* सर्व को खुश करने की चेष्टा सर्व के साथ क्रीडा करने के सदृश है । हमने बहुत कुछ विचारने के बाद यह निश्चिय किया जो कल्याण वालो को परिग्रही जीवो से दूर रहना चाहिए । अन्यथा परिग्रही होना पडेगा और न वह भी बनेगा । इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट होना पडेगा ।

ब्र. जीवारामजी

(श्रीमान् ब्र जीवारामजी मेरठके आस-पासके रहनेवाले थे । इनका अन्तिम समय श्री १०५ क्षु सहजानन्दजी (मनोहरलालजी) के सम्पर्कमे व्यतीत हुआ है । पूज्य श्री वर्णीजीमे इनकी विशेष श्रद्धा थी । यहाँ पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गए दो पत्र दिए जाते है ।)

(२३ - १)

श्री ब्र जीवारामजी, इच्छाकार

आनन्दसे काल जावे यही करना । आपत्तियॉ तो पर्यायमे आवेगी जावेगी, सहना करना । अशान्ति न आवे यही कर सकते है ।

इटावा,
पौष शु १ स २००७

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२३ - २)

श्री ब्र जीवारामजी, योग्य इच्छाकार

ससारकी गति विचित्र है, यह सब कहते है । अपनेको इससे पृथक् समझते है यही आश्चर्य है । जिस दिन अपनी दुर्बलताका बोध हो जावेगा यह कल्पना विलीन हो जावेगी ।

पौष सु १४, स २००७

आ शु चि
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

७ मार्च १९४५

* ससार न तो इष्ट है और न अनिष्ट है । हमारी कलुषित परिणति ही इष्टानिष्ट कल्पना करती है । वह कलुषित परिणति शुभाशुभ रूप से दो प्रकार की है ।

ब्र. नाथूरामजी

(श्रीमान् ब्र नाथूरामजीका जन्म वि स १९६९ को मध्यप्रदेशके दरगुवाँ ग्राममे हुआ है । पिताका नाम श्री बालचन्द्रजी, माताका नाम श्री केशरबाई और जाति परवार है । प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका विशारद तृतीय खण्ड तक अध्ययन हुआ है । इनके घरमे साहुकारीका व्यापार होता था ।

प्रारम्भसे ही इनका चित्त गृहकार्यमे बहुत ही कम लगता था, इसलिए पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका सम्पर्क मिलने पर इन्होने उनके पास वि स २००२ को सातवीं प्रतिमाके व्रत ले लिये थे । इनका ये उत्तम रीतिसे पालन करते हुए अपने गुरुकी वैयावृत्य सेवा-सुश्रूयामे ही निरन्तर लगे रहते है । मुख्य रूपसे यही इनका स्वाध्याय है, यही सयम है और यही तप है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजका इनके ऊपर बडा अनुग्रह है । प्राय ये पूज्य श्री वर्णीजीके छायावत् साथ रहते है, इसलिए पत्राचारका प्रसग ही उपस्थित नहीं होता है । एक ही ऐसा पत्र मिला है जो वि स २००९ को किसी कार्यवश इनके बाहर रहने पर इन्हे लिखा गया था । उसे यहाँ दिया जाता है ।)

(२४ - १)

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी नाथूरामजी, योग्य इच्छाकार

रुपया ५०/- आया था । हमने उसी समय २५/- तो शाहपुरविद्यालयके तिलोयपण्णत्तिके लिए दे दिये । ५/- छात्रोको फलके लिये दे दिये । २०/- का आदिपुराण लिया गया । मैने अपने उपयोगमे नही लगाया । मै रुपया रख नहीं सकता। आप आइन्दा हमारे अर्थ रुपया न भिजवाना । श्री बाईजीको मै बहुत ही निर्मल मानता हूँ । उनसे मेरा इच्छाकार कहना । आइन्दा मेरे द्वारा रुपया बॉटनेको न भेजे और न मेरे लिये भेजे । हम तो ईसरी छोडकर बहुत ही पछताए, पर अब पछतानेसे कोई लाभ नहीं । जो भवितव्य था हुआ । **कल्याणका मार्ग सर्वत्र विद्यमान है, पात्र होना चाहिए ।** मेरा श्रीजीसे इच्छाकार तथा श्रीयुत चम्पालालजीसे इच्छाकार कहना । तथा सर्व उदासीन भाईयोसे इच्छाकार । अब हम सागरमे है, किन्तु चतुर्मास देहातमें करेगे । शहरमे उपयोग नहीं लगता । यहॉ शास्त्रमे प्राय जनता बहुत आती है । एक हजारके अन्दाज आती होगी ।

सागर,
चैत्र सुदि ४ स २००९

आ शु. चि
गणेश वर्णी

ब्र. लक्ष्मीचन्द्रजी वर्णी

(श्रीमान् ब्र लक्ष्मीचन्द्रजी वर्णी सागर जिलान्तर्गत करापुरके रहनेवाले है । इनकी आयु लगभग ५७ वर्ष है । पिताका नाम श्री नन्दलालजी था । जाति परवार है । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है । गृहत्यागके बाद इन्होने अपना धार्मिक ज्ञान भी बढ़ा लिया है ।

विवाह होनेपर कुछ दिनमे ही पत्नी वियोग हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर महाराजका सम्पर्क मिलनेपर ये उनके पट्ट शिष्य होकर उन्हीके साथ रहने लगे । इन्होने उनके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा वि स १९८६ मे ली थी ।

ये स्वभावके निर्भीक, निर्लोभी, सेवाभावी और कर्तव्यपरायण है । यो तो ये श्री १०८ आ सूर्यसागर महाराजकी सेवामे अनवरत लगे रहते थे पर उनके समाधिमरणके समय इन्होने जिस निष्ठासे उनकी सेवा की है उसका दूसरा उदाहरण इस कालमे मिलना दुर्लभ है ।

ये प्राय यत्र तत्र भ्रमण करते हुए धर्मप्रचारमे लगे रहते है । इनकी भोजन व्यवस्था आडम्बर शून्य और मनोवृत्ति सेवापरायण है, इसलिये जहॉ भी ये जाते है वहाँकी जनता इन्हे छोडना नहीं चाहती । सक्षेपमे ऐसा सेवाभावी निरहकारी त्यागी होना इस कालमे दुर्लभ है ।

पूज्य वर्णीजी महाराजमे भी इनकी विशेष भक्ति है । फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये उपलब्ध हुए दो पत्र यहॉ दिये जाते है ।)

(२५ - १)

श्रीयुत महाशय लक्ष्मीचन्द्रजी वर्णी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप जानते हैं मनुष्य वही ससारमे पार होगा जो किसी भी पदार्थमे राग-द्वेष नहीं करेगा । ससार बन्धनरूपमे है । आपने यह लिखा जो आपने महाराज को अपना गुरु माना तब उनकी आज्ञा मानो । आपने यह कैसे निश्चय किया कि मै महाराजकी आज्ञा नहीं मानता । आप जानते है महापुरुषोका ही कहना है जो कहो उसे करो, परन्तु कहना न्याययुक्त हो । मेरा न तो दिल्लीसे स्नेह है और न

उज्जैनसे और न किसीसे, क्योकि गुरुदेवका ही कहना है जो दिगम्बर वही है जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हो । मेरी महाराजमे भक्ति है । भक्ति किसको कहते हैं - **'गुणानुरागो हि भक्तिः ।'** गुरुका गुण वास्तव है राग-द्वेषनिवृत्ति । तब आप ही विचारो मेरी जब उनमे भक्ति है तब मेरा उद्देश्य निरन्तर रागादि निवृत्तिकी ओर ही तो रहेगा । तभी तो मै सच्चा गुरुभक्त कहलाऊँगा । दिगम्बर गुरुओंका यही तो उपदेश है - यदि ससार बन्धनसे मोचनकी वाछा है तब दिगम्बर हो जावो । दिगम्बर भक्तसे ससार मोचन नही होगा । शारीरिक व मानमिक निर्बलता इसमें बाधक है सो नहीं, कषायकी उद्वेगता इस पदकी बाधक है । गर्मीका प्रकोप उतना बाधक धर्मसाधनका नहीं जितना बाधक अन्तरङ्ग कषायका सद्भाव है । वास्तवमे प्रवृत्तिरूप व्रत कषायमे ही होता है और उसी व्रतमे ये गर्मी, सर्दी, क्षुधा और तृषादिक परिषह है और उन्हींके उदयमे वेदना है और उनकी उद्वेगतासे विचलित भी नहीं होता और जहॉ उस सज्वलन का मन्द उदय हो जाता है तब वहॉ धर्मध्यानकी उत्पत्ति हो जाती है । वह उद्वेग क्षुधादिकोका नहीं होता, क्योकि सप्तम गुणस्थानमे असाताकी उदीरणा या तीव्रोदय नहीं रहता । वास्तव चरित्र तो प्रतिपक्षी कषायके अभावमे होता है । जितने अश कषायके रहते हैं वे सब चारित्रके बाधक ही हैं । हमने जिसके उदयमे महाराजको अपना गुरु माना उसके उदयमे बराबर मानते रहेगे इसमे सन्देह का स्थान नहीं । हम चाहते तो है - महाराजका ऐसा आशीर्वाद हो जो ऐसा अवसर हमे मिले जो इन उपद्रवोसे हमारी रक्षा हो । मैं तो मानना और न मानना दोनो ही उपद्रवोकी जडे हैं ऐसा मानता हूँ । परन्तु इसमे तारतम्य है । एक ऐसी भी अवस्था है जो इससे भी परे है उसका अनुभव हम जैसे तुच्छ जीवोको नहीं, महाराज ही जाने । हम तो उनके वचनोके आधारसे लिख गए । वस्तु क्या है वह जाने -

जेठ सुदि ४, स २००५

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(२५ - २)

श्रीयुत महाशय ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्द्रजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । खेद करनेकी बात नहीं । आपको समागम ऐसे निरक्षेप व्यक्तिका है जो अन्यत्र दुर्लभ है, अत मेरी सम्मति मानो तब प जीसे

दशाध्याय सूत्र प्रवेशिका पढ लो और स्वाध्यायमे उपयोग लगाओ । पश्चात् मध्यप्रान्तमे रहो - सागर, खुरई, दमोह, जबलपुर । स्वपर कल्याण करो । यहा पर आपके अनुकूल वातावरण नहीं । हम तो सर्व सहन कर लेते है । मध्यप्रान्त बुन्देलखण्ड अब हमको प्रतीत हुआ । उत्तम प्रान्त है । द्रव्यकी त्रुटि है परन्तु कई अशोमे अत्युत्तम है । प जीसे हमारी कल्याण पात्र हो यह भावना उनके प्रति रहती है। योग्य व्यक्ति है । यदि वे हो तब कहना कि सर्व चिन्ता छोड जैनागमका प्रकाश करना। इससे उत्तम शान्तिका मार्ग नहीं ।

ईसरी बाजार, हजारीबाग,
भाद्र बदि १, स २०११

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

३, ४ अक्टूबर १९४५

* यह मोह की उन्मत्तता ही तुमको ससार मे डुबो देगी यह कहने मात्र से मोह की उन्मत्तता का अभाव नहीं हो सकता । पुरुषार्थ की आवश्यकता है । पुरुषार्थ की आवश्यकता है, यद्यपि श्रीसर्वज्ञदेव ने जिसको जिस काल मे जैसा देखा वही होगा । फिर भी यह भी तो देखा है सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति ५ वीं करणलब्धि मे ही होगी । असज्ञी पर्यन्त जीव सम्यग्दर्शन के अधिकारी नहीं । सज्ञी ही सम्यग्दर्शन का पात्र होगा । साथ ही भव्य भी होना चाहिये जाग्रदवस्था मे ही होगा ।

ब्र. शीतलप्रसादजी

(श्रीमान् ब्र शीतलप्रसादजी का जन्म मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत शाहपुरमें अषाढ कृष्णा ७ वि स १९४८ को हुआ था । पिताका नाम लाला मथुरादासजी था । जाति अग्रवाल है । प्राथमिक शिक्षा लेनेके बाद ये अपने पिताके साथ बहुत दिन तक कपडेका व्यापार करते रहे ।

इस समय ये पूर्ण ब्रह्मचर्यके साथ दूसरी प्रतिमाके व्रत पालते है । इनके दीक्षा गुरु पूज्य वर्णीजी महाराज स्वय है । ब्रह्मचर्य दीक्षा लेनेके बाद ये गृहकार्यसे पूर्ण विरत हो गये और धर्मध्यान पूर्वक अपना जीवन यापन करने लगे । इन्होने स्वाध्याय द्वारा धार्मिक ज्ञान भी अच्छी तरह सम्पादित कर लिया है और उस प्रान्तकी स्वाध्याय मण्डलीके प्रमुख सदस्य है । वर्तमानमे ये हस्तिनापुर उत्तरप्रान्तीय गुरुकुलके अधिष्ठाता पदका कार्यभार सम्हालते हुए धर्म और समाजकी सेवा कर रहे हैं । ये स्वभावसे विनम्र और निष्पक्ष है ।

पूज्य श्री वर्णीजीमे इनकी विशेष भक्ति है । यदा कदा जिज्ञासावश उन्हे पत्र भी लिखते रहते हैं । उत्तरस्वरूप जो पत्र पूज्य श्री वर्णीजीने इन्हे लिखे है उनमेसे उपलब्ध हुए दो पत्र यहाँ दिये जाते है ।)

(२६ - १)

श्रीयुत महाशय प शीतलप्रसादजी साहब, योग्य इच्छाकार

आप लोकोका समय निरन्तर आगमाभ्यासमे जाता है इससे उत्तम पर्यायका उपयोग क्या हो सकता है । हम तो निरन्तर अनुमोदनासे ही प्रसन्न रहते है । लाला मक्खनलालजीसे इच्छाकार । वह तो विलक्षण जीव है । **मनुष्य पर्य्यायकी सफलता ममता त्यागमें है ।**

फा सु ५, स २०१०

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(२६ - २)

श्रीयुत महाशय शीतलप्रसादजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । शान्तिका कारण न तो किराना है और न हस्तनागपुर है और न ईसरी है । शान्तिका कारण तो अन्तरङ्ग विकृतिका अभाव है जो आपकी दूर हुई वह क्यो दूर हुई आप जानो । मेरी तो यह धारणा है जो हम मोही जीव केवल निमित्तोपर सर्व अपराधोके कारणोका आरोप करते हैं । यह महती त्रुटि है । मै अपनी कथा लिखता हूँ । आपमे हो व न हो । अस्तु, गुरुकुल सस्था उत्तम है । यदि उस प्रान्तवाले चाहे तब १०० छात्रोका प्रबन्ध होना कठिन नहीं । परन्तु दृष्टिपात हो तब न । १०० आदमी १०००/- प्रतिव्यक्ति देवे । अनायास गुरुकुल चल सकता है । श्री त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शनविशुद्धि । श्रीमान् भगतजीसे इच्छाकार । जहाँ तक बने समाजको सम्यग्ज्ञानी बनाना । चारित्र अनायास आ जावेगा । यथार्थ पदार्थको जाननेकी महती आवश्यकता है । वहाँ पर जो हकीमजी है, हमारा आशीर्वाद कहना । सर्व जीव रक्षाके पात्र है । मनुष्यकी मनुष्यता यही है जो अपनेके सदृश सर्वको देखे ।

भाद्र बदि ३, स २०११

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(२७ - १)

श्रीमान् त्यागी परशुरामजी, इच्छाकार

आपको तो वही समागम है जिस समागमको अच्छे-अच्छे पुरुष चाहते है । यह आपकी सज्जनता है जो आप हमसे भी कल्याण किया चाहते हैं । आप तो हस जैसे श्रोता है । हम तो अगत्या श्रीपार्श्वप्रभुके पादमूलमे ही आयु पूर्ण करेगे, क्योकि पोतके पक्षी हैं । कल्याणका मार्ग तो पास ही है, कहीं रहिये । निमित्तकी योग्यता भी पास ही है, क्योकि सज्ञीपना और निरोगता, जैनधर्ममे प्रेम, उत्तम क्षेत्र आदि सर्व कारण मिल ही रहे हैं । धर्मकी वृद्धिके साधन, कल्याणमूर्ति बाईजी तथा कल्याणभवन आदि सबसे आप सम्पन्न हो । अब परिणामोकी निर्मलता जो मुख्य धर्म साधनका कारण है सो आपकी ही है । यदि उसमे कुछ विषमता आती हो तब उसे दूर करनेकी चेष्टा करिये । विशेष क्या लिखूँ ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

ब्र. हरिश्चन्द्रजी

(श्रीमान् ब्र हरिश्चन्द्रजी सहारनपुरके आस-पासके रहनेवाले है । प्रारम्भसे ही ये गृहकार्यसे विरत हो लोकसेवाके कार्यमे लगे रहते है । ब्रह्मचर्य व्रतके साथ सत्यव्रतका ये उत्तम प्रकारसे पालन करते है । जीवनमे कितनी ही कठिनाई और आर्थिक हानि क्यो न उठाना पडे पर ये भूलकर भी असत्य भाषण करना स्वीकार नहीं करते ।

श्री हस्तिनापुर गुरुकुलकी ये प्रारम्भसे ही सेवा करते आ रहे है और वर्तमानमे उपअधिष्ठाताके पदको सम्भालते हुए उसीकी सेवा कर रहे है । बीचमे सस्कृत और धर्मशास्त्रकी शिक्षा लेनेके लिए ये बनारस विद्यालयमे भी रहे है । ये स्वभावसे निष्प्रह है ।

पूज्य श्री वर्णीजीमे इनकी अनन्य भक्ति है । पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य श्री वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते है ।)

(२८ - १)

श्रीयुत ब्र लाला हरिश्चन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अब आप सानन्द धर्मध्यान करे और जहॉ तक बने आजीविकाके योग्य द्रव्योपार्जन कर धर्मकी लेन पर आजावे । ससारकी दशा निरन्तर वही रहेगी । इसके चक्रसे निकलना बडे महत्वका कार्य है ।

ईसरी
२५-१२-१९३७

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(२८ - २)

श्रीयुत ब्र महाशय लाला हरिश्चन्द्रजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने जो चावल भेजे वह आगए तथा खरबूजा आदि आगए । मेरी समझमे नहीं आता, आप इतना क्यो करते है ? भाई साहब जहाँ तक बने इस द्वन्द्वसे पृथक् होनेकी चेष्टा करो और आत्मकल्याणके मार्गमे अग्रेसर होओ, वहॉ का पथिक वही हो सकता है जो त्याग मार्गके सम्मुख होगा । सर्वसे प्रथम नि·शल्य होनेकी चेष्टा

करो और विद्योपार्जनमे काल यापन करो । अनन्तर निवृत्तिमार्गका कषायकी तरतमता देखकर उपाय करो । लाला अर्हद्दासजीसे दर्शनविशुद्धि ।

ईसरी
३१-५-३८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - ३)

योग्य दर्शनविशुद्धि

चिन्ता करनेसे कुछ साध्य नहीं, अब तो कर्तव्यपथ पर आनेसे ही कल्याण है । हम हजारीबाग नही जावेगे । सग दु खकर है, अत निसगमे ही सुख है । विरागता कहीं नहीं, अपने अन्तस्तलकी रागादि परणति मिटादो ।

ईसरी
२९-३-३९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - ४)

योग्य दर्शनविशुद्धि

जहॉ तक बने अब आप अपनी दृढ श्रद्धा रखिए और केवल श्रद्धाकी दृढता मोक्षमार्ग नही । जबतक उसपर अमल नही करोगे, कार्यकी सिद्धि नही हो सकती । यही सर्वत्र कार्यकी सिद्धि होनेकी प्रणाली है । अब केवल बातोसे कार्य न होगा ।

ईसरी
८-५-३९

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(२८ - ५)

योग्य दर्शनविशुद्धि

हमारी तो यह सम्मति है, अब आप विशेष व्यय करनेके अर्थ व्यापारमे न फॅसे । यदि उदयसे हो जावे करो परन्तु आकुलता कर धनकी उत्पत्ति कदापि धर्मकी

जननी नहीं । **जिनके पास अन्यायका द्रव्य है उनके द्रव्यसे उन्हें तो धर्मका लाभ दूर रहो; उनका द्रव्य जहाँ लगेगा वहाँ भी लाभ न होगा ।** वर्तमानने जो आयतन है, उनसे जान सकते हो ।

ईसरी

२०-५-३९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(२८ - ६)

योग्य दर्शनविशुद्धि

देखो, जहा तक बने ऐसी व्यवस्था बनाओ जो चिरन्तन बिना किसी उपद्रवके धर्मसाधन होता रहे । आज कल गृहस्थ लोग बहु कुछ धर्मसाधनके पिपासु रहते हैं, किन्तु ऐसे कारण कूट उनके हैं जो मनोनीत धर्म साधन नहीं कर सकते । आपको दैवने उन कारण कूटोसे स्वयमेव बचा दिया, केवल आजीविका की चिन्ता आपको है । सो यदि योग्य रीतिसे आप निर्वाह करेगे तब तीन या चार वर्षमे स्वतन्त्र हो सकते हो, किन्तु यदि उस पथ पर अमल करो । वह आपसे होना अति कठिन है । जहा तक बने स्वाध्यायमे काल लगाना । श्री जिनेश्वरदासजी आदि मण्डली के साथ तत्त्वचर्चा करो । यह जीव कल्याण चाहता है, परन्तु केवल इस भावसे उसका लाभ होना कठिन है । कल्याणका मार्ग आभ्यन्तर कषायोकी कृशतामे है सो होना स्वाधीन है, पर उसे भी स्वर्ग-नरकादिकी प्राप्ति जैसे परसे होती है वैसा मान रक्खा है । हमारी समझमे ऐसा वह नहीं है, वह तो शुद्धभावके आश्रय है । शुद्धभावका उदय स्वमे होता है । उसमे निमित्त कारणोकी मुख्यता नही । अत एकान्तमे अच्छी तरहसे मनन करो और पराधीनताके बन्धनसे मुक्त होनेका उपाय करो । विशेष चर्चा समागमसे होती है, सो वहाँ प्राय अन्यत्र से समागम अच्छा है ।

हजारीबाग,

१९-९-३९

आ शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(२८ - ७)

योग्य दर्शनविशुद्धि

उदयकी बलवत्ता यद्यपि आपके अध्ययनमे विघ्नकरी हो गई, परन्तु आप

इसे बाधक न समझे और स्वास्थ्य लाभकर स्वीय उद्देश्यकी पूर्ति करे । अध्ययन ही इस समय आपके कल्याण मार्गमें पाथेय होगा ।

ईसरी,
११-१०-३९

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - ८)

योग्य दर्शनविशुद्धि

ज्ञान धनसे उत्तम धन अन्य नही सो उसके विकासमे सब चिन्ताओका त्याग करो । आत्माकी निर्मलताका मुख्य कारण वही है । धनादिक पदार्थ तो उसके घातकके नोकर्म है । सर्वसे मुख्य लाभ वही है जो आत्माको निगकुलताका हेतु हो । श्री प निद्धामल्लजी साहब योग्य दर्शनविशुद्धि ।

ईसरी,
२७-७-४०

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - ९)

योग्य दर्शनविशुद्धि

इतना प्रबल मोहको त्यागकर अब चित्तवृत्ति शान्त कर अध्ययन करो । अभी आपकी आयु विद्यार्जनकी है, त्यागके वास्ते तो पर्याय बहुत है । अब भी तो त्यागी हो, केवल हम लोगोकी तरह हल्दी, नमक, मिर्च छोडनेमे कुछ तत्त्व नहीं । तत्त्व तो ज्ञानार्जनकर राग-द्वेषकी कृशतामे है । ज्ञानार्जनकर स्वात्मदृष्टिको निर्मल करना अपना ध्येय बनाओ । आजकलके त्यागियोकी प्रवृत्तिको देखकर व्यामोह न करना । उद्विग्नता विद्यार्जनमे महती क्षतिकारी है ।

भादो वदि १, स १९९६

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - १०)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मनुष्य वही है, जो अपना हित करले । साता या असाता का उदय रति व अरतिके साथ ही अपना कार्य कर सकता है । अत जहाँतक असाताको दूर करनेकी चेष्टा न कर मोहके कृश करनेकी चेष्टा करनी चाहिए । कुत्तेकी तरह लाठीको नहीं चबाना चाहिए । जितने भी आत्माके साथ कर्मबन्ध है, मोहके सद्भावमे है । इसके बिना आपसे आप चले जाते है, अत मोहनीय कर्मके उत्पादक राग-द्वेष, मोह इन आत्मपरिणामोको समूल नाशकर ससारका अन्त करना ही ज्ञानी जीवका कार्य है ।

ईसरी
११-६-४१

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(२८ - ११)

योग्य दर्शनविशुद्धि

आपने स्वाधीनतापूर्वक विद्याभ्यास करना प्रारम्भ किया अति उत्तम है । परन्तु इस प्रकार व्यवस्था करना जो शीघ्र ही इस कार्यसे छुटकारा पाजाओ । ससारमें शान्तिका उपाय तत्त्वज्ञानपूर्वक राग-द्वेष निवृत्ति है, अत पहले तत्त्वज्ञान अर्जन करो, त्यागधर्मकी प्रशसा सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही है ।

अ सु ४, स १९९७

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - १२)

योग्य दर्शनविशुद्धि

इस ससारमे यही होता है । जब तक ससार पर्यायका अन्त न हुआ तब तक यही होगा । ससारके अन्तके कारण जानते है, परन्तु जब तक उनका सद्भाव आत्मामे नहीं होता तब तक कार्यकी सिद्धि होना कठिन है ।

गिरिडीह,
७-१०-४१

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - १३)

योग्य दर्शनविशुद्धि

जगत विकारमय है, इसका दूर करना परमार्थसे कठिन है । हमारा स्वास्थ्य अब यही कहता है, अपनी ओर जावो । इन पराश्रित कार्योंसे विरत होओ, पर मोहकी महिमासे पीडित है । केवल श्रद्धाके बलसे आत्मा जीवित है, अन्यथा जो होता है वही होगा ।

मेरठ,
२८-१२-४८

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(२८ - १४)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी तो श्रद्धा है, ज्ञानार्जनकी इच्छा ही साधक है । यह आवश्यक नहीं जो षटरसोका त्यागकर अध्ययन किया जावे । करोगे तब प्राय कुछ बाधा ही होगी ।

सागर,
जेठ बदि ९, स २००८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - १५)

योग्य दर्शनविशुद्धि

वासना भी कोई वस्तु है । ससार ही इसी वासनाका बन रहा है । हम लोगोने अनादि कालसे शरीरको निज समझा है और इसीके सम्बन्धसे जाति-कुलकी भी हमारी आत्मामे गौरवता ठसी हुई है । यद्यपि यह कोई गुरुत्वका परिचायक नही । गुरुताका सम्बन्ध आत्मगुणकी निर्मलतासे है । उस ओर हम लोगोका लक्ष्य नही, लक्ष्य न होनेका मूल कारण अनादि कालसे परमे निजत्वकी कल्पना अन्त करणमे समा रही है । उसका पृथक् होना अति कठिन है । उसका उपाय बडे-बडे महर्षियोने

सम्यक् दिखाया है, परन्तु उसमे हमारा आदर नहीं ।

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(२८ - १६)

योग्य दर्शनविशुद्धि

असाताके उदयमे वही होता है, अत. शान्तिसे जो बीत गया उसे जाने दो। अब जिससे शान्ति मिले वह उपाय करना मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है । लौकिक कार्योंमे सुख है नहीं, व्यर्थ चेष्टा करना है ।

द्रव्यको पर समझो, उतना ही अर्जन करो जो तुम्हारे निजके धर्मसाधनमे साधक हो । हम स्वय अतिथि बनें ।

मेरी तो यह धारणा है जो न्यायानुकूल अर्जन करता है वह स्वय अतिथि है, क्योकि अतिथिसविभागव्रत लोभ निरास और सघको दानसे उनकी ज्ञानार्जनमे थिरताका कारण है । हम जब स्वय ज्ञानार्जन करनेमे लग जावेगे तब स्वय अतिथि हो जावेगे, अत इस अभिप्रायको छोडकर ही विद्याभ्यास करो ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(२८ - १७)

योग्य दर्शनविशुद्धि

मेरी तो भावना मात्र ही आपके उत्कर्ष की है । मुझे तो अब आकिचन धर्म ही शरण है । आशा है आप निराश न होगे । मनुष्य केवल ज्ञान उपार्जन कर लेता है, यह क्या बडी बात है ।

सागर,
२७-७-५२

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

साध्वी वर्ग

प्रशममूर्ति माता चन्दाबाईजी

(श्रीमती ब्र प्रशममूर्ति माता चन्दाबाईका जन्म आषाढ शुक्ला तृतीया वि स १९४६ को वृन्दावनमे हुआ था । पिताका नाम बाबू नारायणदासजी और माताका नाम राधिकादेवी था । जाति अग्रवाल है । इनकी प्राथमिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी।

जन्मसे वैष्णव होने पर भी इनका विवाह आरानिवासी प्रसिद्ध रईस और जैन धर्मानुयायी बाबू धर्मकुमारजीके साथ ग्यारह वर्षकी उम्रमे सम्पन्न हुआ था । किन्तु एक वर्षके बाद ही इन्हे पति वियोगके दु सह दु खका सामना करना पडा ।

इतना होने पर भी इन्होने अपनेको सम्हाला और अपने गुरुजनोका सहयोग मिलनेपर अपने जीवनको बदल डाला । ये पहले सस्कृत और धर्मशास्त्रके अध्ययनमे जुट गई । उसके बाद इन्होने एक कन्या पाठशालाकी स्थापना की । आगे चलकर इसी कन्या पाठशालाने जैन बालाविश्रामका बृहदरूप धारण किया । श्री अ भा दि जैन महिलापरिषदकी स्थापना और महिलादर्श मासिक पत्रका सञ्चालन भी इन्होने ही किया है । इनकी सेवाऐ बहुत है । यदि इस युगमे इन्हे नारी जागरणका अग्रदूत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी ।

वर्तमानमे ये ब्र प्रतिमाके व्रत पालती हुई धर्म और समाजकी सेवा कर रही है । इनके दीक्षा गुरु श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर महाराज है । ऐसी लोकोत्तर महिलारत्न वर्तमानमे हमारे बीच मौजूद है इसे समाजका भाग्य ही कहना चाहिए ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य श्रद्धा है । पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये कतिपय पत्र यहा दिये जाते है ।)

(१ - १)

श्री प्रशममूर्ति तत्त्वज्ञाननिधि ब्र पं चन्दाबाईजी योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य (स्वास्थय यदात्यन्तिकमेष पुसाम्) अच्छा होगा । लौकिक स्वास्थ्य तो पञ्चम कालमे धनिक समाजका प्राय विशेष सुविधाजनक नहीं रहता । इस समयकी न जाने कैसी हवा है जो मोक्षमार्गकी आशिक प्राप्ति भी प्राय जीवोको दुर्लभसी हो रही है । त्याग करने पर भी तात्विक शान्तिका आस्वाद नहीं आता, अत

यही अनुमान होता है जो आभ्यन्तर त्याग नहीं । मैं अन्य प्राणियोंकी कथा नहीं लिख रहा हूँ, स्वकीय परिणामोंका परिचय आपको करा रहा हूँ । जैनधर्म तो वह वस्तु है जो उसका आशिक भाव यदि आत्मामे विकास हो जावे तब आत्मा अनन्त ससारका उच्छेद कर जिनेश्वरके लघुनन्दन व्यपदेशका पात्र हो जावे । अत निरन्तर यही भावना रहती है कि हे प्रभो ! आपके दिव्य ज्ञानमे यही आया हो जा हमारी श्रद्धा आपके आगमके अनुकूल हो, यही हमे ससारसे पार करनेकी नौका है ।

वही व्यक्ति मोक्षमार्गका अधिकारी है जो श्रद्धाके अनुकूल ज्ञान और चारित्रका धारी हो । कभी कभी चित्तमे उद्वेग आ जाता है कि अन्यत्र जाऊँ, अन्तमें यही समाधान कर लेता हूँ कि अब पारसप्रभुका शरण छोडकर कहाँ जाऊँ । जहाँ जावोगे परिणामोकी सुधारणा तो स्वय ही करना पडेगी । यह जीव आजतक निमित्त कारणोकी प्रधानतासे ही आत्मतत्त्वके स्वादसे वचित रहा । अत अपनी ओर दृष्टि देकर ही श्रेयोमार्गकी ओर जानेकी चेष्टा करना ही मनुष्य कर्त्तव्य पथ है । श्री निर्मलकुमारकी मातासे इच्छाकार ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१ - २)

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपका स्वाध्याय सानन्द होता होगा । हम भी यथा योग्य स्वाध्याय करते है, परन्तु स्वाध्याय करनेका जो लाभ है उसके अभाव मे कुछ शान्तिका लाभ नहीं । व्यापार करनेका प्रयोजन आय है, आयके अभावमे कुछ व्यापारका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । बाईजी ! समागमको दोष देना तो अज्ञानता है । क्या करे, हमारा अतरग अभी उस तत्त्व तक नहीं पहुँचा जहॉसे शान्तिका उदय होता है। केवल पाठ के अर्थमे ही बुद्धिका उपयोग रह जाता है । ज्ञानका फल विरति है, वह अभी बहुत दूर है। समयसारका स्वाध्याय तो करता हूँ, परन्तु अभी उसका स्वाद नहीं आता, परन्तु श्रद्धा तो है । विशेष क्या लिखूँ ? श्री सिद्धान्तका भी स्वाध्याय किया, विवेचन शैली बहुत ही उत्तम है । आपको क्या लिखूँ, क्योकि आपकी प्रवृत्ति प्राय अलौकिक है ।:जहॉ तक बने अब उसे यातायातकी हवासे रक्षित रखिये । श्री चिरञ्जीव निर्मलबाबूकी मॉ सानन्द होगी ? उनसे मेरा धर्मप्रेम कहना । अब शेष

जीवनमे जो उदासीनता है उसे ही वृद्धिरूप करनेमे उपयोगकी निर्मलता करे यही कल्याणका मार्ग है । यह बाह्य समागम तो पुण्यका फल है और निर्मलता ससार बधनको छेदन करनेमे तीक्ष्ण असिधारा है । वह जितनी निर्मल रहेगी उतनी ही शीघ्रतासे इसका निपात करेगी । हमने आपके समक्ष सराग जातिके अर्थ भ्रमणका विचार किया था । कोईने बात न पूछी और न कोई साधन जानेका मिला, अत आपकी सम्मति ही सर्वोपरि मानकार यहीं रहना ही निश्चित रक्खा है । शेष यहॉके सर्व त्यागी आपको इच्छाकार कहते है । श्री आत्मानन्दजी चला गया । श्री सूरजमलजीका कार्य्य जैसा था वैसा ही है । "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे" इसीमे सन्तोष है । मै तो निर्द्वन्द्व हूँ, कुछ उसमे चेष्टा नहीं ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१ - ३)

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी साहब, योग्य इच्छाकार

पर्वराज सानन्द पूर्ण हुआ, दशधा धर्मको यथाशक्ति सुना, सुनाया, मनन किया। क्या आनन्द आया इसका अनुभव जिसको हुआ हो जाने । इसका पूर्ण आनन्द तो दिगम्बर दीक्षाके स्वामी श्री मुनिराज जाने । आशिक स्वाद तो व्रतीके भी आता है और इसकी जड अविरत अवस्थासे ही प्रारम्भ हो जाती है जो उत्तरोत्तर वृद्धि होती हुई अनन्त सुखात्मक फलका पात्र इस जीवको बना देती है । परमार्थ पथमे जिन जीवोने यात्रा कर दी है उनकी दृष्टिमे ही यह तत्त्व आता है, क्योकि इस पवित्र दशधा धर्म्मका सम्बन्ध उन्हीं पवित्र आत्माओसे है । व्यवहाररत तो उसकी गन्धको तरसते है । आडम्बर और है, वस्तु और है । नकलमे पारमार्थिक्क वस्तुकी आभा भी नहीं आती । हीराकी चमक काचमे नहीं । अत पारमार्थिक धर्म्मका व्यवहारसे लाभ होना परम दुर्लभ है । इसके त्यागसे ही उसाक लाभ होगा । व्यवहार करना और बात है और व्यवहारसे धर्म्म मानना और बात है । व्यवहारकी उत्पत्ति मन, वचन, काय और कषायसे होती है और धर्मकी उत्पत्तिका मूल कारण केवल आत्मपरिणति है । जहॉ विभाव परिणति है वहॉ उसमे धर्म मानना कहॉ तक सगत है ? आपकी परिणति अति शान्त है । यही कल्याणका मार्ग है । बाबू निर्मलकुमारकी मॉ सानन्द होगी । उनसे मेरा इच्छाकार कहना और बाबूजीसे भी मेरी दर्शनविशुद्धि, किसी प्रकारका विकल्प न करे ।

जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे ।
अनहोनी कबहूँ नहिं होसी काहे होत अधीरा रे ।।

विशेष क्या लिखूँ ?

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१ - ४)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका धर्म साधन अच्छे प्रकारसे होता होगा । अतरगके परिणामोंके ऊपर दृष्टिपात करनेसे आत्माकी विभाव परिणति का पता चलता है । आत्मा परपदार्थोंकी लिप्सासे निरन्तर दु खी रहता है । आना जाना कुछ नहीं, केवल कल्पनाओके जाल मे फॅसा हुआ अपनी सुधमे वेसुध हो रहा है । जाल भी अपनी ही कर्तव्यताका ही दोष है। एक जिनागम ही शरण है । यही आगम पचपरमेष्ठीका स्मरण कराके आत्माकी विभावसे रक्षा करनेवाला है । श्री चिरजीव निर्मलबाबूसे मेरा आशीर्वाद । उनकी निराकुलता जैन जनताका कल्याण करनेवाली है । उनकी मॉ साहबको इच्छाकार कहना । मेरा विचार श्री राजगृहीकी वन्दनाका है और कार्तिक सुदी ३ को यहाँसे चलनेका था परन्तु यहॉ पर बिहार उडीसा प्रान्तकी खडेलवाल सभाका कार्तिक सुदी ९/११ तक अधिवेशन है, इससे अगहनमे विचार है ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१ - ५)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया समाचार जाना । अब शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा होगा । स्वामी समतभद्राचार्यने तो ऐसा लिखा है -

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसां ।
स्वार्थो न भोगः परिभंगुरात्मा ।।
तृषोऽनुषंगान्न च तापशान्ति-
रिति रेवमाख्यद्भगवान् सुपार्श्वः ।।

जब तक आभ्यन्तर हीनता नहीं गई तभी तक यह बाह्य निमित्तोकी मुख्यता है और आभ्यन्तर हीनताकी न्यून्यतामे आत्मा ही समर्थ बलवान् कारण है । वही परम कर्तव्य इस पर्यायसे होना श्रेयस्कर है । लौकिक विभव तो प्राय· अनेक बार प्राप्त किये परन्तु जिस विभव द्वारा आत्मा इस चतुर्गतिके फन्देसे पृथक् होकर सानन्द दशाका भोक्ता होता है वही नहीं पाया । इस पर्यायमे महती योग्यता उसकी है, अत योग्य रीतिसे निराकुलतापूर्वक उसको प्राप्त करनेमें सावधान रहना ही तो हमे उचित है । मेरा श्री निर्मलकुमारकी मासे इच्छाकार कहना और कहना कि अब समय चूकनेका नहीं । यह श्रद्धान बडी कठिनतासे पाया है । बुआजी आदिसे धर्मस्नेह कहना । स्थिर प्रकृतिका उदय तो उनके है । यह निरोगिता भी कोई पुण्योदयसे मिली है । उन्हे बाह्य ज्ञान न हो परन्तु अन्त निर्मलता है । मैने अगहन सुदी १५ तक ईसरीसे ४ मीलसे बाहर न जाना यह नियम कर लिया है, क्योकि आपके शुभागमनके बाद कुछ चचलता बाहर जानेकी हो गई थी । चचलताका अन्तरग कारण कषाय है, उसका बाह्य उपाय यही समझमे आया है । श्रीद्रोपदीजी को कहिए जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाका स्वाध्याय करे ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१ - ६)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

श्री निर्मलबाबूकी मॉका समाचार भगतजी द्वारा जानकार चित्तमे क्षोभ हुआ परन्तु इस वाक्यको पढकर सन्तोष हुआ -

जे जस्स जम्हि देसे जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि ।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अहव मरणं वा ।।
तं तस्स तम्हि काले तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि ।
को सक्कइ चालयिदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा ।।

जो हो कुछ चिन्ताकी बात नहीं । इस समय उन्हे तात्त्विक और मार्मिक सिद्धान्त श्रवण कराके स्वात्मोत्थ निराकुल आनन्दामृतका आस्वादन कराके अनन्तानुपम सिद्ध भगवानका ही स्मरण करानेकी चेष्टा करानी ही श्रेयस्करी है । इस गोष्ठीको छोडकर लौकिक बातोकी चर्चाका अभाव ही अच्छा है । इस ससारमे सुख

नहीं, यह तो एक सामान्य वाक्य प्रत्येककी जिह्वा पर रहता है ठीक है, परन्तु संसार पर्यायके अभाव करनेके बाद तो सुख है । सुख कहीं नहीं गया, केवल विभाव परिणति हटानेकी दृढ़ आवश्यकता है । इस अवसर पर आप ही उनकी वैयावृत्तिमें मुख्य गणिनी है । वह स्वय साध्वी है । ऐसा शत्रुको पराजय करे जो फिरसे उदय न हो । यह पर्याय सामान्य नहीं और जैसा उनका विवेक है वह भी सामान्य नहीं । अत· सर्व विकल्पोंको छोड एक यही विकल्प मुख्य होना कल्याणकारी है जो असातोदयके मूल कारणको निपात करनेकी चेष्टा सतत रहनी चाहिये । असातोदय रोग मेटनेके लिए वैद्य तथा औषधादिकी आवश्यकता है फिर भी इस उपचारमे नियमित कारणता नहीं । अंतरग निर्मलतासे वह सामर्थ्य है जो उस रोगके मूल कारणको मेट देता है । इसमे वैद्यागिक उपचारकी आवश्यकता नहीं, केवल अपने पौरुषको सम्हालनेकी आवश्यकता है । श्री वादिराज महाराजने अपने परिणामोके बलसे ही तो कुष्ट रोगकी सत्ता निर्मूल की । सेठ धनञ्जयने औषधके बिना पुत्रका विषापहरण किया । कहाँ तक लिखे, हम लोग भी यदि उस परिणामको सम्हाले तो यह बिजलीका आतप क्या वस्तु है ? अनादि ससार आतपको शमन कर सकते है । मेरे पत्रका भाव उन्हे सुना देना ।

(१ - ७)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । श्री निर्मलबाबूकी माँकी विशुद्ध परणति है । असाताके उदयमे यही होता है । और महर्षियो को भी यह असातोदय अपना कार्य करता है परन्तु उनके महोदय की कृशता है, अत वह अघाती प्रवृत्ति कुछ कार्य करनेमें समर्थ नहीं होती । यही बात अशत श्री निर्मलबाबूकी माँमे भी है, अत वे सप्रसन्न इस उदयको निर्जरारूपमे परिणत कर रही है । उन्हे इस समय मेरी लघु सम्मतिसे तात्त्विक चर्चाका ही आस्वाद अधिक लाभप्रद होगा । ससार असार है कोई किसी का नहीं यह तो साधारण जीवोके लिए उपदेश है, किन्तु जिनकी बुद्धि निर्मल है और भावज्ञानी हैं उन्हे तो प्रवचनसारका चारित्र अधिकार श्रवण कराके-

> **''आतमके अहित विषय कषाय ।**
> **इनमे मेरी परणति न जाय ।।''**

यही शरण है ऐसी चेष्टा करना ही श्रेयस्करी है । अनादि कालके अद्यावधि ससारमें रहनेका मूल कारण यही विषय कषाय तो है । सम्यग्दर्शन होने के बाद विषय

कषायका स्वामित्व नहीं रहता, अत अविरत होते हुए भी अनन्त ससारका पात्र सम्यक्त्वी नहीं होता । यदि उनकी आयु शेष है तब तो नियमसे निर्मल भावों द्वारा असाताकी निर्जराकर कुछ दिन बाद हम लोगोको भी उनके साथ तात्त्विक चर्चाका अवसर आवेगा । आपका प्रबल पुण्योदय है जो एक धार्मिक जीवकी वैयावृत्त करनेका अनायास अवसर मिल रहा है । श्रीयुत भगतजीसे मेरी सानुनय इच्छाकार कहना । वह एक भद्र महाशय है । उनका समागम अति उत्तम है । श्री निर्मल बाबूकी मॉको मेरी ओरसे यही स्मरण कराना - **अरहंत परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा ।** व्याधिका सम्बन्ध शरीरसे है । जो शरीरको अपना मानते है उन्हे व्याधि है, जो भेदज्ञानी है उन्हे यह उपाधि नही ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१ - ८)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका बाह्याभ्यतर स्वास्थ्य अच्छा होगा । श्रीयुत निर्मल बाबूकी मॉका भी स्वास्थ्य अच्छा होगा । अनेक यत्न करने पर भी मनकी चचलताका निग्रह नहीं होता। आभ्यन्तर कषायका जाना कितना विषम है । बाह्य कारणोके अभाव होने पर भी उसका अभाव होना अति दुष्कर है । कहनेकी चतुरताका कुछ वश नहीं । श्रद्धाके साथ-साथ चारित्र गुणकी उद्भूति हो, शान्तिका स्वाद तभी आ सकता है । मन्द कषायके साथ चारित्र का होना कोई नियम नहीं । शेष आपके स्वास्थ्यसे हमे आनन्द है ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१ - ९)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

इस आत्माके अन्तरगमे अनेक प्रकारकी कल्पनाए उदय होती है और वे प्राय बहुभाग तो ससारका कारण ही होती है वही कहा है-

संकल्पकल्पतरुसंश्रयणात्वदीय,
चेतो निमज्जति मनोरथसागरेऽस्मिन् ।

तत्रार्थस्तव चकास्ति न किञ्चिनापि;
पक्षेपरं भवसि कल्मषसंश्रयस्य ।।

यह ठीक है, परन्तु जो ससारके स्वरूपको अवगत कर आंशिक मोक्षमार्गमें प्रवेश कर चुके हैं उनके इन अनुचित भावोंका उदय नहीं होना ही आशिक मोक्षमार्गका अनुमापक है । अव्रतीकी अपेक्षा व्रतीके परिणामोमे निर्मलता होना स्वाभाविक है । आपकी प्रवृत्ति देखकर हम तो प्राय शान्तिका ही अनुभव करते हैं । साधु समागम भी तो बाह्य निमित्त मोक्षमार्गमें है । मैं तो साधु आत्मा उसीको मानता हूँ जिसके अभिप्रायमें शुभाशुभ प्रवृत्तिमे श्रद्धासे समता आगई है । प्रवृत्तिमे सम्यग्ज्ञानीके शुभकी ओर ही अधिक चेष्टा रहती है, परन्तु लक्ष्यमे शुद्धोपयोग है । चि निर्मलबाबूकी माँको अब एकत्व भावनाकी ओर ही दृष्टि रखनी श्रेयस्करी है । वह अन्तरगसे विवेकशीला है। कदापि स्वरूपानुभूतिसे रिक्त न होती होगी ? सम्यग्ज्ञानीकी दृष्टि बाह्य पदार्थमे जाती है परन्तु रत नहीं होती । औदयिक भावोका होना दुर्निवार है परन्तु जबतक उनके होते अन्तरङ्गकी स्निग्धताकी सहायता न मिले तबतक यह निर्विष सर्पके समान स्वकार्यमे क्षम नहीं हो सकते । धन्य है उन जीवोंको जिन्हे अपनी आत्मशक्ति पर विश्वास हो गया है । यह विश्वास ही तो मोक्ष महलकी नींव है, इसीके आधार पर यह महल बनता है । इन्हीं पवित्र आत्माओके औदयिक भाव अकिञ्चित्कर हो जाते हैं । तब जिनके देशव्रत हो गया उनके भित्ति बनना कार्य आरम्भ हो गया । इसके पास इतनी सामग्री नहीं जो महल बना सके । इससे निरतर इसी भावनामे रत रहता है - ''कब अवसर सर्व त्यागका आवे जो निज शक्तिका पूर्ण विकास कर महलकी पूर्ति करूँ ?''

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१ - १०)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आजकल यहापर सरदी बहुत पडती है । शारीरिक शक्ति अब इतनी दुर्बल हो गई है जो प्राय अल्प बाधाओको सहनेमे असमर्थ है । इसका मूल कारण अन्तरङ्ग बलकी निर्बलता है । अन्तरङ्गकी बलवत्ताके समक्ष यह बाह्य विरुद्ध कारण आत्माके अहितमे अकिञ्चित्कर हैं, परन्तु हम ऐसे मोही हो गये हैं जो उस ओर दृष्टिपात नहीं

करते । शीत निवारणके अर्थ उष्ण पदार्थका सेवन करते हैं परन्तु जिस शरीरके साथ शीत और उष्ण पदार्थ का सम्पर्क होता है उसे यदि पर समझ उससे ममत्व हटा ले तब मेरी बुद्धिमे यह आता है वह जीव बर्फके समुद्रमे भी अवगाहन करके शीत स्पर्शजन्य वेदनाका अनुभव नहीं कर सकता । यह असङ्गत नही । घोर उपसर्गमे आत्मलाभ प्राप्तिवाले सहस्रश महापुरुषोके आख्यान है । श्री निर्मलबाबूकी माँजीका स्वास्थ्य अच्छा होगा, क्योकि बाह्य निमित्त अच्छे है । यह अन्तरङ्ग सामग्रीके अनुमापक है । यद्यपि ज्ञानी जीव इनमे कुछ भी उत्कर्ष नहीं मानता, क्योकि उसकी दृष्टि निरन्तर केवल पदार्थ पर ही जाती है । केवल पदार्थके साथ जहा परकी समिश्रणताकी प्रबलता है वहीं तो नाना यातनाएँ है अत आप निरन्तर उन्हे केवल आत्माकी ओर ही ले जानेका प्रयास करे । जिस जीवने यह किया वही तो समाधिका पात्र है । पात्र क्या तन्मय है । समाधिमे और होता ही क्या है । शरीरसे आत्माको भिन्न भावनेकी ही एक अन्तिम क्रिया है । जिन्होने शरीर सम्बन्ध कालमे वियोग होनेके पहले ही इस भावनाको दृढतम बना लिया है उनकी तो अहर्निश समाधि है । अन्तरङ्ग मोहकी वासना यदि पृथक् हो गई तब बाह्यसे यदि क्रियामे असातोदय निमित्तजन्य विकृति हो जावे तब फलमे बाधा नहीं और सातोदयमे अनुकूल भी क्रिया हो जावे और मोह वासना न गई हो तब फलमे बाधा ही है । अबके वर्षा बाद मेरा स्वास्थ्य भी कुछ विशेष सुविधाजनक नही फिर भी अच्छा ही है, इससे सन्तोष है । सन्तोष करना ही चरम उपाय है । वह पहिले नहीं होता । किसीके हाथसे उत्तम पुष्प ऐसे खड्डेमे गिरा जो मिलना कठिन हो गया । तब क्या कहता है 'कृष्ण हेतु' किन्तु यही बात पहिले हो तब क्या कहना है । अस्तु -

आ शु चि
गणेश वर्णी

(१ - ११)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

ससारकी दशा अति भयङ्कर है, यह यूरोपीय युद्धसे प्रत्यक्ष होगा । फिर भी स्नेहकी बलवत्ता है जो प्राणी आत्महितमे नहीं लगता । वही जीव सुखी है जो ससारसे उदासीन है, क्योकि इसमे सिवाय विपत्तिके कोई सार नहीं ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(१ - १२)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । श्री अनूपमाला देवीको इस समय आपसे भद्र जीव ही शान्ति कर सकते है । इस वर्ष यहा अत्यन्त गर्मी पड रही है । मैं पैदलके कारण नहीं जा सका । मेरी समझमे तो विकल्पोका कोई प्रायश्चित नहीं, असख्यात लोक प्रमाण कषाय है, अत जहातक बने अभिप्रायसे उनका पश्चात्ताप करना ही प्रायश्चित है । रस छोडना, अन्न छोडना तो दुर्बलावस्था मे स्वास्थ्यका बाधक होनेमे प्रत्युत विकल्पोकी वृद्धि ही का साधक होगा । विकल्पोका अभाव तो कषायोके अभावमे होता है । कषायो के अभावके प्रति तत्त्वज्ञान कारण है, तत्त्वज्ञानका साधक शास्त्र व साधु समागम है । वस्तुत आप ही आप सर्व कुछ समर्थ है, किंतु हमारी ही शक्तिको हमारी ही आभ्यतर दुर्बलताने अकर्मण्य बना रक्खा है । मनकी दुर्बलता ज्ञानकी उत्पत्तिमे बाधक है किन्तु कषाय व विकल्पोका साधक नहीं । अत मनकी कमजोरीसे आत्माका घात नहीं । अत उन्हें कहिये इस श्रद्धानको छोडो जो हमारा दिल कमजोर है । इससे विकल्प होते है । अन्तरङ्गसे यही भावना भावो जो हम अचित्य वैभवके पुञ्ज है । सोद्यम इन शत्रुओंका निपात करेगे । कायरतासे शत्रुका बल वृद्धिगत होता है और अपनी शक्तिका ह्रास होता है । अत जहाँ तक बने कायरता छोडो और अपने स्वरूपका ज्ञातादृष्टा ही अनुभव करो । वही बलवान और निर्बल सर्वको शरण है । समवसरणकी विभूतिवाले ही परम धाम जाते हैं और व्याघ्री द्वारा विदीर्ण हुए भी परमधामके पात्र होते है । सिहसे भी बलवान सुधरते है और नकुल बन्दर भी उसीके पात्र होते है । सातामे भी कल्याण होता है और असातामे भी कल्याण होता है । देवोके भी सम्यग्दर्शन होता है और नारकियोके भी सम्यग्दर्शन होता है । अत दुर्बलता सबलताके विकल्पको त्यागकर केवल स्वरूपकी ओर दृष्टि देनेका कार्य ही अपना ध्येय होना चाहिए । **बन्धका कारण कषायवासना है, विकल्प नहीं ।**

यहाँ अभी आनेका समय नहीं, बाह्य साधनोकी त्रुटि है । हम पोतके पक्षीकी तरह अनन्यशरण है ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(१ - १३)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । यद्यपि आभ्यन्तर स्वास्थ्य अच्छा है, तब यह भी अच्छा ही है परन्तु निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धसे यह स्वास्थ्य भी कथचित् उसमे उपयोगी है । आपके धर्मसाधनमे जो उपयोगी ज्ञान है वही मुख्य है । विशेष चि निर्मलबाबूकी मॉसे इच्छाकार कहना और कहना कि पर्यायकी सफलता इसीमे है जो अब भविष्यमें इस पर्यायका बन्ध न हो और वह अपने हाथकी बात है । पुरुषार्थसे मुक्तिलाभ होता है । यह तो कोई दुष्कर कार्य नहीं । मुझे ५ दिनसे ज्वर हो जाता है । अब कुछ अच्छा है । असाताके उदयमे यही होता है, परन्तु जिन चरणाम्बुजकी श्रद्धासे कुछ दु ख नहीं ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१ - १४)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द वहॉ पर होगी । आपके निमित्तसे यहॉ पर शान्ति का वैभव उचित रूपसे था । आप जहॉ तक स्वास्थ्य लाभ न हो शारीरिक परिश्रम न करे । मानसिक व्यापारकी प्रगतिका रोकना तो प्राय कठिन है फिर भी उसके सदुपयोग करनेका प्रयास करना महान् आत्माओका कार्य है । मनकी चचलतामे मुख्य कारण कषायोकी तीव्रता और स्थिरतामे कारण कषायोकी कृशता है । कषायोके कृश करनेका निमित्त चरणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट यथार्थ आचरणका पालन करना है । चरणानुयोग ही आत्माकी अनेक प्रकारके उपद्रवोसे रक्षा करनेमे रामबाणका कार्य करता है । द्रव्यानुयोग द्वारा की गई निर्मलताकी स्थिरता भी इस अनुयोगके बिना होना असम्भव है । तथा यही अनुयोग करणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट कारणोका भी परम्परा क्या साक्षात् जनक है ? अत जिनकी चरणानुयोग द्वारा निर्मल प्रवृत्ति है, वही आत्माऐ स्व-पर कल्याण कर सकती है । चि निर्मल बाबूकी जननी भी सानन्द होगी । उनसे मेरी इच्छाकार कहना । तथा बुआजी व उनकी सुपुत्री द्रोपदीजीसे भी यथायोग्य कहना ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(१ - १५)

श्री प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । श्रीयुत चि. निर्मलकुमार बाबूजीकी माँका स्वास्थ्य अब अच्छा होगा । असातोदयमे प्राणियोका नाना प्रकारके अनिष्ट सम्बन्ध होते हैं और मोहोदय की बलवत्तासे वे भोगने पडते हैं, किन्तु जो ज्ञानी जीव हैं वे मोहके क्षयोपशमसे उन्हे जानते हैं, भोगते नहीं । अतएव वही बाह्य सामग्री उन्हें कर्मबन्धमें निमित्त नहीं पडती, प्रत्युत मूर्छाके अभावसे निर्जरा होती है । यह ज्ञान वैराग्यकी प्रभुता है । जैसे श्री रामचन्द्रजी महाराजके जब मोहकी मन्दता न थी तब एक सीताके कारण रावणके वशके विध्वशमे कारण हुए और मोहकी कृशतामें सीतेन्द्र द्वारा अभूतपूर्व उपसर्गको सहन कर केवलज्ञान के पात्र हुए । अत चि निर्मल बाबूजीकी माँके मोहकी मन्दता होनेसे यह व्याधि रूप उपाधि प्राय शान्तिका ही निमित्त होगी । मेरी तो उनके प्रति ऐसी धारणा है । अत मेरी ओरसे उन्हे यह कह देना - यह यावत् पर्याय सम्बन्धी चेतन अचेतन आपके परिकर हैं उसे कर्मकृत उपाधि जान स्वात्मरत रहना । यही अनत सुखका कारण होगा । क्योकि वस्तुत कौन किसका है और हम किसके हैं यह सर्व स्वाप्निक ठाठ है, केवल कल्पना ही का नाम ससार है, क्योकि इस कल्पनाका इतना विशाल क्षेत्र है जो अद्वैतवादकी तरह ससारको ब्रह्म मान रक्खा है और इसी प्रभावसे नैयायिकोकी तरह स्वात्मामे तादाम्यसे सम्बन्धित जो ज्ञान उसको भी भिन्न समझ रक्खे हैं । इन नाना प्रकारके कल्पना जालसे कभी तो हम पर पदार्थके सम्बन्धसे सुखी और कभी दुखी होते है और इसीके कारण किसी पदार्थका सग्रह और किसीका वियोग करते करते आयुकी पूर्णता कर देते है । स्वात्मकल्याणका अवसर ही नहीं आता । जब कुछ मोह मद होता है तब अपनेको परसे भिन्न जाननेकी चेष्टा करते है और उन महात्माओके स्मरणमे स्वसमयको निरन्तर लगानेका प्रयत्न करते हैं और ऐसा करते करते एक दिन हम लोग भी वे ही महात्मा हो जाते हैं । क्योकि लोकमे देखा, दीपकसे दीपक जोया जाता है । बडे महर्षियोकी उक्ति है पहले तो यह जीव मोहके मद उदयमे 'दासोऽहम्' रूपसे उपासना करता है । पश्चात् जब कुछ अभ्यासकी प्रबलतासे मोह कृश हो जाता है, तब 'सोऽह सोऽह' रूपसे उपासना करने लग जाता है । अन्तमे जब उपासना करते हुए शुद्ध ध्यानकी ओर लक्ष्य देता है तब यह सब उपद्रवोसे पार हो स्वय परमात्मा हो जाता है, अत जिन्हे आत्मकल्याण करनेकी अभिलाषा होवे वे पहले शुद्धात्माकी उपासना कर अपनेको पात्र बनावे । पात्रताके लाभमे मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभ नहीं । श्रेणी चढने के पहले इतनी निर्मलता नहीं जो

शुभोपयोगकी गौणता हो जावे । जो मनुष्य नीचली अवस्थामे शुभोपयोगको गौण कर देते है वे शुद्धोपयोगके पात्र नहीं । शुभोपयोगके त्यागसे शुद्धोपयोग नहीं होता । वह तो अप्रमत्तादि गुणस्थानोमे परिणामोंकी निर्मलतासे स्वयमेव हो जाता है । प्रयास तो कथनमात्र है । सम्यग्यानी जीव शुभोपयोग होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासनासे अहर्निश पूरितान्त करण रहता है । शुभोपयोगकी कथा छोडो उसको अशुभोपयोगके निमित्तोके होने पर भी शुद्धोपयोगकी वासना है, क्योकि शुभाशुभ कार्य करनेका भाव न होने पर भी चरित्रमोहके उदयमे उनका होना दुर्निवार है, अत उसकी निरन्तर उन दोनो भावोके त्यागमे ही चेष्टा रहती है, किन्तु शुद्धोपयोगका उदय न होनेसे उसके शुभोपयोग होता है, करता नहीं । हाँ अशुभोपयोगकी अपेक्षा उसकी प्राय शुभोपमोगमे अधिकाश प्रवृत्ति रहती है । इसमे भी कुछ तत्त्व है । अशुभोपयोगमे कषायोकी तीव्रता है और शुभोपयोगमे मन्दता है, अत शुभोपयोगमे अशुभोपयोगसे आकुलता मन्द है और आकुलताकी कृशता ही तो सुखके भोगनेमे आशिक सहायक है । आगममे शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगकी समानाधिकारता श्री १०८ कुन्दकुन्द स्वामीने दिखाई है, अत सम्यग्दृष्टि इसीसे सिद्ध होता है जो अशुभोपयोगकी प्रचुरता नहीं । बाह्य क्रियासे अन्तरङ्गकी अनुमिति प्राय सर्वत्र नही मिलती, अत सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोके क्रियाकी समानता देख अन्तरङ्ग परिणामोकी तुल्यता समान नहीं । श्रीयुत महाशय भगतजीसे हमारा इच्छाकार कहना ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(१ - १६)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । जैन बालाश्रम खुल गया यह सुखद समाचार जानकर परम हर्ष हुआ । श्री अनूपादेवीको मेरी समझमे मूर्च्छाका कारण शारीरिक कृशता है, मानसिक कृशता नहीं । जो आत्मा मानसिक निर्मलताकी सावधानी रखनेमे प्रयत्नशील रहेगा वही इस अनादि ससारके अन्तको जावेगा । उस मानसिक बलमे इतनी शक्ति है जो अनन्त जन्मार्जित कलकोकी कालिमाको पृथक् कर देता है । इस ससारमे मानवजन्मकी महर्षियोने बहुत ही महिमा गायी है परन्तु उस महिमाका धनी वही है जो अपनी परिणतिसे कलुषताको पृथक् कर दे । वह कलुषता ही आत्माको अज्ञान चेतनाका पात्र बनाती है । कलुषता का मूल कारण यह जीव स्वय बनता है ।

हम अज्ञानसे परको मान उसके दूर करनेका प्रयास करते हैं और ऐसा करनेसे कभी भी उसके जालसे मुक्त होने का अवसर नहीं आता । वही श्री अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है -

रागजन्मनि निमित्ततां परद्रव्यमेव कलयन्ति ये तु ते;
उत्तरन्ति न हि मोहबाहिनीं शुद्धबोधविधुरांधबुद्धय: ।

यद्यपि अध्यवसान भावोंकी उत्पत्तिमे पर वस्तु भी निमित्त है, पर वस्तु ही निमित्त है इसका निरास स्वामीने किया है, फिर भी बन्धका कारण अध्यवसान भाव ही है और वह जीवका उस अवस्थामे अनन्य परिणाम है ।

रागो दोसो मोहो जीवस्सेव अणण्णपरिणामा ।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु एत्थि रागादी ।

अत बन्धका मूल कारण आप ही है । जब ऐसी वस्तु गति है तब इन निमित्तोंमे हर्ष विषाद करना ज्ञानी जीवोके सर्वथा नहीं । सर्वथा नहीं इसका यह भाव है जो श्रद्धा तो ऐसी ही है परन्तु चारित्रमोहसे जो रागादिक होते है उनका स्वामित्व नहीं, अत उसकी कला वही जाने । स्वास्थ्य अच्छा है परन्तु जिसको स्वास्थ्य कहते है उसका अभी श्रीगणेश भी नहीं ।

श्री अनूपादेवीसे कहना पर्यायकी कलासे घबराना नहीं -

मानुष विचारे की कहा बात ।
दिनकरकी तीन दशा होत एक दिनमें ।।

पर्यायकी तो यही गति है, अत अपनी परिणति पर ही परामर्श कर अजरामर पदकी अभिलाषा ही इस समय लाभप्रदा है । कुटुम्बादि सर्व पर हैं उनसे न राग और न द्वेष यही भावना श्रेयोमार्गकी गली है ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१ - १७)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

यहाँ पर इस वर्ष कुछ गर्मीका प्रकोप है । मेरा विचार हजारीबाग जानेका है । श्रीयुत चिरजीवी निर्म्मलबाबूकी माँजी का स्वास्थ्य अच्छा होगा । इस समय उनके

परिणामो की स्थिरता का मूल कारण आप है, क्योकि आपके उपदेशका उनकी आत्मा पर प्रभाव पडता है । ससारमे वे ही मनुष्य जन्मको सफल बनाने की योग्यता के पात्र है जो इसकी असारतामे सार वस्तुको पृथक् करने में प्रयत्नशील रहते है । श्री नेमिचन्द्र स्वामीका कहना है -

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए ।।
भा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं पि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ।।

इन दो गाथाओ मे सम्पूर्ण कल्याणका बीज है । जो आत्मा इनके अर्थपर दृष्टि देकर चर्य्यामे लावेगा वह नियमसे ससार समुद्रसे पार होगा, क्योकि ससारका कारण मूल राग द्वेष ही तो है । इस पर जिसने विजय प्राप्त कर ली उसके लिये शेष क्या रह गया । अत श्री मॉजी से कहना निरन्तर इसीपर दृष्टि दो और यही चिन्तवन करो । यही श्री १००८ भगवान् वीर प्रभु का अन्तिम उपदेश है । समाधिके अर्थ इसके अतिरिक्त सामग्री नहीं । काय कषाय कृश भी इसी परम मत्रसे अनायास हो जाते है । इस समय इन आत्मभिन्न पर पदार्थोमे न तो रागकी आवश्यकता है और न द्वेषकी, मध्यस्थ भावना ही की चेष्टा उपयोगिनी है । जो भी कुटुम्बवर्ग है उसकी तत्त्वज्ञानामृत द्वारा ससारातापसे रक्षा करना आपके सौम्य परिणामका फल होना चाहिए । धन्य है उन ज्ञानियोको जिनके द्वारा स्वपर हित होता है । जिसने यह अपूर्व मानुष कल्पवृक्ष द्वारा स्वपर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूल के सदृश किस कामका ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(१ - १८)

श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके विचार प्राय बहुत ही उत्तम है । बालाश्रमके विषयमे अभी थोडे दिन और ठहर जाईये और यदि अशान्तिकी विशेष सम्भावना हो तब श्रावण तक छुट्टी कर दीजिये । श्री पार्श्वप्रभुके प्रसादसे प्राय आप लोग इन सर्व आपत्तियोसे मुक्त रहेगे यह मेरी दृढ श्रद्धा है । यद्यपि परिग्रह दु खकर है परन्तु गृहस्थावस्था मे उसके बिना निर्वाह भी तो नहीं । श्री निर्मलबाबूजीकी मा का स्वास्थ्य मेरी समझमे शारीरिक बलकी

त्रुटिसे यथार्थ मनके कार्योंमे साधक नहीं होता । आप तो विशेष अनुभवशीला हैं, वर्त्तमानमें बहुतसे जीव ऊपरी व्रतोपर मुख्यता देते हैं और उनके हेतु आभ्यन्तर शुद्धिका ध्यान नहीं रखते । फल यह होता है जो परिणामोमे सहनशक्ति नहीं रहती । अत जहाँ तक बने उनको कुछ ऐसे पदार्थोंका सेवन कराया जावे जो मनोबलके साधक हों । आभ्यन्तर तो अरहन्त परमात्मा ज्ञायकस्वरूप आत्माका उपचार किया जावे और बाह्यमे जो अनुकूल और उन्हे रुचिकर हो । ससारमे शान्तिका एक रूपसे अभाव ही ऐसा नहीं, ससारमे ही शान्ति है किन्तु उसके बाधक कारणो को हेय समझकर उन्हे त्यागना चाहिए । केवल कथा से कुछ नहीं ।

जह णाम को वि पुरिसो बंधणयम्मि चिरकालपडिवद्धो ।
जइ ण वि कुणइ च्छेदं ण सो सारो पावइ विमोक्खं ।।

बन्धनकी कथासे बन्धका ज्ञान होगा, बन्धनमुक्ति सर्वथा असम्भव है । भोजनकी कथासे क्या क्षुधा निवृत्ति हो सकती है । अत सब प्रकारसे प्रयत्नकी उपयोगिता इन रागादिक शत्रुओके साथ जो अनादिका सम्बन्ध है उनके छोडनेमें ही सफल है । इस जीवके अनादिकालसे शरीरका सम्बन्ध है और अतीन्द्रिय ज्ञानके अभावमे ज्ञानका साधक यह शरीर ही बन रहा है । अत हम निरन्तर उसीकी सुश्रूषामे अपना सर्वस्व लगा देते हैं और अन्तमे वही शरीर हमारे अकल्याणका कारण बन जाता है । मेरा तो यह दृढ विश्वास है जो शरीर और मनोबल कम होनेपर भी यदि वासनाका बल विकृत नहीं हुआ है तब कुछ भी आत्माकी हानि नहीं है । देखिये विग्रहगतिमें मनोबलका अभाव रहने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रभावसे ४१ पाप प्रकृतियोका बन्ध नहीं होता, अत हमारी मुख्यता अन्तरङ्ग वासनाकी तरफ ही विशेष रूपसे सतर्क रहना अच्छा है । जहॉ तक बने श्री चि निर्मलबाबूकी मा अधिक न बोले और सरलसे सरल पुराणको स्वाध्यायमे लावे । पार्श्वपुराण और पद्मपुराण तथा जो रत्नकरण्डमे जो दशधा धर्मका स्वरूप है उसे ही मनन करे । मेरी बुद्धिमे उनका अन्तरग क्षयोपशम तो ठीक है किन्तु द्रव्यन्द्रियकी दुर्बलतासे वह उपयोग रूप नहीं होता । स्वप्नके भयसे जागना यह विकल्पो का साधक ही है, क्योंकि जागनेसे स्वास्थ्य की हानि ही होती है और स्वास्थ्यके ठीक न होनेसे अनेक प्रकारकी नई २ कल्पनाएँ होने लगती है । आप तो स्वय सर्व विषयक बोधशालिनी हैं, उनको समझा सकती हैं । विशेष क्या लिखूँ ? जागनेसे कषायकी शान्ति नहीं होगी । इस वर्ष यहाँ पर गर्मीका प्रकोप कम है । आप किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता न कीजिये । मुझे विश्वास है जिनके

धर्म्मकी श्रद्धा है उनके सर्व उपद्रव अनायास शान्त हो जावेगे । प्रथम तो अभी उपद्रवकी सम्भावना नहीं और हो भी तब भी आपके पुण्यसे आपके आश्रमकी रक्षा ही होगी । भावी विघ्न हरणके अर्थ बाहुबलि स्वामीका पूजन नियमसे होना चाहिये । श्रीयुत चिरजीव निर्म्मलबाबू व चक्रेश्वर कुमारको श्री शान्तिनाथ स्वामीका पूजन नियमसे करना चाहिये । अनायास सर्व विघ्न शान्त होगे । श्री अनूपादेवीका भी स्वास्थ्य इसीसे शान्त होगा । वे भी एक पाठ विषापहार का नियमसे किया करे । यदि आश्रमकी छात्रा रही भी आवे तब उनके द्वारा निरन्तर सहस्त्रनामका पाठ कमसे कम ३ बार तो अवश्य कराइये और प्रतिदिन महामन्त्र तीन माला ३ बारमे फेरे तथा निरन्तर अरहन्तका ही स्मरण करे, कुछ भी आपत्ति न आवेगी ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(१ - १९)

श्रीयुत प्रशममूर्ति साहित्यसूरि श्री चन्दाबाई जी, योग्य इच्छाकार

आपका धर्मध्यान सानन्द होता होगा, क्योकि आपको इन दिनो एक निर्मल भव्यमूर्ति श्री निर्मल बाबूकी माताकी सुश्रूषा करने से वैयावृत्तका अनायास निमित्त मिल गया है । धर्मात्मा जीव वही हैं जो कष्ट कालमें धीरतासे विचलित नहीं होते । यो तो 'वस्त्राभावे ब्रह्मचारी' बहुतसे मिलेगे, परन्तु आपत्ति कालमे शान्तिसे समयका निर्वाह करनेवाले विरले ही होते है । वही जीव जगतकी वायुसे अपनी रक्षा कर सकते है जिन्हे सत्य आत्मज्ञान का परिचय है । वास्तव बात तो यही है । अधिक पर पदार्थोकी सगतिसे किसी ने सुख नहीं पाया । इसको त्यागनेसे ही सुखके पात्र बने । अब उनका शारीरिक रोग शान्त होगा । मेरा तो दृढ विश्वास है, पहले भी शान्त था, क्योकि जिसे अन्तरङ्ग शान्ति है उसे बाह्य वेदना कष्टकरी नहीं होती । मेरा उनसे धर्मस्नेह पूर्वक इच्छाकार कहना और कहना जितनी शान्ति है उसकी रक्षा पूर्वक वृद्धि ही इस वेदनाका मुख्य प्रतीकार है । सर्व त्यागी मण्डल आपकी शान्तिवृद्धिका इच्छुक है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

ब्र. अनूपमाला देवी

(श्रीमती ब्र अनूपमाला जी देवी आरा निवासी प्रसिद्ध रईस स्व बाबू देवकुमारजीकी पत्नी है । श्रीमान् बाबू निर्मलकुमार जी और बाबू चक्रेश्वरकुमार जी इनके पुत्ररत्न है । इनमे से श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजी आज हमारे बीच नहीं है । इनकी शिक्षा प्राइवेट रूपसे हिन्दी तक सीमित है फिर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होने धर्मशास्त्रकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है ।

ये प्रारम्भसे ही धर्म कार्यो मे सावधान रहीं है और अपने पतिके प्रत्येक धार्मिक कार्यमे योगदान देती रही हैं । बनारसका स्याद्वाद विद्यालय भवन और आराका जैन सिद्धान्त भवन इन्हीं दम्पति युगलकी पुनीत सेवाका फल है । इन्होने और भी अनेक लोकत्तर कार्य किये है ।

इन्होंने फाल्गुन सुदि ५ वि स १९३७ को श्री १०५ क्षु जिनमती अम्माके सानिध्यमे ब्रह्मचर्य प्रतिमाका व्रत स्वीकार किया था और उसका उत्तम रीतिसे पालन करती हुई ये श्री जिन मन्दिर जीमे धर्मध्यानपूर्वक जीवनयापन कर रही है । वृद्धावस्था होने पर भी ये आत्मकार्यमे पूर्ण सावधान है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य श्रद्धा है । पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये कतिपय पत्र यहा दिये जाते है ।)

(२ - १)

श्री शान्तिरसपानकर्त्री अनूपमाला देवी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, वृत्त जाने । स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा है यह भी भीतरकी शुद्धिका ही माहात्म्य है । समाधिमरण तो जब समय आवेगा अनायास हो जावेगा, उसकी चिन्ता न करो । केवल वर्तमान परिणामो की निर्मलतापर दृष्टि रक्खो, क्योकि सम्यग्ज्ञानी जीवके जो औदयिक भोग है उसमे उसके वियोग बुद्धि है और आगामी की अभिलाषा नहीं । अतीतका प्रतिक्रमण है । ऐसी जिसके सावधानता है उसे भय किस बातका । जब आपका परिणाम वर्तमानमे उत्तम है तब उत्तरकालमे उसका फल उत्कृष्ट ही होगा। आप यह बात अतरगसे अच्छी तरह हृदयमे धारण कर लो कि पञ्चम गुणस्थानवालेके वीतरागी मुनिकी शान्तिका आस्वादी नहीं आ सकता । ध्यान भी वहीं तक होगा जितनी कषायक कृशता है । परिग्रहके सम्बन्धसे पञ्चम गुणस्थानमें रौद्र ध्यान तककी

सम्भावना है परन्तु वह अधोगतिका कारण नहीं । सर्वथा मूर्च्छाका त्याग अणुव्रतवालो के नहीं हो सकता । अत व्यर्थकी चिन्ता न करो और सानन्द सर्व पदार्थो से ममत्वको छोडनेकी चेष्टा करो । अब जहाँ तक बने आत्माका परिग्रह आत्मा ही है, इसका निरन्तर रसास्वाद लो । बुद्धिमान् मनुष्य परको अपना परिग्रह नहीं मानता । तब जो आपके भाव होते हैं वह भी तो औदयिक हैं । उन्हे अनात्मीय जान उनसे अपने को भिन्न समझो । उनमे जो ज्ञायक भाव है उसे आत्मीय जान, उसीमे गत हो, उसीमे सन्तोष करो, उसीसे तृप्ति होगी । और इस समय सुगम ग्रन्थोका जो सरल रीतिसे समझमे आ जावे श्रवण करो । परमात्मप्रकाश बहुत उपयोगी ग्रन्थ है । समाधि शतक पूज्यपाद स्वामीका अद्भुत ग्रथ है । उसका भी स्वाध्याय श्रवण करो । और कायकी कृशताको गौणकर कषायकी कृशता पर ध्यान देना । बाह्य त्यागकी वहीं तक मर्यादा है जो आत्मपरिणामोमे निर्मलताका साधक हो ।

आ. शु. चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(२ - २)

श्री शान्तिमूर्ति अनूपादेवीजी, इच्छाकार

आपने आजन्मसे धर्मध्यानमे अपनी आयुको बिताया । जब विभावोको अवसर था उस कालमे अपने स्वरूपकी सावधानतासे रक्षा की । अब तो शान्तिसे ही स्वरूपकी उन्मुखतामे ही अपनी वृत्ति रखना । यही तो अवसर शत्रुके पराजय करने का है । उसके सहायक मन, वचन और काय तो दुर्बल हो ही गये है । अब तो केवल अपने ज्ञाता दृष्टाकी स्मृतिकर उसे ऐसा पछाडो कि फिर उठनेका साहस न करे । आपको तो चन्द्रिका की ज्योत्स्ना भाग्यसे मिल गई है जो शत्रुको छिपने का भी अवसर नही मिल सकता । एक बात हमारी मानना, जो गुड़ देनेसे मरे उसे विष न देना । अत अब कायकी कृशताके लिये उद्यम न करना । स्वयमेव भाग्योदयसे हो रही है अब तो यही भावना भावो -

इतो न किञ्चित् परतो न किञ्चित्
यतो यतो यामि ततो न किञ्चित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किञ्चित्
स्वात्मावबोधादधिक न किञ्चित् ।।

न शीतलाश्चन्दनचन्द्ररश्मयो
न गांगमम्भो न च हारयष्टय: ।
यथा मुने तेऽनघवाक्यरश्मय:
शमाम्बुगर्भा शिशिरा विपश्चितां ।।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(२ - ३)

श्री शान्तिमूर्ति अनूपादेवी, योग्य इच्छाकार
श्रीयुत प्रशममूर्ति चन्दावाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपके दिल और दिमाग कमजोर हैं सो इससे आपकी जो चरम अभिलाषा है उसमे तो यह योग बाधक नहीं, क्योकि ज्ञानकी पूर्णताका विकाश तो भाव मनके अभावमे ही होता है और परम यथाख्यातचारित्रकी प्राप्ति काय योगके ही अभावमे होती है । मन जितना बलिष्ठ होगा उतना ही चञ्चल होगा, तथा इन्द्रियोमे जितनी प्रबलता होगी उतनी ही विषयोन्मुख होने में साधक होगी। अत इनकी यदि निर्बलता हो गई, हो जाने दो । अब रही बात भावो की शुद्धताकी सो भावो की अशुद्धताका कारण मिथ्यात्व और कषाय है । उस पर विचार करिये । मिथ्यात्व तो आपकी सत्ता मे है ही नहीं । अब केवल कषाय ही बाधक कारण रह गया । अस्तु, कषायके होने मे बाह्य नोकर्म विषयादिक हैं सो उनके साधक कारण इन्द्रियादिक है, वह आपके पुण्योदयसे कृश ही हो गये हैं । अब तो केवल 'सिद्धेभ्यो नम ' की ही भावना कल्याणकारिणी है । कल्याणके अर्थ ही इन साधनो की आवश्यकता है । आत्मा यदि देखा जावे तब स्वभावसे अशान्त नहीं, कर्म कलक के समागमसे अशान्त सदृश हो रहा है । कर्म कलकके अभावमे स्वयमेव शान्त हो जाता है । जैसे श्री पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री शीतलमूर्ति सीताजीके विरहमे कितने व्याकुल रहे जो वृक्षोसे पूछते है - तुमने सीता देखी है । वही पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी श्री लक्ष्मणके मृत शरीरको ६ मास लेकर सामान्य मनुष्योकी तरह भ्रमण करते रहे और जब कर्म कलक उपशम हुआ सब उपद्रवोसे सुरक्षित हो स्वाभाविक आत्मोत्थ अनुपम चिदानन्दमय होकर मुक्तिरमाके बल्लभ हुए । यही बात ज्ञानसूर्योदय नाटकमे आयी है -

कलत्रचिन्ताकुलमानसो यो जघान लङ्केशमवाप्तयुद्ध: ।
स किं पुन: स्वास्थ्यमवाप्य लोके समग्रधीर्नो विरराम राम: ।।

अत सम्पूर्ण विकल्पोको छोड निर्बलावस्थामे एक यही विकल्प करना अच्छा है - अरहत परमात्मा ज्ञायक स्वरूप आत्मा । अथवा यह भावना श्रेयस्करी है । आपका मन निर्बल है और मन ही आत्माको नाना प्रकारकी चचलतामे कारण है । निर्बल शत्रुका जीतना कोई कठिन नहीं, अत ज्ञानासिकर ऐसा निपात करिए जो फिर शिर न उठा सके । इसके वश होते ही और शेष शत्रु सहज ही मे पलायमान हो जावेगे।

यही परमात्मप्रकाशमे योगीन्द्रदेवने कहा है -

''पचहं णायकु वसि करहु जेण होंति वसि अण्ण ।
मूल विणट्ठइ तरुवरह अवसइं सुक्कहिं पण्ण ।।''

आपकी इस समय जो चचलता है वह इस विषयकी है कि हमारा अन्तिम समय अच्छा रहे सो निष्कारण है, क्योकि आपने उस मार्गमे प्रयाण कर दिया । अब उतावली करनेसे क्या लाभ ? अत श्री धनञ्जयके इस श्लोकको विचारिये कैसा गम्भीर भाव है -

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि ।
छायातरुं संश्रयत: स्वत: स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभ: ।।

अत स्वकीय कल्याणका मार्ग अपनेमे जान सानन्द काल यापन करिए और यह पाठ निरन्तर चिन्तना करिये -

सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽह निर्विकल्पोऽह उदासीनोऽह निजनिरञ्जनशुद्धात्मसम्यग्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयर त्नत्रयात्मक निर्विकल्पसमाधिसजातवीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसवेदनज्ञानेन स्वसवेद्यो गम्य प्राप्यो भरिता विज्ञोऽहम् । रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभपञ्चेन्द्रियविषयव्यापारमनोवचन - कायव्यापारभावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूत भोगाकाक्षारूप-निदानमायामिथ्यात्वनिदानशलत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहितशून्योऽहम् जगत्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायै कृत-कारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयनयेन तथा सर्वेऽपि जीवा इति निरन्तर भावना कर्तव्या ।

आ शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

ब्र. माता पतासीबाईजी

(श्रीमती ब्र माता पतासीबाईजीका जन्म भाद्रपद शुक्ला १० वि.स १९५१ को मारौठमे हुआ है । पिताका नाम श्री छगनमलजी छावडा और माताका नाम श्री मॉगीबाईजी तथा जाति खण्डेलवाल है । पिताके घर आपको हिन्दीकी सामान्य शिक्षा मिल सकी थी । उसके बाद व्रती जीवनमे आपने श्री पण्डिता भूरीबाईजी इन्दौर के सहवासमे रहकर धर्मशास्त्रका ज्ञान खूब बढाया है और स्वाध्याय द्वारा वह और भी अधिक माज लिया है । वक्तृत्वकलामे आप बडी निपुण है ।

विवाह होनेके बाद १६ वर्षकी उम्र ही इनको वैधव्य जैसे अभिशापका सामना करना पडा । किन्तु ये घबडाई नही और अपने जीवनको धार्मिक क्षेत्रमे मोड दिया । इन्होने वि स १९८६ मे जैनविद्रीमे श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिए थे । उनका ये बराबर निर्दोष रीति से पालन करती आ रही है।

इन्होने अब तक गया, सीकर आदि स्थानो पर २५ महिला पाठशालाएँ स्थापित कराई हैं और विद्यादानमे लगभग १३,०००) खर्च किया है । इनका वर्तमानमे मुख्य निवास गया है । ये स्वभावसे बडी भद्र, मितभाषिणी और दानशीला है । बिहार प्रान्तमे नारी जागरणका पूरा श्रेय इनको है । ऐसी आदरणीय तपस्विनी महिलारत्न वर्तमानमे अपने बीच विद्यमान है इसका समाजको गर्व है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य श्रद्धा है और इनका अधिकतर समय उनके सानिध्यमे व्यतीत होता है । यहॉ कुछ ऐसे पत्र दिये जाते है जो पत्राचारके फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हे लिखे है ।)

(३ - १)

प्रशममूर्ति श्री पतासीबाई जी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आप सानन्द स्वाध्याय कीजिये । आने जानेमे स्वाध्याय नियमको विशेष क्षति पहुँचती है । पैदल यात्रा उस समयकी थी जब सघ चलता था । अब एकाकी आदमीकी यात्रा तो केवल कष्टकरी है । निमित्तकारण उत्तम मिलना चाहिये । आप जानती है केवल नन्हेके साथमे कहा तक परिणामोकी निर्मलता

रहती । बाबूजीके सात भी जाते तब भी विशेष लाभ न था । हम तो पैदल जाते और वह सवारीमे जाते तब मार्गमे बोलने को या तो वनके वृक्ष थे या नन्हे और फिर मार्गमे ठीक ठहरने का सुभीता नहीं, रसोई बनाने को सुभीता नहीं, जहा जाओ प्रासुक पानी की दिक्कत । अत इन सब बाधक कारणो का अनुभव कर यहीं रहना ही उचित समझा और यह नियम किया है कि प्रतिदिन इस यात्राकी विघ्नशान्तिके अर्थ पूर्ण समयसार सस्कृत टीका सहित वाचना । यदि किसी दिन आलस आजावे तब एक रस छोडकर भोजन करना । बीमारीमे नियम नहीं । बाबूजीको आप समझा देना जो मेरा विकल्प न करे । हम तो यहापर उन्हींके निमित्त आये, अत उनका उपकार नहीं भूल सकते । यह बात वे जानते है । यदि वे न होते तब दो वर्षमे यहा आना मुश्किल था । उन्हीं का साहस था जो लाए । अब आप भी शीतकालमे दो मास शान्तिसे गयामे रहिये और वहा के मनुष्य और स्त्री समाजका कल्याण करने मे निमित्त कारण बनिये । कल्याणका मार्ग सर्वमे है । उद्भूत होने का निमित्त मिलना चाहिये । देखिये देवोमे मनुष्योकी अपेक्षा अधिक शक्ति है तथा उस पर्यायमे पीतादि ही लेश्या है, परन्तु फिर भी कर्मभूमि तथा मनुष्य पर्यायके अभावमे मोक्षमार्गकी व्यक्तता नहीं । सम्यक्त्वमात्रकी ही योग्यता है । यहा के निमित्त इतने उत्तम है जो अनायास इस पर्यायसे साक्षात् मोक्षमार्गका लाभ यह जीव ले सकता है । अत आपका भी वहा कुछ दिन जनता की ओर दृष्टि देनी चाहिये । हमारी वृत्ति तो पराधीन है । प्रथम तो हम परिणामो से चपल है तथा बातमे पराधीन है । आजकल ऐसे जीव नहीं जो किसीकी स्थिरता करे, दोष देखनेवाले ही हैं। यह सब कलिका प्रभाव है । हमारा तो यहा तक विचार आता है कि क्षेत्रन्यास कर लेवे, परन्तु अभी एक बार चरम प्रभुकी भूमि स्पर्श करने का भाव है और कोई शल्य नहीं । काशीसे बाह्य क्षेत्रकी तो शल्य नहीं, क्योकि उस व्रतकी योग्यता नहीं । इस प्रान्तमे आनेका कारण श्री कन्हैयालालजी वा श्री लल्लू बाबू थे । परन्तु अब वे तटस्थ है और यह तटस्थता यथार्थ अच्छी वस्तु है । मेरी तो यहा तक धारणा है जो स्वात्मकल्याणमे तटस्थता ही मूल कारण है । परन्तु सर्वत्र तटस्थता यथार्थ होनी चाहिये । त्यागका अर्थ ही तटस्थ है । जहा त्यागमें कषाय है वह तो अशान्तिका मार्ग है ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - २)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

वही जीव ससारमें सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदयमे कषायकी वासना न रहे । जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी निर्मलताके अर्थ होता है । जहा पर बाह्य व्यवहार और उनके कारणोंपर ही लक्ष्य है उनसे क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नहीं । अन्त सार बिना जो भाव होगा वह थोथा है ।

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(३ - ३)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शान्तिका लाभ उसी आत्माको होगा जो अपने उत्कर्ष गुण को व्यर्थ के अभिमानमे न आकर रक्षा करेगा । आजकल लोक (अज्ञानी) प्रशसामें फूले नहीं समाते । यह धर्मका बाह्य स्वरूप इसी अर्थ पालते है । आभ्यन्तर कलुषताके अभावमे बाह्य सदाचारताका कोई मूल्य नही । ऐसे मनुष्योको उसकी गन्ध नहीं । गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योकि गृहस्थ तो आतुर है । जहा उन्हे कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसीके अनुयायी हो जाते है और उसकी ऊपरी वैयावृत्त कर अपना भला समझते है । अथवा यो कहिए इन लोगोको अपने पक्षमे कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोकी रक्षा करते है । सत्यस्वरूपमे उनके स्वेच्छाचारिताका घात है । हम तो एक कोणमे है, अत पार्श्वप्रभुकी चरणसेवा ही इससे इष्ट की है । यहा पर उन प्रलोभनोकी त्रुटि नहीं । यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गध नहीं आई और ऐसे आडम्बरोमे शान्ति काहे की ? घर छोडा, दुनियाको घर बना लिया, धिक् इस परिणतिको । इसका अर्थ लल्लूसे पूछना वह चिट्ठीका अर्थ ठीक कहेगा । उनसे भी दर्शनविशुद्धि । वह अब हमसे दूर है । श्री सूरजमलजीका हम बहुत उपकार मानते है। जिन्होने यह धर्मायतन बना दिया । श्री विलासरायजीसे कहना ससारकी दशा देखकर भी आप अपने समयका सदुपयोग नहीं करते ।

श्री पतासीबाई, यदि आत्मशान्तिकी इच्छा है । तब यथार्थ रूपसे स्वात्मभावनाको करना और कायरताको आश्रय न देना । केवल बाह्य त्यागमे अपनी स्वात्मपरिणतिको लगा न देना ।

ईसरी, (हजारीबाग)
वैसाख, बदि १४, स १९९७

आ. शु. चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(३ - ४)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । पत्रोंसे न शान्ति मिलती है, न अशान्ति मिलती है और न स्थानोमे शान्ति है और न अशान्ति है । यह हमारी मोहकी बलवती कल्पना है जो अपनेमे हुई चीजको परमे आरोप करते हैं ।

मेरी तो यहॉ तक धारणा है जो परके सम्बन्धसे जो भी कार्य होगा वह शुद्ध नहीं हो सकता । शुद्धपरणति केवल आत्मामे होती है । शुद्धता पर्याय हीके निमित्तसे नहीं होती, अत वह केवल एक ही द्रव्यकी पर्याय है । मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योगसे चेतन भी है और अचेतन भी है । परन्तु जो पर्याय कर्मके अभावसे उत्पन्न होती है वह आत्मस्वरूप ही है और उसीका नाम शान्ति है । ससारके अन्दर यदि बिना मूल्यके पदार्थ मिलता है तो उसका नाम शान्ति है । जिसे हम कष्टसाध्य समझते है वह इतनी सुगम वस्तु है जो वहॉ कष्टका काम ही नहीं । अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयत्न ही उसकी प्रथम सोपान है । अभिप्राय निर्मल बनानेके लिए कष्टादिककी आवश्यकता नहीं है । प्रत्युत कष्टोके कारणोके अभावमे ही उस महत्तत्त्वकी जड है, अत यह स्वपरके उपकारोके विकल्पको छोडो और सहज रीतिसे जीवन व्यतीत करो। अपने आप उपद्रवोको बनाना और फिर उनको दूर करनेके लिये आकुलता ज्ञानी जीव नहीं करता । शान्तिका मूल कारण कहीं नहीं और सर्वत्र है । सावधान जीवको सर्वत्र सुलभ है । जहॉ-जहॉ वीतराग जाते है वही भूमि तीर्थ हो जाती है । भूमिसे धर्म नहीं, धर्मात्मा पुरुषोके हृदयमे धर्म है । अत सुखके कारण धर्मको, जिस समय रागादिक अनात्मधर्मोकी उपेक्षा होगी, आप ही मे देखोगे । जहॉ तक बने स्वाध्यायका तत्त्व शान्ति ही मे देखना । हमने वैशाख सुदि १ से १५ दिन तक मौन लिया है ।

ईसरी, (हजारीबाग)
वैशाख बदि १४, स १९९७

आ. शु. चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(३ - ५)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

ससारमे वही जीव शान्तिलाभका पात्र हो सकता है जिसकी मूर्च्छा परपदार्थों से

हट गयी है । हमारा जीवन इसलिये है कि उसे सफल बनावे । केवल परपदार्थोकी प्रशसासे प्रसन्न रहकर कालक्षेपण करना जीवनका दुरुपयोग है । प्राय. मोही जीव जहॉ अन्य आदमियोने प्रशसा की फूल जाता है । यही ससारका कारण जघन्य भाव है । जिसको प्रशसामे आनन्द है उसे निन्दामे विषाद है । जिसे हर्ष-विषाद दोनो है वह पामर है, ससारी जीव है । जिसकी प्रकृति इससे परे है वही मुक्तिका पात्र है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - ६)

इच्छाकार

आपका पत्र आया, शरीरकी निरोगताके अर्थ जो उपाय बताये, समादरणीय है। प्राय जितने मनुष्योसे समागम हुआ सभीने शरीरकी दुर्बलता पर पश्चाताप प्रकट किया, उचित ही है । किन्तु जिस रोगसे मेरी आत्मा अत्यन्त दुर्बल आकुलित रहती है, एक समय भी स्वस्वभावमे स्थिरताको नहीं पाती तथा यदि ऐसी पद्धतिका अनुसरण करती रही तब आगामी भी इसी दुर्दशाका पात्र रहेगी । इसके अर्थ किसीने भी मेरे को कुछ न कहा और न इस दुर्दशासे मुक्त होने का उपाय बताया, अत इसका यही अर्थ है कि न मैने इस विषयमे उनको दिग्दर्शन कराया, न उन्होने मेरेको इसके बदलेमे इसका कुछ उपाय बतलाया । यह तो परस्परका व्यवहार है । शरीरकी निरोगता थोडी देरको कल्पना करो हो ही गई तब क्या आनन्द आया, प्रत्युत परद्रव्यकी अनुचित प्रवृत्ति पर पश्चाताप तो होता है, अत नीरोगापेक्षया मै अपनी रोगावस्थाको अच्छा समझता हूॅ । यद्यपि एकान्त ऐसा नियम नहीं परन्तु पहले वीतराग होनेमे जितना सहकारी बाह्य-वस्तुका वियोग हुआ उतना सयोग नहीं हुआ । प्रथमानुयोगमे प्राय ऐसा ही देखनेमे आता है, अत हमने तो निश्चय कर लिया शरीर की स्वास्थ्यता हमारे अधीन कार्य नहीं । क्यो इतना प्रयास किया जावे यद्वा-तद्वा प्रयोगोकी चेष्टा करनी पडे । उचित उपाय अपनी आसक्तिके अनुकूल करनेमे कौन चूकता है । यदि उपाय करनेमें भी विफलता हो तब सतोष ही करना चाहिये । न करो तो कर ही क्या सकते हैं ? अनादि कालसे हम आहारादि सज्ञाओसे पीडित है और उस पीडाका जो प्रतिकार करते है वह आबाल गोपाल विदित है । यद्यपि वह प्रतिकार मृगतृष्णाके तुल्य है परन्तु क्या करे । जो उपाय उस दु खसे निवृत्तिका है वह तो अनुभवगम्य नहीं, क्योकि अज्ञानी है । जो इस उपाय के जाननेवाले हैं उनकी

उपासनासे दूर भागते है, अत निरन्तर दु खसे सतप्त रहते है । अत जो उपाय अनादि कालसे अपनी सत्ताका एकाधिपत्य जमाये हुए आत्मामे रम रहा है उसीका आश्रय करते है । मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथामे अब समयका दुरुपयोग न कर आत्माकी शक्तिको उपयोगमे लाकर अग्निसदृश कर्मेन्धनको दग्ध कर स्वात्मदिव्यज्ञान द्वारा स्वपदका लाभ लेना चाहिए । अब इस अनादिकाल निहित मोहको निधन करना ही अपना कर्तव्य है । सत्य पुरुषार्थ तो वह है जो फिर इन देहस्थ रोगोकी यातना न हो। कर्तव्य पथमे आना ही मनुष्य पर्यायकी प्राप्तिका फल है । स्वाध्याय करके ज्ञानका लाभ तो बहुत मनुष्यो के हो जाता है किन्तु ज्ञानपथ पर यथाशक्ति प्रवृत्ति करना किसी ही भाग्यशाली आत्माके होता है । आत्महित त्रियोग और कषायोकी प्रवृत्तिसे परे है । योग आत्माका घातक नही, घातक को कषाय है । लोकमे चञ्चल बालककी निन्दा नही होती, किन्तु जो प्रमादी और क्रूर होता वह निन्दनीय है । एव मोक्षमार्गमे योगो द्वारा जो आत्मप्रदेश प्रकम्पन है वह बाधक नही, कषायका फल भी चारित्रका बाधक है । अत इसी कषायको जितना भी पुरुषार्थसे निवारण कर सको करो । व्यर्थ प्रमादमे आयुको न जाने दो, क्योकि इस समय जो सामग्री उपलब्ध है उसका मिलना सामान्य पुण्यका फल नही । प्राप्त ज्ञानका उपयोग न कर विशिष्ट की आकाक्षा करना यानी पानी मे रोटीका प्रतिबिम्ब देख जैसे कूकर उसके लिए मुखकी रोटी त्यागकर प्रतिबिम्बकी रोटीकी चेष्टा कर पश्चाताप करता है तत्तुल्य है । विशेष फिर ।

अ सु १०, स १८९८

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ७)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

इस कालमे स्वाध्यायसे कल्याणमार्गकी प्राप्ति सुलभ है । दूसरे तपके लिये शारीरिक स्थिरताकी महती आवश्यकता है । अनशनादि तप जैसे सुखद होना चाहिये उस रूपसे प्राय उनका होना कुछ शरीरकी हीनतासे, कुछ मनोदुर्बलतासे प्राय असुलभ है । अन्तरङ्ग तपमे सर्व प्रथम मनोबलकी बडी आवश्यकता है । मनोबल उसीका प्रशसनीय है जो प्रपञ्च और बाह्य पदार्थो के ससर्गसे अपनी आत्माको रक्षित रख सकेगा । आज कलके लोगो की यह स्वाभाविक परणति हो गयी है कि

स्वप्रशसाके भिक्षुक और परनिन्दाके वक्ता बन गये है । कल्याण-मार्गमे विभावभावोका आदर नहीं । अत इन सब विषयोमे तटस्थ रह अपना हित करना । व्यर्थकी सामग्री सग्रह करना भी एक तरह से विभावभावके पोषणमे नोकर्म है । कोई भी कार्य हो उसके फलका परामर्श कर आरम्भ करना ही परिपाकमें दु'खावह नहीं होता । शातिमार्गकी कथा सुनकर एकदम बाह्य सामग्रीको त्याग देना क्या शान्तिमे कारण है ? शान्तिका कारण अशान्तिके आभ्यन्तर बीजको नाश करने से होगा । यह बाह्य तो उसमे यदि वह भाव हो तो कर्म्म हो जाता है सो भी उदासीनरूपसे । जितने भी अचेतन पदार्थ रागादिकमे निमित्त पडते है तटस्थरूपसे वास्तवमे तो हम ही उन्हे निमित्त बनाते है । उनकी सर्वथा ऐसी शक्ति नहीं जो हठात् रागादिक उत्पन्न करा देवे । मेरी तो चेतनअचेतन कारणोमे एकसी धारणा है । विशेष क्या लिखूँ, क्योकि हमारा लिखना मोहज भाव है । इसकी सामर्थ्य कितनी है यह लिखना तो ऋषियो द्वारा ही साध्य है । जिसके अन्तर्गत वीतरागताका रस टपकता है । मूर्च्छावालोकी लेखनी कहाँ तक असली बातको प्रत्यय करा सकती है । सुवर्णमे जडा हुआ काच हीरा की आभा नहीं ला सकता । आवश्यकता की लिखी सो आवश्यकता तो इस बातकी है जो आवश्यकताकी जननी के गर्भमे न जाना पडे ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ८)

श्रीयुत प्रशमगुणसम्पन्न पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

सानन्दसे धर्म-साधन होता होगा । यहाँ पर सर्व-त्यागी सानन्द धर्मसाधन कर रहे है । बडे दिवसो मे बहुतसे भाई आए । कल्याणके अर्थ जो मनुष्य उद्यम करता है, वह अति नि शक हो जाता है । नि शक रहना ही तो मोक्ष पथिकका पहला अग है । पर्यायकी पराधीनता उसकी बाधक नहीं । वैसे तो प्राय मोहके सद्भावमे सभी पराधीन है । स्वाधीनता तो पूर्णरूपसे मोहके अभावमे ही होगी ।

खतौलीवाले सर्व आपको वन्दना कहते है । श्रीलल्लूमलजी तो ऐसे भूल गये जो क्या कहे ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - ९)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपके पास खेमचन्दजी गये । हमको पता नहीं, किस वास्ते गए और न हमने उनसे कुछ कहा । ससारमे मनुष्योके भार अपने अनुकूल होते है । चाहे उसमे अन्यका उपकार हो, चाहे अपकार हो, कोई नहीं देखता । ससार मे मायाचारकी प्रचुरता बहुत है । रहे, अपनेको नहीं करना चाहिये । यही आत्मकल्याणकी कुञ्जी है ।

हमारा विचार अब प्राय द्रोणागिरि जानेका हो गया सो यदि इस लम्बे समागममे कषायवश कुछ अपराध हुआ हो उसे हमारा जान आप लोग प्रसन्न रहना । श्री लल्लू बाबूसे कह देना अनात्मीय भावका पोषण करना विषधरसे भी भयानक होता है ।

नोट - शायद अब हमारा क्षेत्र-स्पर्शन बहुत कालमे हो ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - १०)

श्रीयुत महाशान्तिमूर्ति पतासीबाईजी व कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका समागम महावीर स्वामीकी यात्रा के अर्थ हुआ अच्छा ही हुआ । प्राय मनुष्य लौकिक कामनाके हेतु ही विशेष रूपसे यात्रा करते है । आप ससार निवृत्तिकी कामनाका आशय हृदयमे धारण कर यात्रा करियेगा । मैं तो उस दिनको आपको धन्य समझूँगा जो आपकी प्रवृत्ति अब अन्यसे छूटेगी । आत्मीय गुणका विकाश उसी आत्मासे होगा जो परपदार्थसे स्नेह छोडेगा । आत्मकल्याणका अर्थी, शुद्धोपयोगके साधक जो पदार्थ है, उनसे भी स्नेह छोड देता है । अन्यकी कथा ही क्या है । मनुष्यजन्ममे ही आत्मज्ञान होता है सो नहीं, चारो गति ही भेदज्ञानमे कारण है । परन्तु सयमका पात्र यही मनुष्य जन्म है, अत इनका लाभ तभी है जब इन परपदार्थोंसे ममताभाव छोडा जावे । ममताके त्याग बिना समता नही और समताके बिना तामसभावका अभाव नही । जब तक आत्मामे कलुषताका कारण यह भाव है तब तक शान्तिका उदय नहीं । शान्तिका मूल कारण निरीहवृत्ति है । भ्रमणमे नाना कष्टोका

सामना करना पडता है । तथा उस समय धीरताकी कृशता होती है और चञ्चलता वृद्धिको प्राप्त करती है और चञ्चलभावसे ससार वृद्धि का ही आस्रव होता है, अत ऐसे समयमे जहॉ नाना प्रकारकी असुविधाऐ है, सयमी मनुष्योको यात्राके अनुकूल नहीं । आत्महितका कारण शुद्ध भाव है और कदाचित् विशुद्धभाव भी निमित्त कहा है । परन्तु सक्लेश भाव तो सर्वथा ही अयोग्य है । शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगका समानाधिकरण हो सकता है । किन्तु अशुभोपयोगके साथ तो उस भावका रहना असम्भव है । युक्तिका उपयोग वहीं तक करना जहा तक मूलतत्त्वमे बाधा न आवे । बहुतसे मनुष्य व्यवहारकी मुख्यताकर मूलवस्तुका उच्छेद करते है यह अनुचित है । इसी तरह निश्चयकी मुख्यता कर जो बाह्यप्रवृत्तिका निषेध करते हैं वे भी पतित है । तत्त्वप्राप्ति तो समभावसे ही होती है । सो जहॉ तक बने अविरोधपूर्वक धर्मसाधन करना श्रेयोमार्ग है । हम दीपावली बाद कोडरमा जावेगे और फिर गया जावेगे । वही मनुष्य उत्तम है जो अल्पसम्बन्ध रखता है ।

ईसरी,
कार्तिक बदि ५, स २०००

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - ११)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । आपने लिखा सो ठीक है । मूर्च्छा ही बन्धका कारण है । परन्तु यह समझमे नहीं आता कि वस्तुका सग्रह रहे और मूर्च्छा न हो । असम्भव है । स्वामी कुन्दकुन्दका कहना है कि जीवके घात होने पर बन्ध हो व न हो, नियम नहीं । परन्तु परिग्रहके सद्भावमे नियमसे बन्ध है । अस्तु, हम उस वस्तुको अभी तो परिग्रह समझते है । परन्तु जिस दिन उससे मूर्च्छा घटेगी एक सेकडमे पृथक् कर देवेगे, फिर विलम्बका काम नहीं । जहॉ तक भीतरसे मूर्च्छा घटना चाहिये और वही हितकर है ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - १२)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । स्वास्थ्य अच्छा उसीका रहेगा जो पराई चिन्तासे मुक्त होगा । वही ससारबधनसे मुक्त होने का पात्र है । यह मनुष्यजन्म इसीसे उत्तम है जो सयमका आश्रय है । अन्य पर्यायमे यह बात नहीं । हमने अपनी परणतिको इतना कलुषित कर रखा है जो पर्यायकी उत्तमतासे कार्य लेनेके पात्र नहीं रहे । केवल इधर-उधर की प्रशसामे ही आत्मीय गुणका अनुभव करनेमे अक्षम है । आप जहा तक बने यातायातके विकल्प छोड यातायातके पात्र न बनो । अपनी दिव्यदृष्टिको प्राप्तकर पञ्चम गतिके भोक्ता होने की चेष्टा करो । हम दो मास यही पूर्ण करेगे । मोहमे वही होता है जो हमको हुआ ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(३ - १३)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

मै चैत्र बदि २ को यहॉ से ईसरकी के वास्ते प्रयाण करूँगा । प्राय चैत्र बदि १० को वहॉ पहुँच जाऊँगा । यातायात अच्छा है यदि अतरगवृत्ति यतितुल्य हो, अन्यथा मार्गक्लेश ही है । इसीसे त्यागकी महिमा है जो अन्तरङ्ग परग्रहणकी लालसा न हो । हिसा, लिप्सा दोनो ही ससारकी जननी है, क्योकि दोनो भावो मे कषायरूपी विष मिला हुआ है । देनेवाला अपना अहकार पुष्ट करता है । लेनेवाला दैन्यवृत्तिका पात्र होता है । जिनके यह भाव नही उनकी सर्व क्रिया निर्जराका कारण है । मेरा भी छपरावालीसे धर्मस्नेह कहना । शारदा बालिकाने २) फलोको भेजे थे, मैने एक त्यागीको जो वहॉ आ रहा है, भद्र है । इनके द्वारा समाचार जाने । कल्याण वही आत्मा कर सकता है जो मूर्च्छाके जालमे न आवे । आज यहॉ पर सोहनलालजी व नेमिसागर आरा है । लाला किरोडीलाल जी भी सासनीवाले आये है । श्री सुमेरचन्द्र जी भी आये है । कल भोरीलाल जी भी आवेगे ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - १४)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, पढकर प्रसन्नता हुई । जो कुछ आपने लिखा, अक्षरश सत्य है । ऐसा ही इस अवस्थामे उचित है । परन्तु हमारा स्वास्थ्य मलेरियाके द्वारा समाधिमरणके योग्य हो गया । ११ माससे उसकी हमारे ऊपर इतनी अनुकम्पा है जो निरन्तर परमात्माका स्मरण कराता रहता है । यही भावना हो गयी कि जब तक आत्महितके मार्गका लाभ नही हुआ तब तक मलेरिया नहीं, अन्य रहेगा, इससे यही अच्छा है । जो भेदज्ञानमे सहकारी और विरागभावनामे इष्ट योगके तुल्य साधनका काम देता है । इस सर्व लाभकी रक्षा अर्थ हमारा यहाँ से द्रोणगिरि जाना अच्छा है । एक स्थान पर रहनेसे ममताका सद्भाव हो जाता है तथा चित्तमे सुखियापन आ जाता है जो कि आत्माके अहितमे साधक है । भ्रमण करनेसे स्थानमोह नहीं होता तथा विशेष व्यक्तियोके अधीन नहीं होने पडता । परिग्रहकी मूर्च्छा नहीं होती । यहाँ तो हम एक अच्छे परिग्रही बन गए । ऐसा सप्ताह नहीं जाता जो बहुपरिग्रही न बनना पड़े । प्रथम तो मर्यादासे अतिरिक्त वस्तुओका सग्रह करना पडता है । उसके रखनेमे आत्मघात और त्यागमे अपयशभागी बनना पडता है । शान्तिका मार्ग तो मूर्च्छा त्यागमे ही है । परन्तु न तो हमारा इतना भाव है और न शारीरिक सामर्थ्य है जो इसे कर सके । तथा करना भी चाहे तो जो हमारे अन्तरगहितैषी है वह हमे इस योग्य नहीं मानते, अत निषेध कर देते है इत्यादि विषम परिस्थिति हमारे समक्ष है । परन्तु सर्वसे महान् सहायक इस समय आत्मविषयक श्रद्धा है और वही इन आपत्तियोसे पार करेगी । श्रद्धा ही तो मुक्तिमहलकी प्रथम सोपान है । उसकी आज्ञा है यदि इस परिग्रहसे छूटना चाहते हो तो सकोच छोडो, निर्द्वन्द्व बनो । परके प्रभावमे आकर अपना अहित मत करो । जो गुण अन्यत्र खोजते हो वे तुम्हारे नही । आत्माका उनसे कोई उपकार नहीं । उपकार तो निजशक्तिसे होगा । उसका विकाश करो । परकी पराधीनता छोडो । नाना विकल्पोसे दु खी मत होओ । यह जाल है, इसमे मत फँसो । जो तुम्हे अनन्त ससारमें पटकेगा । इस जालमे फँसानेवाला कौन है, जरा अन्तर्दृष्टिसे परामर्श करो । जाल ही जालमे फँसाता है ऐसी भ्रान्ति छोडो बहेलिया फँसाता है यह भी भ्रान्ति छोडो । दाना फँसाता है यह भी भ्रम त्यागो । जिह्वेन्द्रिय फँसाती है यह भी अज्ञानता छोडो । केवल चुगनेकी अभिलाषा ही फँसाने मे बीजभूत है । इसके न होनेपर सर्व व्यर्थ है । एव इस दु खमय ससारमे फँसाने का कारण न तो यह बाह्य सामग्री है, न मन-वचन-कायका

व्यापार है, न द्रव्य कर्मसमूह है । केवल स्वीय आत्मासे उत्पन्न रागादि परणति ही सेनापतिका कार्य करती है । अत इसीका निपात करो । अनायास ससारसे मुक्त होनेका मार्ग पाजाओगे । जो लिखा रिक्षामे बैठनेकी अपेक्षा डोलीमे क्या दोष ? सो आप निश्चिन्त रहिये । हम कदापि वह कार्य न करेगे जिससे आत्माको सुमार्गसे च्युत होना पडे । यदि किसीने कह दिया, इस पर हमारा क्या वश है । हम १२ मास जो प्रतिज्ञा की है उसका निर्वाह करेगे । प्रतिज्ञा कर धर्मका लाभ नहीं होता । लाभ तो आत्मपरिणामोको निर्मल रखने से होगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - १५)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

श्री सोहनलालजी के पास आपका पत्र आया, समाचार जाने । हमारी तो यह सम्मति है जो आप गया छोडकर कहीं न जावे । जहॉ जाओ वही हाल घर-घर मटिया चूले । मेरी तो निजी सम्मति आपको यही है जो कल्याणका मार्ग आत्माके अन्तस्तलमे है, बाह्यमे नहीं । किन्तु हम लोगोकी ऐसी प्रवृत्ति हो गयी है जो इतस्तत भ्रमण कर और परस्पर मिश्र चर्चाकर अपने समयका दुरुपयोग करनेमे ही उत्तम आयुका पर्यावसान कर देते है । एक मुहूर्त भी आत्मीयशान्तिके पात्र नही होते । आपकी इच्छा हो सो करो किन्तु आपके यहॉ जो स्त्री समाज है वह आपके अनुकूल है, उसे त्यागकर अपरिचित स्थानमे जाकर कौनसा विशेष लाभ है । हम तो अब भाद्रमास पूर्ण होते ही आश्विन मासमे ईसरी जावेगे । पश्चात् एक स्थान पर रहनेका आजन्म निर्णय कर प्रतिज्ञा कर लेवेगे जो कही न जाना । सर्वोत्तम तो गुणावा व राजगिरि है । विशेष क्या लिखे । आपको एक धर्मात्मा जान अपने नियमके अपवाद रूप पत्र दिया है ।

श्रावण शुल्क ४, स २०००

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - १६)

श्रीयुत भव्यमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा । कल्याणके अर्थ सर्वत्र ही सामग्री है । यातायातकी कल्पना हमारी मोहपरिमति कराती है । मेरा यह विचार है जो इस यातायातके चक्करमे रहता है वह यातायात ही का पात्र होता है । स्थिर भावसे ही स्थिर गति मिलती है । पानी विलोनेसे मक्खनकी उपलब्धि नहीं होती । इसी तरह कषायोके विकल्पोसे कषायाग्निकी शान्ति नहीं होती । उपेक्षामृतसे ही कषायाग्निका आतप शमन होता है । ससर्गसे लाभ व हानि होने योग्य पदार्थ ही मे हानि होती है । मुगठीको कितने ही गर्म जलका ससर्ग मिले पाक अवस्था उसकी न होगी । गृहस्थोके ससर्गसे उसीकी आत्मा पतित होगी जो लोभी और मोही होगा । विशेष क्या लिखे । आपकी जो इच्छा हो सो करे । उसका निवारण करनेवाला अन्य नहीं । अभी हम माघान्त यही पर है । फागुनमे अन्यत्र जानेका विकल्प करेगे । लल्लूभाईसे दर्शनविशुद्धि । सानन्द होगे । विशेष क्या लिखे । वह तो वही है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - १७)

श्रीयुत विदुषी विवेकमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मै अभी कुण्डलपुरसे कटनी जा रहा हूँ । सागर जाना सागरवालोकी धूमधामसे दूर हो गया । यद्यपि मेरा स्वास्थ्य वहा की अपेक्षा अन्यत्र अच्छा नहीं रहता फिर भी अनिच्छा पूर्वक सागरवालोके विचारो से सागरसे दूर ही रहना अच्छा समझता हूँ । कल्याणका मार्ग शान्तिमे है और शान्तिका मूल कारण परमे ममन्व भावका त्याग है । जहॉ पर सम्बन्ध हुआ, ममताकी प्रचुरता हो जाती है । यद्यपि इसके उपादान कारण हम स्वय है । फिर भी मोहकी वानसे परमे दूषण देनेमे बाज नहीं आते । आप गयावालोसे दर्शनविशुद्धि कहना और आप कुछ दिन रहकर वहॉ की समाजका हित करना । आपमे उन लोगोकी बहुत भक्ति है । समय पाकर विशेष पत्र लिखूँगा ।

फाल्गुन बदि ४, स २००१

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - १८)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप शान्तिके स्थानमे पहुँच गई यह बडे सौभाग्यका उदय है । परन्तु जब बना रहे, अन्यथा हमारीसी दशा होगी । लौकिक मनुष्योका समागम श्रेयोमार्गमे साधक नहीं । यद्यपि परमार्थ से न साधक है और न बाधक है फिर भी उपचारसे बाधककी तरफ विशेषता रखता है । वहाँ पर इन समागमो की विरलता है, क्योकि विलक्षण स्थान है ।

चैत्र बदि ५, स २००१

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - १९)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मेरा स्वास्थ्य प्राय अब पके पानकी तरह है, इसकी चिन्ता नहीं । आप जहाँ तक बने, आकुलतासे बचना । पर पदार्थोका सम्बन्ध ही इसका मुख्य कारण है । आत्मीय गुणो के विकाशमे यही उपाधि है । जिनने इन पर पदार्थो की आशा छोड दी उनने सर्व कुछ किया । ज्ञानार्जनका फल रागादिनिवृत्ति है। ससारमे सर्व वस्तु सुलभ है, केवल आत्माका बोध दुर्लभ है । गल्पवादसे उसका लाभ नहीं । उसका लाभ तो आत्माकी भिन्नता जाननेमे है । परन्तु उस ओर हमारा लक्ष्य नही । ससारको खुश करनेमे हमारे दुर्लभ समय और ज्ञानका दुरुपयोग होता है । यहा पर नेमिचन्द पाटनी आये थे । सज्जन व्यक्ति है । आपकी स्मृति करते थे । और कहते थे जो बाई जी मारोठ रह जावे तो अच्छा है । हमारा विचार भी ईसरी आनेका है । परसाल आवेगे, क्योकि गर्मी पडने लगी है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - २०)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका चित्त शान्त है यह बडे भाग्यकी बात है । यहाँ पर श्री नेमिचन्दजी आए थे, योग्य है । आपका समागम थोडे दिनो को चाहते है । आपके निमित्तसे वहाँ की

जनताको बहुत ही लाभ होगा । यदि आपके पवित्र विचारोंमे कुछ दिन वहाँ का जाना निश्चित हो जावे तब अच्छा है । गया भी आपका ही है । कुछ दिन वहाँ वालों को शान्ति मार्ग पर स्थिर कर मारोठ जानेका विचार करिए । मै यहासे जबलपुर जाऊँगा । आश्रमवासियो से मेरा इच्छाकार ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - २१)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य

हमारा स्वास्थ्य अच्छा है । ससारमे शान्ति नहीं । शान्तिका कारण मूर्च्छाका अभाव है । वह सम्यग्ज्ञान होने पर अनायास हो जाता है, विकल्पोंसे नहीं होता । चरणानुयोग तो विधि और निषेधकी प्ररुपणा करनेवाला है । हिसादि पञ्च पापसे निवृत्त हो अहिसादि पञ्च व्रतोका पालन करो । अन्तरङ्गसे जहॉ मूर्च्छा जाती है वहॉ न विधि है न निषेध है । यही कल्याण का सत्य मार्ग है । धन्य है उस आत्माको जो इसका पात्र हो गया यह कहना भी मोही जीवोकी प्रक्रिया है । पूज्य-पूजक, गुरु-शिष्य यह सर्व व्यवहार मोहमे होते है । निश्चय व्यवहार आदि जितने कार्य हैं सभी मोहके द्वारा विकल्पजन्य होते है । मोहके अभावमे आत्मा को जो शान्ति मिलती है वह वचनानीत है । अर्थात् सर्व दु खोसे निवृत्ति हो जाती है । यहॉ तो हम लोग अभी उस शान्तिमन्दिरके दरवाजे के सम्मुख हुए हैं । यदि ठीक सीधी चाल चलेगे उस मन्दिर मे पहुँच जावेगे और जो मानादि कषायके आश्रय हो जावेगे तब सर्व करा-कराया यो ही जावेगा । अत कोई भी कार्य करो उसमे कर्तृत्वका अभिमान न हो । होना था हो गया । व्यर्थ ही क्यो परके कर्त्ता बनते हो ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - २२)

श्री प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । जहॉ आपका निंवास है वहॉ की समाज का कल्याण होना उचित ही है । मेरा आत्मविश्वास है, निष्कपट भावसे जो आत्मा चाहेगा होगा । यह तो

पाठशाला है, मोक्ष प्राप्ति सुलभ है । मेरा स्त्रीसमाजसे यह सदेश कहना जो जैसी रुपया देनेमे उदारता दिखाई है वैसी ही उदारता चारित्र ग्रहण करनेमे दिखाओ ।

१ सिनेमा देखना त्यागो ।

२ ऐसा वस्त्र पहनो जो शरीरकी रक्षा करे ।

३ व्यर्थ बात मत करो ।

४ चटपटा भोजन मत करो ।

५ अनुपसेव्य पर सदा ध्यान दो ।

६ उतना वस्त्रोका सग्रह करो जो उपयोगमे आवे । व्यर्थ सन्दूक मत भरो ।

७ अभक्ष्य भोजन का त्याग करो ।

वार, बदि ३, स २००२

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - २३)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

मेरे पास कोई पत्र नहीं आया । मै आपके पत्रका उत्तर न दू यह असम्भव है । ससारमे सभी स्वार्थी है । आपके द्वारा हमारा उपकार है, क्योकि आपकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति मिश्रत है । गया समाजका ही उपकार नहीं हुआ । उस प्रान्तकी आपसे शोभा है । यद्यपि निश्चयसे कोई किसीका उपकारी नही, परन्तु निमित्त अपेक्षा यह सर्व व्यवहार है । तत्त्वदृष्टिवाले भी परोपकार करते है, परन्तु कर्तृत्वका अभिमान नहीं करते ।

जबतक ससारमे राग है उसका कार्य होगा । अन्तरङ्गके वह नहीं चाहता, परन्तु बलात्कार करना पडता है । मेरा तो यह विश्वास है, सोलह-कारण भावना को भी सम्यग्दृष्टि उपादेय नहीं मानता । बन्धके कारणोमे सम्यग्दृष्टि उपादेयता माने असम्भव है । आपने लिखा, हमारी शक्ति नही, सो ठीक नहीं । यह सर्व कार्य तो मोहके उदयमे होते है, उनमे कर्तृत्व-बुद्धि न करना उचित ही है । गया की स्त्रीसमाज तो आपके उपदेशसे द्रवीभूत हो गई है । यदि वह सुमार्ग पर चले तब इसमे क्या आश्चर्य । परन्तु

हमारी तो यह सम्मति है, आप उसे सुना देना । यद्यपि आपने सर्व कुछ दिया है । यह मेरी सम्मति नवीन नहीं फिर भी सुना देना - अष्टमी, चतुर्दशी, सोलह कारण और अष्टान्हिका पर्वमे ब्रह्मचर्यसे रहे और जब गर्भमे बालक आवे तबसे लेकर जबतक बालक जन्मसे १२ मास का न हो जाय, ब्रह्मचर्यसे रहे । मनुष्योंको भी यह पत्र पढा देना । इसके बिना मनुष्य स्त्रीधर्मसाधनके पात्र नहीं ।

जबलपुर,
माघ बदि ८, स २०००

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - २४)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । हम क्या आपको सचेत करेगे, आप स्वय सचेत है। सबसे प्रसन्नता तो हमको यह है जो आप किसी सस्थाके चक्रमे न आयीं । मेरी तो यह सम्मति है जो हीरापुर जैसा गॉव उस प्रान्तमे नहीं है । यदि विशेष सहायता करनी हो तब ५०/- मासिक पण्डितको, १०/- मासिक ऊपरी खर्चको इस तरह ६०/- मासिकमे पाठशाला अच्छी चलेगी और विशेष सहायता करनी हो तब जैसा आप लिखे सो करे । रुपया वृन्दावन सिघईके नाम भेज देना या सागर सिघई कुन्दनलालके नाम भेज देना । यहाँ पर सर सेठ इन्दौरसे आए थे, उनने २५०००/- मुझे भेट स्वरूप दिया और कहा - आपकी जो इच्छा हो सो करे । मैंने सागरसमाजसे कहा - २५०००/- यदि तुम दो तब यह २५०००/- तुम ले सकते हो । उन्होने देना स्वीकार किया । इस तरह ५००००/- विद्यालयको हो गया । यह इस प्रान्तका बडा विद्यालय था । ६५०००/- पहले था अब १,१५०००/- हो गया । एक गाँव भी ४००००/- का है । अब एक विद्यालय बनारस ही स्थायी होनेको रह गया । . यदि बिहार प्रान्त चाहे तब बनारसको स्थिर कर सकता है । मुझे सेठजीने बहुत आग्रह इन्दौर आनेका किया है और बहुत कुछ । उत्तम बात कही । वह बहुत प्रसन्न होकर गए ।

आषाढ सुदि ४, स २००४

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - २५)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया । बाईजी ! आप जानती है जो मै किस प्रकृतिका हूँ । अबतक मैने अपने मन पर अधिकार नहीं कर पाया । इसीका फल है जो आज तक बाह्यमे कोई आपत्ति न होने पर भी शान्तिमार्गसे दूर हूँ । शान्तिकी कथा करना और बात है, शान्तिका आस्वाद होना और बात है । शिखरजीमे शान्तिके निमित्त अन्य स्थानोकी अपेक्षा पुष्कल है, परन्तु भाग्यहीनको सर्वत्र ही दुर्लभ है । मै इतना दुर्बल हूँ जो एक अबोध बालक मुझे बहका लेता है । मोक्षमार्गका लाभ उसी आत्माको होता है जो इन कषायो की दुर्बलतासे परे रहता है । कषायोकी शक्तिसे निखिल जगत खिन्न हो रहा है। तत्त्वदृष्टिसे परामर्श किया जावे तब यह अज्ञानता जीवकी है । कषाय क्या है ? अपनी ही अकर्मण्यता है । जिस समय यह बोध हो जावे कि इसके उत्पादक हम ही तो है कल्याणपथ सुगम हो जावे । बहुतसे मनुष्य इन कषायोको कर्मोदयका ही कार्य मान निरुद्यमी हो जाते है । कर्मोदय तो पुद्गलमे हुआ अर्थात् पुद्गलकी पर्याय है । उसका निमित्त पाकर आत्मा स्वय रागादि रूप परिणमनको प्राप्त हो जाता है । यह अपराध आत्मा ही का तो है । श्रद्धासे मलिनता जावे, तब तो यह सगति बैठे । अत जो कल्याणके लिप्सु है उन्हे अपनेमे जो भाव होवे उनका विचार करना उपयोगी है । विचार ही नहीं, इन कषायोके होने पर भी इनमे आसक्त न होना यह कोई कठिन बात नहीं, परन्तु साहस होना चाहिए । स्वाध्याय करना तप है परन्तु जो उसपर यथाशक्ति अमल किया जावे । स्वाध्याय कोई अनुयोगका किया जावे । यदि अन्तरङ्गकी स्वच्छताके अभिप्रायसे किया जावे तब तो तप है अन्यथा पण्डित तो बहुत हो जाते है। पूर्वधर भी शुक्लध्यानका पात्र होता है और अष्टप्रवचनमात्रका जाननेवाला भी उसका पात्र होता है । विशेष क्या लिखे, मेरी तो यह श्रद्धा है जो जिसने तत्त्वज्ञानके द्वारा रागादि निवृत्तिको लक्ष्य रखा वह वन्द्य है और केवल लोकरञ्जनाका भाव रखा, उसने कुछ भी लाभ तत्त्वज्ञानका न पाया । परोपदेशमे सर्व कुशल है । यदि आप स्वय यथार्थ धर्मका अनुसरण करे तब किसीसे कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रहे जो आप धर्मका आचरण करे, क्योकि निर्मल आत्माका ऐसा प्रभाव होता है जो उपदेशके बिना ही मनुष्य उनके पथका अनुसरण करते है । आज जो ससारमे विशेष भ्रष्टाचार हो रहा है उसका मूल कारण जो प्रवर्तक है उनके सदाचार विषयक विचार अतिनिकृष्ट है ।

।

श्रावण सुदि ५, स २००४

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - २६)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मै अकिञ्जित्कर हूँ । यदि बुद्धिशाली होता तब ईसरी न छोडता । ४० वर्ष इस प्रान्तमे रहा फिर भी मोहकी महिमा देखो ! उत्तम स्थानको छोडकर जहॉ पर विशेषकर मोहसे कारण है वहीं आनकर फॅस गया । यद्यपि अन्तरङ्ग कारणकी बलवत्ता मे यह बाह्य कारण अकिञ्चित्कर है फिर भी मोही जीवोंके निमित्त कारणोकी मुख्यतासे ही उपदेश देनेकी पद्धति है । चरणानुयोगका उपदेश बाह्य कारणोकी अपेक्षासे ही दिया जाता है । अन्यकी कथा छोडिए-तीर्थंकर भगवानने दीक्षा लेनेके बाद मौन ही रखा, अत हम लोगो को अन्तरङ्ग परिणामोकी विशुद्धताकी रक्षाके लिए निमित्त कारण अनुकूल ही बनाना चाहिए । तात्त्विकदृष्टिसे आत्मामे ही वह शक्ति है जो शुभ, अशुभ, शुद्धरूप स्वय परिणमता है । कोई द्रव्यका अशमात्र भी कोई द्रव्यमे नहीं जाता यह अटल नियम है और इस नियमका कोई कालमे अपवाद नहीं । ऐसा होने पर भी मोही जीवको शुद्धोपयोगके अनुकूल कारणोकी आवश्यकता रहती है । अस्तु, इस चर्चाको छोडो । आप तो विदुषी है तथा त्यागका भी आपके आश्रय है । जहॉ तक हो परकी उपेक्षा ही रखना अच्छा है । जो जितनी उपेक्षा करेगा, उतना ही अधिक ससारका उपकार उससे होगा । जिसके पूर्ण उपेक्षा होगी उसकी अनक्षरी वाणीसे ही सर्वका कल्याण होगा । अन्यकी कथा दूर रहे, पशुओ का भी कल्याण उसके देखनेसे हो जाता है । अत हमे इन बाह्य पदार्थोकी उपेक्षा करनी चाहिए । सुखका उदय भी उपेक्षामे होता है । सम्यग्दृष्टि जो सुख है जो अनन्तानुबन्धी कषायके उपशमादि का है । जो वह बाह्य व्यवहार करता है उसका सुख नहीं है । देशव्रतीके जो शान्ति है वह अणुव्रतकी नहीं कषायके अभावकी है । एव महाव्रती व यथाख्यातचरित्रवालोके जो शान्ति है वह कषायोके अभावकी है । तथा जो कुछ प्रवृत्ति है वह तो स्वरूपकी बाधक ही है । अन्य प्रवृत्ति को छोडो । योगमात्रकी प्रवृत्ति भी परम यथाख्यातचारित्रको नहीं होने देती ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - २७)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

जानना और बात है, तदनुकूल हो जाना और बात है । यह तो निर्विवाद है, क्योकि ज्ञान गुण भिन्न है और चारित्र गुण भिन्न है । फिर भी यह निश्चय है, जिसका ज्ञान सम्यक् है उसके चारित्र मोहनीयकी प्रबलतासे वर्तमानमे चारित्र न भी हो परन्तु हो जावेगा यह निश्चय है । सामान्य मनुष्योकी बात छोड दीजिए, महान् पुरुष भी चारित्र-मोहकी प्रबलतामे स्वात्माको रागद्वेषसे नहीं बचा सकते । अस्तु, इससे सन्तोष कर लेना उचित नही । यथाशक्ति रागादिकको दूर करनेकी चेष्टा करना चाहिये । किन्तु जिस पदमे हो, उसीके अनुकूल रागादिक दूर कर सकता है । देशव्रतवाला मुनियोके सदृश न तो रागादिक ही दूर कर सकता है और न उनके सदृश दया ही पाल सकता है । 'शक्तितस्यागतपसी' अत मोक्षमार्गमे जिसने पद रक्खा है उसे यही उचित है जो बुद्धिपूर्वक कार्य करे । आकुलतासे समीचीन मार्गमे बाधा ही आती है । चेष्टा अपने कल्याणकी करना श्रेष्ठ है । प्राणीवर्गका भी उससे कल्याण हो जावे यह बात अन्य है । परन्तु हमारा लक्ष्य निजकी ओर रहना चाहिये । हमारा तो अभिप्राय श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमे समाधिका है । होगा क्या, श्री वीर जाने । बडे ही पुण्यका उदय उन जीवोका है जो श्री पार्श्व-प्रभुके निर्वाणक्षेत्रमे आत्मकल्याणके मार्गमे लगे है । क्षेत्र भी कारण है ऐसे भी है जो क्षेत्रमे निवास करके भी कषायोकी प्रचुरतामे आत्महितसे वञ्चित रहते है । परमार्थ तो यह है जो कोई द्रव्यको द्रव्य नहीं परिणमा सकता है । मोही जीव नाना कल्पना कर लेते है । जो मोहमे न हो, थोडा है । मेरी तो यह श्रद्धा है जो मोहके द्वारा ही ससारमार्ग चल रहा है और इसकी ही महिमासे निवृत्तिमार्गमे प्रवृत्तिका उपदेश हो रहा है । यदि गणधरदेवके धर्मानुराग न होता तो इन द्वादशागकी रचना कौन करता ? यदि भगवदगुणानुरागरूप भक्ति न होती तब यह पञ्चस्तोत्रादि जो स्तवन देखनेमे आते है इनका अस्तित्व न होता । यद्यपि सम्यग्ज्ञानी जीवके श्री भगवानके गुणोमें अनुराग है, परन्तु उस अनुरागमे राग नहीं । इसीसे उस रागमे उसकी उपादेय बुद्धि नहीं । भगवदगुणोको वह उपादेय मानता है, परन्तु भक्तिको बन्धका ही मार्ग मानता है । अत परोपकारकी वृत्ति भी एक राग है । यह भी त्याज्य है। सम्यग्ज्ञानी जीवके भी अनुकम्पा आदि होती है, परन्तु उन्हे त्यागना ही चाहता है । अत पदके अनुकूल परोपकार करना ही योग्य है । परन्तु उसमे उपादेयता न होनी चाहिये । हमारा स्त्री समाजसे धर्मप्रेम कहना । परन्तु कल्याणका मार्ग तो स्त्रीसमाजका

उसीके अधीन है । उचित तो यह है जो आत्मा न तो स्त्री है और न पुरुष है और न नपुसक है । अत पर्यायबुद्धिसे जो स्त्री समाजमे निर्बलता आ गयी है उसे दूर करो और बाह्य लज्जाकी अपेक्षा अन्तरङ्ग गुणोकी लज्जा रक्खो । हमारी प्रवृत्ति मुख ढँकनेकी हो गयी है । हम बाह्य पदार्थोसे ग्लानि व हर्ष करते है । सो मेरी समझमे आत्मामे जो पाप-परिणामोकी उत्पत्ति हो उससे ग्लानि करो और जो उत्तम गुणोंका विकास हो उसका हर्ष करो । केवल शरीरके सस्कारमे समय न गमाओ । कुछ आत्मसस्कारमे काल लगाओ । अब मै भाद्रपद मास तक पत्र न दूगा ।

भाद्र वदि १, स २००४

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(३ - २८)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

शान्तिपूर्वक गया पहुँचनेका समाचार देना । यद्यपि ससारमे शान्तिका लेश नहीं, क्योकि जहॉ निरन्तर पर पदार्थोसे रागादिपूर्वक सम्बन्ध हो रहा है वहॉ शान्ति नहीं । जिनके परिग्रहकी विपुलता है उनको सन्तोषके अभावमे सुख नही । जिनके है नही उन्हे निरन्तर प्राप्तिकी आकाक्षा सता रही है जिनके होकर अन्त हो जाता है वह उसके जानेके कारणो या कारणभूत भूलोको स्मरण करते करते व्याकुल रहते है । अत सिद्धान्त तो यह कहता है जो मूर्च्छा त्यागो । दान देना मूर्च्छा त्यागका कारण है । परन्तु अज्ञानी जीव देकर अधिक भागमे मूर्च्छा उत्पन्न कर लेते है । यदि इसमे सन्देह हो तब अपनी आत्मासे पूछो, क्या सत्य मार्ग है । पर द्रव्यके त्यागकालमे वीतरागता आनी चाहिए । सो वह तो होती नहीं । या तो हर्ष होता है या मान होता है । ये दोनो भाव क्या मूर्च्छा नहीं है । इस विषयकी मीमासा अतरङ्गसे जो करेगा वही इसके मर्मको समझेगा । दानका देना परिग्रह का कर्तव्य है । परन्तु उपादेय मानना क्या आश्रवतत्त्वमे रुचि नहीं । यहॉ पर रुचि अभिलाषारूप पडती है । अभिलाषा अनात्मधर्म है । सम्यग्ज्ञानीके कदापि नहीं होना चाहिए । इसका यह अर्थ है, अभिप्रायपूर्वक नहीं होना चाहिए । साधारणतया होना और बात है और अभिप्रायपूर्वक होना और बात है । विशेष तत्त्व प्राय बहुज्ञानी ही निरूपण कर सकते है । सो तो प्राय इस कालमे अल्प है । जो है उनका समागम मिलना दुर्लभ है । श्रीमान् लोग बहुत अशोमे चाहे तो

इसकी पूर्ति कर सकते है । परन्तु उनका लक्ष्य वे जाने । विशेष क्या लिखे । इस समय तो जलमे कमलवत् निर्लेप रहनेका प्रयत्न ही सराहनीय है । अब तो गयामे पिण्डदानसे ही पिण्ड छूटेगा, क्योकि वहॉ पर लालची पण्डोके चक्रसे बचना प्रबल आत्माका ही काम है । यह बात लल्लूसे पूछना । बाबू गोविन्दलाल तो स्वय इसके फेरमे है । हम १५ दिनको गिरेटी जावेगे । कु सु २ मगलको जावेगे ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - २९)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

शान्तिका लाभ उसी आत्माको होगा जो अपने उत्कर्ष गुणको व्यर्थके अभिमानमे न आकर रक्षा करेगा । आजकल लोग (अज्ञानी) प्रशसामे फूले नहीं समाते । वह धर्मका बाह्य स्वरूप इसी अर्थमे पालते हैं । आभ्यन्तर कलुषताके अभावमे बाह्य सदाचारताका कोई मूल्य नहीं । ऐसे मनुष्योको उसकी गन्ध नहीं । गृहस्थके उपासक त्यागी धर्मके मर्मको नहीं पा सकते, क्योकि गृहस्थ तो आतुर है । जहॉ उन्हे कुछ उनके अनुकूल वचन मिले उसीके अनुयायी हो जाते है और उसकी ऊपरी वैयावृत्ति कर अपना भला समझते है । अथवा यो कहिए, इन लोगोको अपने पक्षमे कर अपनी मानादि प्रवृत्तियोकी रक्षा करते है । सत्य स्वरूपमे उनके स्वेक्षाचारिताका घात है । हम तो एक कोणमे हैं । अत पार्श्व-प्रभुकी चरण-सेवा ही इससे इष्ट की है । यहॉ पर उन प्रलोभनोकी त्रुटि नहीं । यही कारण है जो आज तक शान्तिकी गन्ध नही आयी और ऐसे आडम्बरोमे शान्ति काहे की । घर छोडा, दुनियाको घर बना लिया । धिक् इस परिणति को ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ३०)

प्रशममूर्ति श्री पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

धर्मसाधनका फल शान्ति है । यदि उसमे बाधा आवे तब व्यवहार धर्म एक तरहकी विडम्बना है । एक बात निरन्तर स्मरण रखना - किसी जीवको अपनानेकी चेष्टा न करना । स्वकीय आत्मा अनन्तकालसे हमारी विरोधनी हो रही है । उसे ही

मना लोग लो —– ससारमें बेडा पार है । अथवा यो कहो जो हमारी प्रवृत्ति आत्माके स्वभावके प्रतिकूल हो रही है । आत्माका स्वभाव तो ज्ञाता दृष्टा है । हम उसे हर्ष-विषादसे दूषित बना रहे हैं । इसे शुद्ध करनेकी चेष्टा करो । यदि हम आपके साथ चिकनी-चुपडी बाते करे अथवा व्यर्थ प्रशसा करे, यह सर्व ठगनेके मार्ग हैं । अत किसीके जालमे न आवो । क्या कोई करेगा ? अपना कल्याण और अकल्याण आप ही से होगा । इसमे अणुमात्र भी अन्यथा नहीं । स्थानकी विशेषता अथवा समागमकी विशेषता ही मानकर निरन्तर चित्तवृत्तिमें विकल्प करना कुछ कार्यकारी नहीं । जहाँ सूरजका उदय वही पूर्व । यही कारण है जो सर्व क्षेत्रोसे मेरु उत्तर पडता है, अत· शान्तताका मूल कारण जान कर्मोका पिण्डदान गया ही मे करना अच्छा है । हमारी कही सो पोतके पक्षी हैं, कहाँ जावे ?

आ. शु चि.
गणेश वर्णी

(३ - ३१)

श्रीयुत पसातीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आप सानन्द स्वाध्यायपूर्वक समयकी दुर्लभताको उपयोगमे लाना । ससारमे वही जीव शान्ति ले सकता है जो मूर्च्छाके कारण पर पदार्थोसे सम्बन्ध छोडता है । मेरी तो यह धारणा है जो अशुभ परिणामको छोडकर शुभ परिणामोको चाहता है वह पदार्थोसे सम्बन्ध छोडकर तत्त्वको नही समझता । उसकी आत्मामे वास्तविक सुखका अश नहीं आया । अत जहाँ तक बने, तत्त्वपूर्वक ही क्रिया करना लाभदायक है । श्रीलल्लूमलजीसे दर्शनविशुद्धि । आप तो अब आपको लक्ष्यमे न रखकर कार्य करनेमे प्रवृत्ति करनेका पूर्वरूप करने लगे हो, यह क्या योग्य है । उदयकी बलवत्ता ज्ञानीका घात नहीं कर सकती ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - ३२)

श्रीयुत शान्तिमूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । बडी प्रसन्नताकी बात है जो आपने व्रतोको ग्रहण किया । आप तो पहले से ही निर्दोष व्रतोका पालन कर रही है । सप्तमी प्रतिमा

आपको कोई कठिन नही है । चरणानुयोगकी विधि सर्व शास्त्रोमे लिखी है तथा आपको भी विदित है । हमारा तो इस विषयमे विशेष ज्ञान नहीं । हमारा अभिप्राय तो अन्तरगसे यह रहता है जो रागादिककी निवृत्ति ही शान्तिका कारण है । व्रत धारण करनेका भी यही अभिप्राय है । आज तक हमारी आत्मा इसीसे वञ्चित रही जो हमने बाह्य व्रतोकी रक्षा तो की परन्तु अन्तरङ्ग निर्मलता पर लक्ष्य नही दिया । लोकलिप्साने सब ओरसे हमे बन्धनमे डाल दिया । जिन जीवोको आत्मकल्याण करनेकी इच्छा है वे इस झूठी वाहवाहीको त्यागे और शरीर एव आत्मा दोनोके आभूषण सदाचारकी सुरक्षाके लिये अन्तरङ्ग निर्मलताको बनाये रखनेका सदा ध्यान रखे ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ३३)

श्रीयुत स्वमार्गरता पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आत्मा सभी अचिन्त्य सामर्थ्यके पात्र है और उसका सर्वदा सद्भाव है । परन्तु इतना अन्तर है जो ससारमे उस सामर्थ्यका उपयोग ससारी पर्यायोके मम्पादन करनेमे ही होता है और जो ससारसे भयभीत हो जाते है वे अपनी उस सामर्थ्यको इस तरफसे पृथक् कर केवल स्वरूपोपलब्धिमे व्याप्त कर देते है। अत ससार दु खोके जालसे विनिर्मुक्त होकर स्वात्मोत्थ वचनागोचर अनुपम स्वाधीन सुखके पात्र होते है । हम निरन्तर निष्प्रयोजन विकल्पो द्वारा अपनी आत्माको कायर बनानेमे प्रयत्नशील रहते है और सतत परके द्वारा अपने दु खोको उन्मूलन करना चाहते है । अपना सर्वस्व जो कुछ कर्मोदयसे हुआ है, परकी सुश्रूषामे लगा देते है । तत्त्वदृष्टिमे विचारो, सर्व से श्रेष्ठ आत्मा केवली है । उनकी उपासनासे हम चाहे कि वह हमारा हित कर देवेगे तब तो अमम्भव ही है, क्योकि वह तो वीतराग है, तटस्थ है । उनके द्वारा न किसीका श्रेय है और न अश्रेय ही है ।

रहे ससारी जीव सो यह स्वय ससारी है । इनके द्वारा हित की अकाक्षा अन्धेसे मार्गप्राप्तिके तुल्य है । अत सर्व विकल्पो की आकुलताको छोड एक स्वयसिद्ध जो अपनी शक्ति है उसका विकाश करो । अनायास ही सर्व आपत्तियोसे छूट जानेका अवसर आ जावेगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ३४)

श्रीयुत महाशय त्यागी वर्ग व श्रीकृष्णाबाईजी तथा श्री पतासीबाईजी,
योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । बात अच्छी है, कल्याणकारक है । किन्तु मैं क्या ससारमात्र उसी कथनकी प्रशसा करता है । जो हो, हमारा विचार जो है वह कार्यमे परिणत होने पर ही अच्छा है । परन्तु होना असम्भव है । जो वत्स हाथीका भार नहीं ले सकता । हॉ, यह अवश्य है, पर्यायानुकूल जो बने वह करना ही अच्छा है । हम चैत्र वदि २ तक यहा रहेगे और पश्चात् बनारस जाऊँगा । वहासे फिर सागर जानेका विचार करूँगा । क्षेत्र ईसरी उत्तम है, परन्तु हमारे दैवने हमको अनुकूलता नहीं दी । जलवायु एक वर्षसे हमारे स्वास्थ्यके विरुद्ध ही रहा । अत लाचार हमे ईसरी-त्याग करना पडा । अन्य कारण नही । कोई कुछ कल्पना करे इसका हर्ष-विषाद हमे नहीं । अपने ही परिणामो की निर्मलताके करनेमे ही समय नहीं मिलता, वह परकी क्या समालोचना करेगा । मुझे निरन्तर अपने मलिन भावोकी ग्लानि रहती है । परन्तु वशकी बात नही । अस्तु, समय पाकर पत्र लिखूँगा ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - ३५)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका पत्र बाबूजीके पास आया, समाचार जाने । मेरी कुछ ऐसी प्रवृत्ति है जो वस्तुको देखकर भय लगता है और इतनी निर्मलता और शक्ति नहीं कि निष्परिग्रह रह सकूँ । धर्म तो वास्तवमे निर्ग्रन्थसे ही होता है और निर्ग्रन्थ वही कहलाता है जो अन्तरङ्गसे भावपूर्वक हो । वैसे तो बहुतसे जीव परिग्रह विहीन है परन्तु आभ्यन्तर परिग्रहके त्यागे बिना इस बाह्य परिग्रहके छोडनेकी कोई प्रतिष्ठा नहीं । अब लक्ष्य आभ्यन्तरकी ओर रखना ही श्रेयोमार्ग है । धर्मके साधन सर्वत्र है । परन्तु आभ्यन्तरके परिणामोकी निर्मलता आभ्यन्तर ही मे है, अत उसके अर्थ व्याकुलताकी कोई आवश्यकता नही । स्थानका ही महत्व मानना कुछ उपयोगी नहीं । सूर्यमे प्रकाशकत्व गुण है । उसके द्वारा जगत देखता है, परन्तु नेत्र विहीनको उसका कोई उपयोग नही । यदि नेत्रवाला उद्योग करे तब अपना कार्य कर सकता है । सभी घूघू नहीं होते । अत

आनन्दसे स्वाध्याय करिए और वह स्वाध्याय लाभदायक है जिसमे अपनी प्रवृत्ति रहे । स्वाध्यायको तपमे ग्रहण किया, अत स्वाध्याय केवल ज्ञान ही का उत्पादक नहीं, किन्तु चारित्रका भी अग है । विशेष क्या लिखे, सभी आत्माभे सर्व गुण है । परन्तु हमारे ही अपराधसे उनके विकास विपरीत होकर दु खके कारण बन रहे है । बीजमे फल देनेकी शक्ति है । परन्तु यदि उसे बोया न जावे तब सन्तति ही उसकी न रहे । इसी तरह रागद्वेषमे ससार फल देनेकी सामर्थ्य है । यदि उनमे रागादिक न किये जावे तब उनमे फिर यह ससार फल जननेकी सामर्थ्य नहीं रहती ।

आज पद्मपुराणमे भरतजीका चरित्र पढकर कुछ उदासीनता आई और उस कालमे यही मनमे आई जो अब चॉदीके बर्तन नही रखना सो एक कटोराको छोड शेष बर्तन भेजता हूँ और इस प्रवृत्तिसे आप खेद न करना । मै तो आपकी उपकारी समझता हूँ । एक यह अवश्य कहूँगा, जब कभी अपना दानपत्र लिखो, उसमे यह अवश्य लिखना, जो कुछ आय हो, मेरे वाद विद्यादानमे जावे । आधा छात्रोमे और आधा स्त्रीसमाजके पढनेमे ही उसका उपयोग हो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ३६)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पर्यायकी सफलता अन्तरङ्ग यथार्थ आचरणसे है । बहिरङ्ग वही तक उपयोगिनी है जो आत्मनिर्मलतामे साधक है । सन्त समागमकी महिमा यही है जो जिज्ञासुको साधुचारित्री बना देवे । पर पदार्थके समागमसे कभी भी सुख न हुआ न होगा । यदि ऐसा होता तब इसे छोडनेका कौन प्रयास करता ? अन्तमे आपकी शरण ही ससारके दु खका अभाव करेगी । निरन्तर अपने पुरुषार्थको सम्हालो । वही तो काम आवेगा । विचार कर देखा रोगीको वैद्य औषधि देता है परन्तु औषधि पचानेकी शक्ति रोगीमे ही है । अत अपने रोगको दूर करनेवाला स्वय आप ही है । इससे सब विकल्पोको छोड, केवल जो आत्मगुण प्राप्त है, उसकी रक्षापूर्वक वृद्धि करना । वृद्धिके उपादान आप ही है । अत उसे ही सफल बनानेका प्रयास करना । मेरी तो यहाँ तक श्रद्धा है जो इस कालमे भी जीव ससारबन्धनकी जडको शिथिल कर सकता है और इसके अर्थ उसे किसीकी भी आवश्यकता नही, केवल अपने पौरुषकी ओर ध्यान देना है ।

आ. शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

(३ - ३७)

श्रीयुत पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

वही जीव ससारमे सुखी हो सकता है जिसके पवित्र हृदय मे कषायकी वासना न रहे, जिसका व्यवहार आभ्यन्तरकी निर्मलताके अर्थ होता है । जहाँ पर बाह्य व्यवहार और उनके कारणो पर ही लक्ष्य है, वहाँ पर क्लेशके सिवाय कुछ आत्मलाभ नही । अत सार बिना जो मान होगा वह थोथा है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(३ - ३८)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र मैने एक दिया था पहुँचा होगा । मै तो जिस दिनसे श्री परमपावन गिरिराजसे इस ससारसागरकी ओर प्रस्थान किया, निर्मलभावोकी होली हो गई । भाग्यकी प्रबलता के सामने अच्छे-अच्छे मनुष्योके मन कम्पायमान हो जाते है । जिस प्रबल-वायुके सामने बडे-बडे गजराजोके पैर उखड जाते है वहाँ शशकगणकी क्या गणना है। हम लोग अल्पशक्तिवाले है । प्रत्येक मनुष्यके बहकायेमे आ जाते है । ससारबन्धनका उच्छेदन करना दुर्बल प्रकृतिवालेसे नहीं होता । अनादिसे जिन्हे आत्मीय समझ रहे है, उन्हे अनात्मीय समझना सरल प्रकृतिवालेसे नही हो सकता । सरल प्रकृतिसे सम्बन्ध मूढबुद्धिका है । जो मूढबुद्धि है वे अनायास मोहित हो जाते है । शरीर पर पुदगलका पिण्ड है । इसके साथ चेतनका अनादि कालसे सम्बन्ध है, उसे निज मान लेता है और अहिर्निश उसकी पोषण सामग्रीको एकत्रित करता रहता है । शरीरमे निजत्व होने से ही ये मेरे पिता है, ये माता है तथा अन्य कल्पनाएँ होती है । जब स्त्री-पुत्रादिका सयोग और वियोग होता है तब इसे हर्ष और विषाद होता है । इसका कारण केवल निजत्व-बुद्धि है । जब हमारे स्त्री-पुत्रादिका सयोग होता है तब हर्ष होता है और यदि अन्यके होता है तब नही होता । तथा हमारे स्त्री-पुत्रादिका वियोग होता है उस समय हम दु खी होते है । अन्यके स्त्रीपुत्रादि-वियोगमे दु खी नहीं होते । इसका मूल कारण यही है जो हमारा निजमे ममताभाव है । उनमे 'यह हमारे है' यह बुद्धि होती है, सुखादिमे कारण है । पुत्रादिसे मेरा तात्पर्य है, जब हमे सत्समागमका लाभ होता है तब उनमे वही निजत्वकी कल्पना कर लौकिक सुख-दु ख तक ही अपना लक्ष्य बना लेते है ।

अन्य यावान् पदार्थ है वे सभी चाहे लौकिक है, चाहे लौकिकातीत है उनमे जो निजत्व बुद्धि है, विषका बीज वही है । अत जहॉ तक प्रयास हो, भेदज्ञान द्वारा यथार्थ दृष्टिकी ओर लक्ष्य देना ही जीवकी प्रवृत्ति होनी चाहिए । आपका लक्ष्य आपमे ही है, अन्यत्र नही । यहॉ पर श्री चम्पालालजी, मोतीलालजी, नोनूलालजी आदि आए है । पूर्ण विचार वहॉ आनेका कर लिया है, परन्तु लोगोका आग्रह बहुत ही बाधक है । वास्तवमे न तो कोई बाधक है और न साधक है । हम स्वय इतने दर्बल है जो परको दोष देते है । अभी तक तो पूर्ण विचार है, परन्तु दिवसोका विलम्ब है । बाबू रामस्वरूपजी बहुत ही आग्रह करते है । उनका कहना है, फाल्गुनमे हमारे सिद्धचक्रका उत्सव कराके चले जावो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ३९)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । मै चतुर्मास मुरारमे ही करूँगा । उदयकी बलवत्ता है। अन्तरङ्गकी भावना निरन्तर श्री पार्श्व-प्रभुके पादमूलमे समाधिमरणकी है, क्योकि निर्मल परिणाम श्री सम्मेदाचलके पादतलमे अनायास रहते है । वे अन्यत्र प्रयास करने पर भी नही होते । परन्तु किया क्या जावे ? मै बलात्कार मोहके चक्रमे आ गया । ससारमे सर्वसे बडा व्यामोह कर्त्तृत्व बुद्धिका है । इससे मुक्त होना सामान्य मनुष्योको परम दुर्लभ है । अज्ञानावस्थामे या तो परका कर्त्ता बनता है या परको अपनासा मान लेता है । जितनी भी चरणानुयोग द्वारा व्रतक्रिया कही गई है, यह जीव उनका कर्त्ता बनता है । कर्त्ता बनना ही श्रद्धामे कलङ्क है । कलङ्क क्या ऐसे अभिप्रायमे श्रद्धान ही नही होता । जितनी शुभोपयोगसे क्रिया होती है, औदयिकी है । यह उसे आत्माकी स्वभावपरिणति मानता है और उसी क्रियाको मोक्षका कारण समझ रहा है । इसीसे इसका जो श्रद्धान है वह मिथ्या है । श्रद्धानके मिथ्या होनेसे इसके जितने प्रयास है वे सर्व ससारके वर्द्धक है । ये सर्व व्यापार सम्यग्दृष्टिके भी होते है । परन्तु वह इन्हे कर्मकृत मान, उनमे मग्न नही होता । अत वे सर्व व्यापार होते हुये थी, अनन्त ससारके बन्धनसे विमुक्ति रहते है । वे सर्व व्यापार अल्प बन्धके कारण होकर कालान्तरमे अपने उदयके कालमे वह फल देनेमे समर्थ नहीं होते जैसा फल मिथ्यादृष्टिको देनेमे समर्थ होते है । परन्तु खेद इस बातका है जो यह आत्मा आगमसे

जानकर भी अन्तरङ्गकी ग्रन्थि भेद नही करता । बाह्य पदार्थोको अपना कर मिथ्यादृष्टि परिणामोके द्वारा अनन्त ससारका पात्र बन रहा है । एक स्थूल बातको लीजिए - किसीने १०००/- का दान किया । वह कहता है, अमुक सस्थाको मैने एक हजारका दान किया । रुपये भी गये और कर्त्ता भी बना तथा श्रद्धा भी गई, क्योकि जिसको कहता है मैने दान किया, पहिले तो उस पर वस्तुमे अपनी कल्पना किया, यही मिथ्या-श्रद्धा हुई । दान दिया ये कर्तृत्व बुद्धि हुई । इसमे लाभ क्या हुआ अनन्तससार ही तो हुआ और जो स्वभावकी परिणति है उसका स्पर्श भी नही करता । शुभ और अशुभ परिणामसे रहित जो भाव है वही भाव निर्विकल्प है । वही मोक्षका मार्ग है । न वहा योगके द्वारा चञ्चलता है और न कषायकी कलुषता है । अत जिन्हे आत्मकल्याण करना है वे इन उपद्रवोसे अपनी परिणतिको रक्षित रक्खे । यह लक्ष्य रखना हमे उचित है ।

श्रावण सुदि १०, स २००५

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - ४०)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपने जो व्रत किया सो प्रशस्त कार्य ही किया । ससारमे जो जीव परपरिणतिको त्यागना चाहते है, यही पद्धति है । परके सम्बन्धसे ही तो यह जीव अनादिसे नाना प्रकारके दु खोका पात्र हो रहा है । अत परका सम्पर्क छोडना ही कल्याणका पथ है । बात बहुत करनेमे आती है, परन्तु उपयोगकी चेष्टा शताश की नही । गिरिराजके सानिध्यमे जो रहकर आत्महित करते है वे ही प्रशसनीय है । व्रतादि करनेका ही यह तात्पर्य है जो परसे सम्पर्क छूटे । मै तो यह मानता हूँ जो ज्ञानी जीवकी जो भी क्रिया है, निवृत्तिकी मुख्यतासे है । सम्यग्दर्शनके बाद कर्त्तृत्वभाव नहीं रहता । अर्थात् आत्माकी जो कर्त्तृत्वबुद्धि है वह नही रहती । चाहे शुभ क्रिया हो, चाहे अशुभ क्रिया हो, श्रद्धाके होनेपर अभिप्रायकी निर्मलता हो जाती है । इसके अनन्तर जो भी चेष्टा योगोकी कषाय द्वारा होती है, आगामी अनन्त ससारके बन्धका कारण नहीं होती। विशेष क्या लिखे - परपदार्थको देखो जानो । उसमे राग-द्वेष न करो ।

माघ वदि ४, स २००५

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ४१)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । शान्तिसे विचार किया । बाईजी ! मै न तो इन विकल्पोमे पडता हूँ और न पडनेकी चेष्टा करता हूँ । किन्तु अवसर आने पर कुछ वाक्य निकल जाते है । लोग उसमे मनमाना अभिप्राय निकालते है । अस्तु, मै यह नही चाहता जो मेरे निमित्तसे किसीको क्षोभ हो । मै क्या लिखूँ - ७५ वर्ष आयुके व्यतीत हो गये । केवल पर चिन्तामे काल गया । यह किसीका दोष नही, आत्मीयपरिणतिकी कलुषता ही इसका मुख्य हेतु है । ईसरीमे शान्तिसे काल जाता था किन्तु मोहोदयकी बलवत्ताने उस स्थानसे ऐसे स्थान पर पहुँचा दिया जो जहाँ पर निमित्तकारण विशेष रूपसे मोहमे सहायक पडते है । इसमे भी मेरी दुर्बलता है । यद्यपि यह निश्चय है, कोई बलात्कारसे कुछ भी नही कर सकता । यहाँ यह निश्चय कर लिया था जो सीधा गिरिराज जाना । परन्तु श्री कृष्णाबाई आगरासे चार बार आयीं और श्री महावीरजीके लिये आग्रह कर रही है । ८ दिनसे दो बाई पडी है । अत एक बार वहाँ जाना पडेगा । वहाँसे निश्चय गिरिराजका है । अब शारीरिकशक्ति प्रतिदिन गिर रही है । यद्यपि आत्मकल्याण ही का उपादान है, परन्तु फिर भी बाह्य द्रव्यादिकी योग्यता अपेक्षित है । निमित्त कारणका सर्वथा लोप नही हो सकता । स्त्रीसमाजसे मेरी दर्शनविशुद्धि । बाईजीका समागम पाकर यदि प्रवृत्तिको निर्मल न बनाया, तब कब बनाओगी ? सर्व पुरुष वर्गसे दर्शनविशुद्धि । यहाँ आनेसे लाभ नहीं । मै श्री महावीरजी जाऊँगा । वहाँसे ठीक मार्ग होगा । एक प्रसन्नताकी बात यह हुई जो श्री साहू शान्तिप्रसादजीने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको और १० लाख भारतीय ज्ञानपीठको दिया है । अब श्री चम्पालालजीसे कहना - बनारसकी उतनी चिन्ता न करना । वैसे जितनी करो, उतनी अच्छी है । सर्वसे बडी चिन्ता यही है कि वास्तविक सयमी बनो । वहाँ पर यदि श्री चाँदमलजी ब्रह्मचारी हो, इच्छाकार तथा श्री ब्रह्मचारी छोटेलालजीको इच्छाकार ।

आषाढ सुदि ७, स २००६

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(३ - ४२)

श्रीयुत विदुषी शान्तिमूर्ति धर्मपरायणा, इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । आपका परिणाम सदा निर्मल रहा । उसका फल सर्वदा उत्तम होगा । परिणामकी निर्मलता ससारके बन्धनोका उच्छेदन कर देती है । लौकिक कार्य तो कोई वस्तु नहीं । श्री शिखरजीका निवास तो अल्प भव्यो को मिलता है । क्षेत्र भी एक बाह्य कारण है । यद्यपि आत्मकल्याणका अङ्कुर आत्मा ही मे उदित होता है फिर भी बाह्य कारणकी अपेक्षासे ही होता है । कार्यकी उत्पत्ति उपादान-निमित्त सापेक्ष है । गया भी शिखरजीका एक अग है । अत वहॉ आनेसे आपके परिणामोकी विशदताका ह्रास नही हो सकता । प्रत्युत आपके निमित्तको पाकर समाजका परिणाम निर्मलताकी ओर ही जाता है । हमारा अभिप्राय तो कुछ और है और होता कुछ अन्य ही है । किससे कहे ? अपने किये कर्मका फल हम भी भोगते है । किसीको दोष नही । परन्तु श्रद्धा जो थी वही है । हमारा समाजसे यह सदेश कहना जो बन्धुगण ! मनुष्य-जन्मका सार यही है जो आपको जानो । इससे अधिक कुछ नहीं । यही ज्ञान ससार समुद्रसे पार करेगा ।

आषाढ वदि १४, स २००९

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(३ - ४३)

श्रीयुत प्रशममूर्ति पतासीबाईजी, योग्य इच्छाकार

आपका पर्व शान्तिसे होता होगा । शान्तिधर्म अन्यत्र नहीं, परन्तु हम मोही जीव प्राय निमित्त कारणमे उसे अन्वेषण करते है यह हमारी अनादी कालकी परिणति हो गई है । आपकी सामर्थ्यसे सर्वथा वञ्चित रहते है । आत्मामे अनन्त सामर्थ्य है ऐसा कहते है, परन्तु उसका उपयोग करते नहीं । जो आत्मा अनन्त ससारको कर्त्ता हो वह क्या उसका विध्वस नहीं कर सकता । परन्तु हम प्रथम पक्षको तो मानते है, किन्तु द्वितीय पक्ष के माननेमें सर्वथा नपुसक बन जाते है । ससार कोई भिन्न तो पदार्थ है नहीं। आत्मा ही ससारी सिद्ध उभय पर्यायका कर्त्ता होता है । अत· कहनेका तात्पर्य यह है जो शक्तिका उपयोग ससार सृजनमे हो रहा है उसे ससारध्वसमें लगाना उचित

है। आपके निमित्तसे वहॉंकी जैनजनता ससार बन्धनके छेदनेमे उद्यमशील है । इतनी सूचना मेरी दे देना जो इन पर्वदिनोमे शील व्रत पाले । एक मास ही तो मध्यमे है । भाद्र मास तो धर्मपर्व है ही । २६ दिनकी बात है ।

चरणानुयोगका आचरण अध्यात्मका साधक है । हम लोग चरणानुयोगको केवल भोजनादि तक ही सीमित मानते है । सो नही, इसका सम्बन्ध साक्षात् आत्मासे है । मेरा तो दृढतम श्रद्धान है जो प्रथमानुयोग भी अध्यात्मरसके स्वाद करानेमे किसी अनुयोगसे पीछे नही । चाहे वनमे एक विहारी होकर आत्मकल्याण करो, चाहे गृहस्थीमे रहकर भी मोक्षमार्ग साधो - तरतम ही पावोगे । विशेष अन्तर नही, मार्गके सन्मुख दोनो है । केवल चालमे अन्तर है, अन्य कुछ भी अन्तर नही । यद्यपि हमारा इतना शुभोदय प्रबल नही जो गिरिराजके पादमूलमे आत्मशुद्धि करते । यह सुयोग नही। आप ही भद्र जीवोका है फिर भी हमारी श्रद्धामे कोई अन्तर नही । मेरा वहॉंकी जनतासे धर्मप्रेम कहना । श्री चम्पालालजी आदि सर्वसे धर्मस्नेह कहना ।

आषाढ सुदि १०, स २००९

आ शु चि
गणेशप्रसाद वर्णी

वर्णी-विचार

२१ मार्च १९४५

* सर्वोपरि वह मनुष्य है, जो आशाओ पर विजय पाता है । आशाओ पर विजय पाना महान पुण्याधिकारी का काम है । मै तो पुण्यात्मा उसे मानता हूँ, जो ससार बन्धन के कारणो से मुक्त हो । यो तो लौकिक सामग्री की प्राप्ति चाण्डालो के भी हो जाती है परन्तु वास्तव मे वह पाप ही के अर्थ होती है ।

* * *

६ मार्च १९४५

' व्यर्थ के कार्यो मे अपने को न उलझाओ आखिर नतीजा क्या होगा? ससार मे कोई भी कार्य ऐसा नही जो जीव से अशक्य हो । आवश्यकता अपनी शक्ति की उपासना की है ।

ब्र. पण्डिता कृष्णाबाईजी

(श्रीमती ब्र पण्डिता कृष्णाबाईजीका जन्म फाल्गुन वदि १३ वि स. १९५७ को पिता रामेश्वरलालजी गर्गके घर माता सीतादेवीके कूखसे फतेपुरमें हुआ था । जाति अग्रवाल है । साधारण शिक्षाके बाद इनका विवाह रामगढनिवासी सेठ रामनिवासजी गोयल कलकत्तावालोके साथ हुआ था । किन्तु इनके जीवनमे वैधव्ययोग होनेके कारण वि स १९९५ मे इन्हे वैधव्य जीवनका समाना करना पडा । इन्हे अपने गार्हस्थिक जीवनमे सन्तानकी प्राप्ति भी नहीं हुई, इसलिए इनका चित्त धीरे-धीरे धर्मके सन्मुख होने लगा ।

अपने इस जीवनको सफल बनानेके लिए इन्होने धर्माराधन और अध्ययन ये दोनो कार्य एक साथ प्रारम्भ किये । माता पिता से उत्तराधिकारमे इन्हे यद्यपि वैष्णव धर्म मिला था फिर भी इनकी रुचि जैनधर्मकी ओर गई । फलस्वरूप इन्होने पूज्य श्री वर्णीजीके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिए और कालान्तरमे श्री १०८ आचार्य वीरसागर महाराजके पास सप्तम प्रतिमाके व्रत धारण किये । धर्मशास्त्रमे इन्होने बनारसमे शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की है ।

ये बडी उद्योगशील है । इन्होने श्री महावीरजी क्षेत्र पर एक महिलाश्रमकी स्थापना तो की ही है । साथ ही उसके अन्तर्गत एक विशाल जिन मन्दिर भी बनवाया है । ये महिलाओमे जागृति उत्पन्न करनेके लिए एक महिला पत्र भी निकालती है । मन्दिरनिर्माण, वेदीप्रतिष्ठा और औषधालय आदि अनेक उपयोगी कार्योमे इन्होने विपुल धनराशि खर्च की है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य श्रद्धा है । फलस्वरूप उनके द्वारा इन्हे लिखे गये कुछ पत्र यहा दिये जाते है ।)

(४ - १)

श्रीयुत कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

ससारमे शान्तिका सरल मार्ग है तथा स्वाधीन है तथा इसके अन्दर यावती ससारकी आपत्तिया है स्वयमेव उदय नहीं होती । इसका फल उसी समय मिलता है, अत सर्व विकल्पोको छोड इसीके अर्थ अपना जीवन लगा दो । माता पिता भाई बन्धु सर्व अपने अपने परिणामोके अनुकूल परिणमते है । अन्य दानादिककी भी कोई चिन्ता न करो, धन वस्तु ही पराई है । पर वस्तुसे कभी लाभ हुआ है क्या ? जो धनसे पुण्य मानते है वे वस्तु ही नहीं जानते है । पुण्यका कारण आभ्यन्तर मन्द कषाय है, न कि

धन । अभी आपके पिताने स्वात्मधर्मकी प्राप्तिका जो मार्ग ग्रहण किया है उसके रङ्गमे यह स्वाधीन शुद्धोपयोगका मार्ग अपना रङ्ग नहीं जमा सकता । शान्तिका मार्ग निवृत्तिमे है । जिनेन्द्रदेवका तो यह उपदेश है, यदि कल्याण अभीष्ट है तब हममे राग छोड दो । जहा गीतामे श्रीकृष्ण भगवानका यह उपदेश है निष्काम कार्य करो वहा पर जिनेन्द्रका यह उपदेश है सम्यग्ज्ञानी होनेके बाद कर्तृत्व भाव ही नही रहता है । अज्ञानावस्थामे आत्मा कर्ता बनता है विशेष क्या लिखे, यदि कभी दानकी इच्छा हो और अनुकूल धन दो तब ज्ञानदानको छोडकर किसीके दम्भमे न आना ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(४ - २)

श्री कृष्णाबाईजी, योग्य इच्छाकार

आत्मा वही दु खसे छूटनेका पात्र है जो पर पदार्थसे सम्बन्ध छोडेगा । आप लोगोकी सहनशक्ति जब शारीरिक इतनी है जो ५ डिगरी ज्वरमे मामायिक करनेका साहस रहता है तब पर पदार्थोसे सम्बन्ध छोडनेमे क्या कठिनता है ? हम कहे ससार स्वार्थी है तब क्या इसका यह अर्थ है जो हम स्वार्थी नही । अत इन अप्रयोजनीभूत विकल्पोको छोड केवल माध्यस्थभावकी वृद्धि करना, रागद्वेष दु खदायी है ऐसा कहनेसे कुछ भी सार नहीं, कर्ता उसके हम है, अत आत्मा ही आत्माको दु ख देनेवाला है, इसलिये आत्माको निर्मल करनेकी आवश्यकता है । उस निर्मलताके अर्थ किसीकी आवश्यकता नहीं, केवल स्वीय विपरीत मार्गकी गमन पद्धतिको छोड देना ही श्रेयस्कर है । हम क्या करे । जिसका प्रश्न है उसका उत्तर यह है - जिस वस्तु या परिणामको आप दु खकर समझते है उसे छोड दे । हमारी तो यही सम्मति है जो आत्माके हितके अर्थ जो भी त्याग करना पडे करे । वही कहा है -

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि ।
आत्मान सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ।।

क्योकि ससारमे प्राय. प्रवृत्ति भी इसी प्रकारकी है, अत जो मुमुक्षु है उनकी क्या स्वात्महितके अर्थ यदि प्रवृत्ति हो तब इसमे क्या आपत्ति है । ससारमे तो परार्थ घात करके स्वार्थ साधन करते है । यहॉ मोक्षमार्गी केवल स्वार्थ साधनामे ही उपयोगकी चेष्टा रखते है, अत निष्कर्ष यह है जो आपका कल्याण आपसे होगा, इतरका सम्बन्ध बाधक ही है । हम तो वस्तु ही क्या हैं । मेरी तो श्रद्धा है परमेष्ठीका ससर्ग भी साधकतम नहीं । साधकताका निषेध नहीं, तत्त्व तो सरल है पर उसकी

व्याख्या इतनी कठिन है जो बहुयत्नसाध्य है, परन्तु श्रद्धालु जीवोको उसकी प्राप्ति कठिन नहीं । पूर्वधारी भी श्रेणि माडते है और अष्ट प्रवचनके जाननेवाले भी वही काम करते है ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(४ - ३)

श्री पूज्य ब्रह्मचारिणी कृष्णादेवीजी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । जिनके इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोगमें धीरता रहती है वही जीव सयमके पात्र है । शान्तिका कारण निमित्त कारण नही होता । अचेतन पदार्थमे तो निमित्त कारणके व्यापारकी आवश्यकता है परन्तु चेतन पदार्थमे ऐसा नियम नहीं, क्योकि यहॉपर जिसमे कार्य होता है वह चेतन है । अत निमित्त कारण मिलने पर यदि वह तद्रूप न परिणमे तब निमित्त कारण क्या कर सकता है । यही कारण है जो अनन्त बार ग्रैवेयक जाकर भी यह जीव ससारका पात्र रहा, अत जहॉ तक बने अतरगकी त्रुटिको निरन्तर अवगत कर पृथक् करनेकी चेष्टा करना । मेरा तात्पर्य यह नही कि निमित्त कारण कुछ नही, किन्तु वस्तु विचारनेपर वह अकिञ्चित्कर ही प्रतीत होता है । अत पुरुषार्थकर अन्तरङ्गकी ऐसी निर्मलता होनी चाहिये जो पर पदार्थो के आभास होनेपर इष्टानिष्ट कल्पना न होने पावे । सर्वथा पराधीन होकर क्या करे, कोई उत्तम निमित्त नहीं यह सर्व व्यापार अज्ञानी मोही जीवोका है । ज्ञानी वीतरागी जीव व्याघ्री द्वारा विदारित होनेपर भी केवलज्ञानके पात्र हुए । आजकल पञ्चम काल है तब इससे क्या हानि हुई । अब भी भद्र जीव चाहे तब वास्तविक मोक्षमार्गका प्रथम सोपान सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर सकते हैं । आप तो देशसयमकी निराबाध सिद्धिके अर्थ प्राणपन से चेष्टा कर रही हो तब अब आकुलता करनेसे क्या लाभ ? कहीं रहो परन्तु जहॉ शरीर निरोग और आत्मनिर्मलता हो इसपर अवश्य ध्यान रखना । मैने तो पहिले ही कहा था कि तुमको सबसे अच्छा स्थान बनारस है । एक बार सानन्दसे भोजन करो और स्वाध्याय करो । ज्ञानार्जनका फल केवल अज्ञाननिवृत्ति ही नहीं किन्तु उपेक्षा है । विशेष क्या लिखे ? हमारा दृढ निश्चय है - जिस कालमें जो होना है होगा, अधीरता करनेकी आवश्यकता नहीं । मैने आज तक आपसे नहीं कहा कि अमुक स्थानपर द्रव्य दो और न कहूँगा परन्तु सिद्धान्तके अनुकूल ज्ञानार्जनके आयतनमे द्रव्यका सदुपयोग होता है । ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

श्री भगिनी महादेवीजी

(श्रीमती भगिनी महादेवीजीका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा ५ वि स १९५१ को काजीपुरमे हुआ है । पिताका नाम श्री सन्तलालजी और माताका नाम श्री सजनीदेवी था । जाति अग्रवाल है । माता-पिताके घर साधारण शिक्षाके बाद इनका १३ वर्षकी अवस्थामे खतौलीनिवासी लाला अनूपसिहजी जैन रईसके साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया था । किन्तु विधिकी विडम्बनावश २१ वर्षकी अवस्थामे ही इन्हे वैधव्य जीवन का सामना करने के लिए विवश होना पडा । प्रारम्भसे ही ये धार्मिक कार्योमे विशेष उत्साह दिखलाती रही है, इसलिए इस महान् सकटके उपस्थित होने पर भी ये विचलित नही हुई और आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर दूने उत्साहसे आत्मकार्यमे जुट गई ।

स्वाध्याय, व्रताराधन, अध्ययन, अतिथि सत्कार और साधुसेवा यही इनके जीवनके मुख्य कार्य है । ये स्वभावसे दयालु और उदार है । अनेक लोकोपकारो कार्योमे इन्होने सहायता की है । इनके सम्बन्धमे सक्षेपमे इतना कहना ही पर्याप्त है कि उस प्रान्तमे ये आदर्श महिला-रत्न है ।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजमे इनकी अनन्य भक्ति है । फलस्वरूप पूज्य वर्णीजी द्वारा इन्हे लिखे गये कतिपय पत्र यहाँ दिये जाते है ।)

(५ - १)

श्री प्रशममूर्ति धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

इस ससारमे अनन्तभव भ्रमणा करते सज्ञी पर्यायकी प्राप्तिका महत्व सामान्य नहीं । इसे प्राप्त कर आत्महितमे प्रवृत्ति करना ही इसकी सफलता है । "**बुद्धेः फलं ह्यात्महितप्रवृत्तिः**" इसका अर्थ निश्चयसे बुद्धि पानेका फल यही है कि आत्महितमे प्रवृत्ति करना । अब यहाँ विचार बुद्धिसे परामर्श करनेकी महती आवश्यकता है कि आत्महित क्या है और उसके साधक कौनसे उपाय है ? यदि इसका निर्णय यथार्थ हो जावे तब अनायास हमारी उसमे प्रवृत्ति हो जावे ।

साधारण रूपसे प्राणियोकी प्रवृत्ति प्राय दु ख निवारणके लिये ही होती है । यावत् कार्य मनुष्य करता है प्राय उनका लक्ष्य दु ख न होना ही है । उसके उपाय चाहे विपर्यय क्यो न हो परन्तु लक्ष्य दु खनिवृत्ति है । अत इससे यही निष्कर्ष निकलता है

कि आत्माका हित दु खनिवृत्ति है । अब हमे दुख का स्वरूप जाननेकी परम आवश्यकता है । आत्मामे जो एक प्रकारकी आकुलता उत्पन्न होती है वह हमे अच्छी नहीं लगती, चाहे वह आकुलता उत्तम कार्यकी हो चाहे अनुत्तमकी हो । हम उसे रखना अच्छा नहीं समझते, चाहे वह जीव सम्यग्ज्ञानी हो, चाहे मिथ्याज्ञानी हो, दोनो ही इसे पृथक् करना चाहते है । जब इस जीवके तीव्र कषाय उदय होता है तब क्रोध करनेकी उद्वेगता होती है और जब तक उस क्रोध विषयक कार्य नहीं सम्पन्न होता, व्याकुल रहता है । कार्य होते ही वह व्यग्रता नही रहती तब अपनेको सुखी समझता है। इसी प्रकार जब हमारे मन्द कषायोदय होता है उस कालमे हमे धर्मादि शुभोपयोग करनेकी इच्छा होती है । जब वह कार्य निष्पन्न हो जाता है तब जो अन्तरङ्गमे उसे करनेकी इच्छाने आकुलता उत्पन्न कर दी थी वो शात हो जाती है । इसी प्रकार यावत् कार्य है उन सर्वमें मोही जीवकी यही पद्धति है । इससे यह निष्कर्ष निकला कि सुखी तो जीव आकुलताकी जननी इच्छा के अभावमे होता है, परन्तु जिन जीवोंके मिथ्याज्ञान है वे जीव उस कार्यके सम्पन्न होनेसे सुख मानते हैं । इसी मिथ्याभावको दूर करना ही हितका उपाय और अहितका परिहार है । ऐसा ही पद्मनन्दी महाराजने लिखा है -

यद्यद्यदेव मनसि स्थित भवेत्तदेव सहसा परित्यजेत् ।
इत्युपाधिपरिहारपूर्णता सा सदा भवति तत्पदं तदा ।।

अर्थात् मनमे जो जो विकल्प उत्पन्न होवे वो वो सर्व सहसा ही परित्याग देवे । इस प्रकार जब सब उपाधि जीर्णताको प्राप्त हो जाती है उसी कालमे वह जो निजपद है अनायास हो जाता है । इसका यह तात्पर्य है कि मोहजन्य जो जो विकल्प है वे ससारके वर्धक ही है । इसी आशयको लेकर श्रीपद्मनन्दी महाराजने कहा है-

बाह्यशास्त्रगहने विहारिणी या मतिर्बहुविकल्पधारिणी ।
चित्स्वरूपकुलसद्मनिर्गता सा सती न सदृशी कुयोषिता ।।

बुद्धि जो चैतन्यात्मक कुलग्रहसे निकलकर बाह्य शास्त्ररूपी वनमे बहुत विकल्पोको धारण करती हुई विहार करती है वह सद्बुद्धि नही किन्तु कुलटा स्त्रीके समान व्यभिचारिणी है । इसका भी तात्पर्य है कि बुद्धि रागादि कलक सहित पर-पदार्थों को विषय करनेमे चतुरा भी है तब भी पण्यङ्गना (वेश्या) सदृश वह हेया है । इसलिये बेटी ! जहाँ तक बने अन्त शत्रुजीवके रागादिक हैं उन्हींके विजयका उपाय

करना । जप, तप, सयम, शीलादि जो कार्य है उनका एतावन्मात्र ही प्रयोजन है । यदि इस मुख्य लक्ष्य पर ध्यान न दिया तब भुस का लीपना चीकना न चादना ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २)

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बेटी ! ससारमे शान्ति नही सो ठीक है, परन्तु शान्तिका मूल हम लोग ही तो है। क्या पुदगल कर्म शान्तिका बाधक है? हमारी अज्ञानतासे यह सर्व असत् कल्पना कर यह ससार बना रखा है । वास्तविक तो वस्तु अशान्तिमयी नही, औपाधिक परिणामोने यह सब उपद्रव बना रखा है । अत जहा तक बने उन औपाधिक भावोका यथार्थ ज्ञान करना हो मोक्षमार्गकी प्रथम सीढी है । औपाधिक भावोके त्यागके बिना हम सम्यग्दर्शन के पात्र नहीं हो सकते । अत ससारसे सवेग होना ही श्रेयस्कर है । क्या लिखूँ ? पदार्थ तो इतना सरल है जो एक मिनट तो बहुत, एक सिकेण्डमे अवबोधका विषय हो सकता है, परन्तु विषयो की प्रचुरतासे उसकी यथार्थता वचन मे आना दुर्गम है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ३)

श्रीयुक्ता देवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मैने पत्र बनारसको लिख दिया है । आशा है उत्तर आपके पतेसे पहुँचेगा । यदि २/- रु की जगह ३/- रु दिये जावे तब अच्छा है । मैने दो रुपयेके लिए लिखा है । बेटी ! ससारमे सर्वत्र ही अशान्ति है । धन्य है उन महापुरुषोको जो इस महती अशान्तिमे शान्तिके पात्र हो जाते है । मूल कारण शान्तिका पर पदार्थसे परणति हटावे। हटानेका उपाय उनके न्यून करनेका प्रयास है । जितना अल्प परिग्रही होगा उतना ही सुखी होगा । परिग्रह ही सर्व पापोका निदान है । इसकी कृशता ही रागादिकके आभावोमे रामबाण औषधि है । बेटी ! जहा तक बने रागादि दोषोसे ही अपनी रक्षा करना । यह अवसर अति दुर्लभ है । मनुष्यायुकी प्राप्ति, शरीरादिककी

निरोगता उत्तरोत्तर दुर्लभ जान सानन्द चित्तसे इन शत्रुओको विजय पर स्वात्मलाभ करना ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४)

श्रीयुक्ता महादेवीजीको दर्शनविशुद्धि

हमारा तो यही कहना है, जिसमे आपको शान्ति मिले और रागादिक उपक्षीण हो वही कर्तव्य है । इसकी ओर दृष्टि देना ही इस जीवनका लक्ष्य है । तुम्हारी प्रवृत्ति उत्तम है । हमारा तो ध्येय यही है, इसीसे हमने सर्व प्रकारकी सवारी छोडी है । आप जहा तक बने बाबाजीकी पर्याय तक वहीं रहनेकी चेष्टा करना, क्योकि आपके द्वारा जो वैयावृत्त होगी वह अन्यत्र न होगी । धर्मके मूल आशयको जाने बिना धार्मिक भाव व धर्मात्मामे अनुराग नही हो सकता । हमको एक शल्य थी वह भी निवृत्ति हो गई, अर्थात् बाईजीकी ननद वह भी परलोक पधार गई । अब तो कुटुम्बी कहो चाहे पिता कहो बाबाजी महाराज है । मैने शिखरजी जानेका निश्चय कर लिया, नहीं तो वही आता । अब देखे कब बाबाजीसे मिलाप होगा ? दादाजीसे दर्शनविशुद्धि ।

आ. शु चि.
गणेशप्रसाद वर्णी

(५ - ५)

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

अपनी मा तथा भावी व भाईसे धर्मस्नेहपूर्वक दर्शनविशुद्धि । **बुद्धेः फलं ह्यात्महितप्रवृत्तिः** । बुद्धि पानेका यही फल है जो आत्महितमे प्रवृत्ति करना । आत्महित क्या है ? वास्तव दृष्टिसे विचारा जावे तब दु खनिवृत्ति ही है । यावत् जगत है, इसीके अर्थ चेष्टा करता है । दु ख पदार्थ क्या है ? इस पर सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो यही निष्कर्ष अन्तमे निकलेगा, आवश्यकताओकी माला । ज्ञानकी आवश्यकता क्यो होती है ? हम अज्ञानसे नाना प्रकारकी यातनाओके पात्र होते है । ज्ञान होने पर वे यातनाए जो अज्ञान अवस्थामें हमे बाधा दे रही थीं अब नहीं देती । हम अर्हद्भक्ति किस अर्थ करते है ? हमारी रागादिक परणति ऐसे पदार्थोमें न जावे जो हमे मोक्षमार्गसे

च्युत कर देवे तथा तीव्र रागद्वेषकी ज्वाला हमे दग्ध न कर देवे, एतज्जन्य दु खकी निवृत्ति के अर्थ ही हमारा प्रयास है । हम जो दान देते है उसका तात्पर्य यही है जो हम लोग कषायसे दु खी न होवे । हम चारित्रको अगीकार करनेका जो प्रयास करते है उसका भी मूल तात्पर्य यही है, जो हम रागद्वेषकी कलुषतासे क्लेशित न हो । लौकिक कामोमे देखो हम भोजन इस अर्थ करते है जो क्षुधाजन्य पीडा शान्त हो । जब हमे कषाये पीडा उपजाती है तब अपना अकल्याण करके भी उस कषायकी पूर्ति करते है । यद्यपि विचार से देखे तब सुखका मूल उस कषायकी हीनता है, परन्तु हमे इस प्रकारका मिथ्याज्ञान है जो हम कषायमे सुख मानते है, क्योकि सुख तो कषायके अभावमे है । जैसे देवदत्तको यह कषाय उपजी जो यज्ञदत्त हमे नमस्कार करे । जबतक वह नमस्कार नही करता तब तक देवदत्तको अन्तरङ्गमे दु ख रहता है । एक बार यज्ञदत्तने उसे दुखी देख अपनी हठ छोड देवदत्तको नमस्कार कर लिया, इस पर देवदत्त कहता है मेरी बात रह गई । और देख, अब मै उस कषायके होनेसे सुखी हो गया । इस पर यज्ञदत्त कहता है कि तुम भ्रममे हो तुम्हारी बात भी गई और कषाय भी गई । इसीसे तुम सुखी हो गये । जब तुम्हे इच्छा थी कि नमस्कार करे और मै नही करता था तब तुम दु खी थे । मेरी हठ थी कि मै इसे क्यो नमू ? सो मै भी दु खी था । अब मेरी हठ मिटी तब मैने नमस्कार किया । उससे जो तुम्हारी इच्छा थी कि यह मुझे नमस्कार करे, दु ख दे रही थी मिट गई । अत तुम इच्छाके अभावमे सुखी हुए । मै भी हठके जानेमे सुखी हुआ । अत ऐसा सिद्धान्त है कि अभिलाषाका जाल ही दु खका मूल कारण है, तब निष्कर्ष यह निकला सुख चाहते हो तब इच्छाओको न्यून करो यही सदेश आत्माका है । अब वैशाख सुदि १५ तक पत्र न दूगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ६)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जिस जीवकी आयु एक कोटि पूर्वकी है । और उसे आठ वर्ष बाद केवली या श्रुतकेवलीके निकट क्षायिकसम्यक्त्वकी प्राप्ति हो गई ।

पढमुवसमिये सम्मत्ते सेसतिये अविरदादिचत्तारि ।
तित्थयरबधपारभया णरा केवलिदुगते ।।

इस गाथाके अनुकूल उसने तीर्थकर प्रकृतिका बध प्रारम्भ कर दिया । आठवे अपूर्वकरण तक बराबर बन्ध होता रहा । अन्तमे उपशमश्रेणी मांडकर ग्यारहवे गुणस्थानमे आयु पूर्ण होकर ३३ सागर सर्वार्थसिद्धिमे आयु पायी । वहा भी बराबर बन्ध होता रहा । वहाके बाद फिर यह कोटिपूर्वका आयुवाला मनुष्य हुआ । वहा भी अपूर्वकरण तक यह प्रकृति बधती रही । बादमे लोभ नाशकर क्षीणमोह अन्तर्मुहूर्त बाद केवली हुआ । तेरहवे गुणस्थानका काल पूर्ण कर चतुर्दश गुणस्थानका समय पूर्णकर मोक्ष हुआ । अत इस कालकी विवक्षा न की और न पूर्व अपूर्वकरणके बाद कालकी विवक्षा की । सागरोके सामने यह कोई काल नहीं । तारतम्यसे विचारा जाय तो यह अन्तर अवश्य है । तीर्थकर प्रकृतिवाला यदि पच कल्याणधारी होनेवाला है तब तो इस जन्मसे २ जन्म धारण कर मोक्ष जावेगा और जो २ कल्याणक व ३ कल्याणधारी होते है वे उसी भवसे मोक्ष जाते है । यदि सम्यक्त्वके पहिले नरकायुका बध कर लिया तब तीसरे नरक तक जा मकता है । तीर्थकर प्रकृतिके बध होनेके बाद आयुबन्ध होवे तब नियमसे देवायु ही का बध होवे । जो दयाभाव विपरीत अभिप्रायसे होवे तब तो नियमसे दर्शन मोहके चिन्ह है । सामान्य मोहके उदयमे करुणाभाव मिथ्यादृष्टियोके भी होता है और सम्यग्दृष्टियोके भी होता है । सम्यग्दृष्टिके तो पचास्तिकायमे लिखा है - जब उपरितन गुणस्थानमे चढनेकी अशक्यकता है तब अपने उपयोगको इन कार्योमे लगा देता है । मिथ्यादृष्टि अहम् बुद्धिसे कार्य करता है । वास्तविक रीतिसे देखा जाय तब करुणाभाव चारित्रादिके उदयसे ही होता है । किन्तु जब मिथ्यादर्शन उदय मिलित चारित्रोदय होता है तब दर्शनमोहके उदयका कह दिया जाता है। इसी तरह से वैरभाव या मित्रभाव सब चारित्रमोहके उदयमे होते है। परन्तु मिथ्यात्व आदिमे सब मिथ्यादर्शनके सहचारी कह दिये जाते है । वैरभाव द्वेषसे होता है, अत पञ्चाध्यायीमे कह दिया गया है जो मिथ्यात्वके बिना यह नहीं होता । किसीको वैरी मानना जैसे मिथ्यात्वका अनुभावक है वैसे किसीको मित्र मानना भी मिथ्यात्वका अनुभावक है । अत दर्शनमोहके उदयमे न करुणाभाव होता है न वैरभाव। ये दोनो भाव चारित्रमोहके उदयसे ही होते है ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ७)

श्रीयुक्ता प्रशममूर्ति महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । मै आजकल हजारीबाग हूँ और दो या तीन दिनमे ईसरी जाऊँगा । बाबाजीको जहाँ तक बने वहीं रखनेकी चेष्टा करना । अब उनका शरीर प्राय बहुत ही शिथिल हो गया है । शिथिलतामे वैय्यावृत्तकी बडी आवश्यकता है । अन्तरङ्ग निर्मलताकरे अर्थ बाह्य कारणोकी महती आवश्यकता है तथा योग्य भोजनादिक भी धर्मके साधनमे निमित्त होते है । अन्यत्र यह सुभीता नही । धार्मिकभावका होना कठिन है । जिसके तत्त्वज्ञान होता है वही धर्मकी रक्षा कर सकता है । मुझे विश्वास है कि बाबाजी हमारी प्रार्थना स्वीकार करेगे । शान्तिका अन्तरङ्ग कारण जहाँ प्रबल होता है वहाँ बाह्य कारण बाधक नही होते । जहाँ यह जीव स्वय ढीला होता है वहाँ निमित्तोपर दोषारोपण करता है । बाबाजी स्वय विज्ञ है । वे निमित्त कारणोसे शान्तिकी रक्षा करेगे । फिर भी खतौलीमे उत्तम निमित्त है जो उनके धर्म-साधनमे बाधक नही होगे । मेरी निरन्तर भावना उनके सहवासकी रहती है परन्तु कारणकूट नही । यह भी उन्हीके सहवासका फल है जो मै एक स्थानमे रह गया । चित्तकी भ्रातिमे कोई लाभ नही दीखता । लाभका आश्रय स्वय है । कषायकी उपशमताका प्रयास तो करता नही । कठिन कठिन कहकर इसको इतना गहन बना दिया है जो लोग भयभीत हो जाते है । आभ्यन्तर कषाय को जिसने जान लिया है वह चाहे तो दूर भी कर सकता है । पुरुषार्थके समक्ष कर्म कोई वस्तु नही, क्योकि हम सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय है । यदि इस उत्तमताको पाकर हमने कायरताका आश्रय लिया तब हमारी बुद्धिका क्या उपयोग हुआ ? केवल पर वचनाके लिये ही यह जन्म गमाया । अत जहाँतक बने इन कषायोसे न दबना, इन्हे दबाना । इनका दबाना यही है - ज्ञाता दृष्टा रहना ।

आ शु चि

गणेश वर्णी

(५ - ८)

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

स्वास्थ्य पूर्ववत् है । अत विशेषकी आवश्यकता नहीं, आवश्यकता अब अन्तस्तलमे विचार करनेकी है । परकीय पदार्थोसे परिणतिको पृथक्करण करना ही

अन्तस्तत्वकी प्राप्ति है । अनादिकालसे अतथ्य विचारोंने ऐसा आत्माको जर्जरित कर दिया है जिससे स्वोन्मुख होनेकी सुध भी नहीं होती, केवल वचन चातुरता छल है । जिस वचनके अनुकूल आशिक भी स्वकार्य नहीं किया उसका कोई मूल्य नहीं । ज्ञानप्राप्तिका फल ससारके विषयोसे उपेक्षा होना है। अर्थात् ज्ञातादृष्टा ही रहना ज्ञानका फल है । यदि यह नहीं हुआ तब लोभीकी लक्ष्मीके सदृश वह ज्ञान है । केवल मनोरथसे इष्टसिद्धि नही होती । मनोरथके अनुरूप सतत प्रयास करना ही उसकी सिद्धिका मुख्य हेतु है । मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं जो पुरुषार्थसे सिद्ध न हो सके । पुरुषार्थसे सन्निकट है । केवल जो परमे परिणति हो रही है उससे विरुद्ध परिणति करना ही पुरुषार्थ है । केवल उपयोगको परसे हटाकर अपने रूपमे लगा देना ही अपना कर्तव्य है ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ९)

देवी, दर्शनविशुद्धि

महात्माका लक्षण तो श्री बाबाजीमे है । ज्ञानसे आत्मा पूज्य नहीं, पूज्यताका कारण तो उपेक्षा है । श्रीयुत बाबाजीके प्राय रागकी बहुत मदता है तथा साथमे निर्भयता, निर्लोलुपता, जितेन्द्रियता आदि गुणोके भण्डार है । यह कोई प्रशसाकी बात नहीं, आत्माका यह स्वभाव ही है । हम तो पामर जीव है । बाबाजीके समागमसे कुछ सम्मुख हुए है । निरन्तर उनके ससर्गकी इच्छा रहती है, परन्तु पुण्योदय बिना ससर्ग होना कठिन है । हाँ, अब निरन्तर स्वाध्यायमे काल यापन करता हूँ । इस कालमे ज्ञानार्जन ही आत्मगुणका पोषक है । यदि ज्ञानके सद्भावसे मोहका उपशमन नहीं हुआ तब उस ज्ञानकी कोई प्रतिष्ठा नहीं । जीवन बिना शरीरके तुल्य है, हम तो उसीको उत्तम समझते है जो ससार दु खसे भीरु है । यदि बहुत कायक्लेश कर शरीरको कृश किया और मोहादिको कृश न किया, सब व्यर्थ ही प्रयास किया । अतएव अपने समयको ज्ञानार्जनमे लगाकर मोह कृश करनेका ध्येय रखना ही मानवका कर्तव्य है । श्रीयुत महाशय त्रिलोकचन्द्रजीसे दर्शनविशुद्धि । जो आपकी प्रवृत्ति है वही ससारसे पार करेगी । भूलकर भी गृहसे उदास होनेकी भावनाको न भूलिये, छोडना इस कालमे सुखकर नहीं । क्योकि पचम कालमे बाह्य निमित्त उत्तम नहीं । स्वाध्याय ही सर्व

कल्याणमे सहायक होगा । स्वास्थ्य अच्छा होने पर एक बार अवश्य आऊँगा । मेरी भावना् सत्समागममे निरन्तर रहती है । शेष सर्वसे यथायोग्य ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - १०)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

ससारमे जहॉ तक गम्भीर दृष्टिसे देखा गया शान्तिका अश भी नहीं । मै तू कहकर जन्मका अन्त हो जाता है, परन्तु जिस शान्तिके अर्थ व्रत, अध्ययन, उपवासका परिश्रम उठाया जाता है उस मूल वस्तु पर लक्ष्य नहीं जाता । कह देना कोई कठिन वस्तु नहीं । द्रव्यश्रुत मात्र कार्यकारी नहीं, क्योकि यह तो पराश्रित है । वही चेष्टा हम जैसे प्राणियोको रहती है, भावश्रुतकी ओर लक्ष्य नहीं, अत जलमन्थनसे घृतकी इच्छा रखनेवाले सदृश हमारा प्रयास विफल होता है । अत कल्याणपथ पर चलनेवाले प्राणियोको शुद्ध वासना बनाना ही हितकर है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(५ - ११)

श्री महादेवी, दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । तीर्थयात्रा की यह अच्छा किया, क्योकि तीर्थक्षेत्रोमे परिणाम अत्यन्त विशुद्ध होता है । मेरा स्वास्थ्य प्रतिदिन अवनत होता जा रहा है, किन्तु नित्यकर्ममे कोई बाधा नहीं । औषधि अर्हन्नाम और स्वाध्याय है । यदि इस पर्यायकी कोई सफल करना चाहता है तब निरन्तर स्वाध्याय और शुभ विचारोमे उपयोगको लगावे । नाना प्रकारकी कल्पनाओके जालमे न फसे । दादीजीको दर्शनविशुद्धि । बाईजीका धर्मस्नेह । रुपयोके बाबत जो लिखा सो ठीक है । आप और बाबीजीकी जो इच्छा हो सो करना । मैं आपकी इच्छा मे बाधक नहीं । यहा पर भी अच्छी व्यवस्था है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - १२)

श्रीमती सहृदया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । बाईजीका स्वास्थ्य अभी पूर्ववत् है । सप्रेम गुणस्थानसे जो जीव श्रेणी माडते है वे दो तरहसे माडते हैं, उपशम तथा क्षयरूपसे । जो चारित्रकी प्रकृतिया उपशम करते है उनके औपशमिक भाव और जो क्षय करते है उनके क्षायिकभाव होता है। अर्थात् पञ्चम गुणस्थानसे सप्तम गुणस्थान तक जो भाव होते है उन्हे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं, क्योकि इन गुणस्थानोमे चारित्रमोहका क्षयोपशम होता है । ऊपर गुणस्थानोमे उपशम और क्षयकी मुख्यता है । यद्यपि दशम गुणस्थानमे लोभका उदय है इससे इन भावोंको क्षयोपशमजन्य क्षायोपशमिक ही कहना चाहिये । औपशमिक भाव तो एकादश गुणस्थानमे होता है । क्षायिक भाव द्वादश गुणस्थानमे होता है, किन्तु करणानुयोगवालोने उसकी विवक्षा नहीं की । तत्त्वार्थसारवालोंने उसकी विवक्षा की । अत दोनो ही कथन मान्य है । जैसे पञ्चाध्यायीकारने चतुर्थ गुणस्थानवालोमे ज्ञानचेतना ही का विधान किया है, पञ्चास्तिकायवालोने तेरहवे गुणस्थानमे ज्ञान चेतना स्वीकार की है परन्तु विरोध नहीं, क्योकि सम्यग्दृष्टि जीव के स्वामित्वपना नहीं, यह तो पचाध्यायीवालोका मत है । स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने क्षायोपशमिक भावमे कर्म निमित्त होनेसे स्वीकार नहीं किया । वास्तवमे दोनो ही कथन विवक्षाधीन होनेसे सत्य है । स्वाध्याय ही इस क्षेत्र व कालमे अनुपम सुखका हेतु है । अत ज्ञानकी वृद्धिका कारण शरीरकी रक्षा ज्ञानके व सयमके लिये है । यदि इनमे बाधा आगई तब होगा ही क्या, ऐसा विचार, इनके अनुकूल साधन रखना । हमने १२ मास तक एक स्थानमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है और वह श्री पार्श्वप्रभुके निर्वाणक्षेत्रके अत्यन्त निकट पार्श्वनाथ स्टेशन जिसको ईसरी कहते है । जहाका जल-वायु अति उत्तम है । बाईजीका स्वास्थ्य उत्तम होते ही प्रस्थान करूगा । पर्यायका विश्वास नहीं । कुछ दिन तो शान्तिसे जावे । यद्यपि यह प्रान्त जहा पर श्रीबाबाजीका निवास है, उत्तम है । परन्तु जनससर्ग बाधक है । अपरिचित स्थानमे बाह्य कारणोकी न्यूनता रहती है । यद्यपि अध्यवसानभाव बन्धक है तथापि उनमे निमित्त जो बाह्य वस्तु है वे भी अल्पशक्तिवालोको त्याज्य हैं । अल्पशक्तिसे तात्पर्य चारित्रमोहका जिनके सद्भाव है । तीर्थङ्कर महाराज भी बाह्य पदार्थोको हेय जानकर तथा रागादिकके उत्पादक जानकर त्याग देते है । इसमे अणु मात्र भी सशय नहीं ।

कर्मोदयमे भी तो बाह्य वस्तु निमित्त पडती है । अभी समय नहीं था, इसलिये विशेष नहीं लिख सका । शेष सर्व मण्डलीसे यथायोग्य ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - १३)

श्रीयुक्ता धर्मानुरागिणी पुत्री महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । जगतमे अनन्तानन्त जीव राशि है । उसमे मनुष्य-सख्या बहुत अल्प है । किन्तु यह अल्प होकर भी सब पर्यायोमे मुख्य है ।' इसी पर्यायसे जीव निज शक्तिके विकासका लाभ लेकर अनादि ससारके बन्धनजन्य मार्मिकभेदी दु खोका समूल नाशकर अनन्त सुखोके आधार परमपदकी प्राप्ति करता है। सयम गुणकी पूर्णता इसी पर्यायमे होती है जो कि उक्त परमपदका हेतु है । अतएव जहा तक बने उसी गुणकी रक्षाके अविरुद्ध कार्योको कर अपनी जीवनयात्रा निर्वाह करते हुए निराकुलतापूर्वक इस पर्यायको प्रतिक्षण यापन करना चाहिये । इसीके रक्षण हेतु स्वाध्याय, यजन, पूजन, दानादि क्रियाये है । उक्त गुणके रक्षण बिना, एक अक बिना शून्य मालाकी कुछ गौरवता नहीं । इसके सहित जीवनका व्यय कुछ नहीं । इसके अभावमे कोटि पूर्वकी आयुकी प्राप्ति दृष्टिके बिना बदनकी शोभाके सदृश है । अतएव हे पुत्री ! सतत ज्ञानाभ्यासमे काल यापन करो । इसीमे आपका कल्याण है । शेष यथायोग्य ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५ - १४)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हम श्रीजिनवरके दर्शनके सन्मुख हो गये हैं । आज २ दिन है । जिस दिन दर्शन होगे उस दिनको धन्य समझेगे । आत्मज्ञान शून्य सब प्रकारके व्यापार ऐसे निष्फल है जिस प्रकार नेत्रहीन सुन्दर मुख । यदि हम मानवगण वास्तव तत्त्व पर दृष्टिपात करे तब अनायास ही कल्याणपथ मिल सकता है । यहाँ तो यह मिशाल है । **घडी डूबती है घण्टा पीटा जाता है** । ऐसे ही अपराधी आत्मा है ।

कायको दण्ड दिया जाता है । शान्ति स्वकीय आभ्यन्तरमें है । तीर्थोंमे डोलने फिरनेसे नहीं । पर पदार्थोको निज तत्व मानकर यह सब जगत आपत्तिजालसे वेष्टित हो रहा है। अत अब जहाँतक बने इस बाह्य दृष्टिको त्यागना ही श्रेयोमार्गकी ओर जाना है । जो कार्य किया जावे उसमें हर्ष-विषादकी मात्रा न हो । यही मात्रा ससारकी श्रेणी है । अत इस विषयमे सर्वदा सतर्क रहना ही हमारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिये । दादीजीसे हमारी दर्शनविशुद्धि कहना तथा अब तो सच्ची दृष्टिसे ही काम लो और सब जाल हैं । यह भी कहना ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - १५)

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

मै बरुआसागरसे खजराहाकी वन्दना कर पन्ना आ गया । खजराहामे अपूर्व जिन मन्दिर और प्रतिमाऐ है । परन्तु भग्न बहुत है । इतनी सुन्दर मूर्तिऐ है जो देखकर वीतरागताकी स्मृति होती है । शान्तिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपूर्व है । अस्तु विशेष क्या लिखे ? रागादिकोके सद्भावमे यह सब दृष्टिपथ हो रहा है, सत्य ही है । जो कुछ ससारमे दृश्य पदार्थ हैं वे सब नश्वर है । किन्तु कल्याणपथवालेको यह सत्यता प्रतीत होती है । यदि हमको स्वात्मकल्याण करना है तब इन सब उपद्रवोको पृथक् कर केवल जिस उपायसे बने बुद्धिपूर्वक इन रागादिकोको निर्मूल करने की चेष्टा करना । स्वकीय कर्तव्यपथमे आना चाहिये । केवल बाह्य त्यागकी कोई प्रतिष्ठा नही । ज्ञानकी भी महिमा रागादिकोके अभावमे है । यो तो सभी ज्ञानी और त्यागी है किन्तु सत्यमार्गके अनुयायी, हार्दिक स्नेही बहुत ही अल्प है । यहाँ भी एक कषायकी प्रबलता है । क्या करे ? कौन नही चाहता कि हम ज्ञानी हो परन्तु महिमा उस मोहकी अपरम्पार है । अस्तु इन बातोमे क्या सार है? सब यत्न इसी रागादि मलके पृथक् करनेमे लगाना चाहिये । विशेष विकल्पोमे कभी भी आत्माको उलझाना न चाहिये । जितना प्रयास हो सके शान्तिपूर्वक समय बिताना ही हितमार्गका प्रथम सोपान है । जिस कायके सम्पादन करनेमे आभ्यन्तर क्लेश न हो वही रामबाण औषधि ससार रोगकी है ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(५ - १६)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

हम पत्र दे चुके है । यह पत्र इस अर्थ देता हूँ । अब वैशाख बदि ९ को पत्र दूगा। इस मनुष्यपर्यायकी प्राप्ति दुर्लभ जान समयका दुरुपयोग न करना, क्योकि समयके सदुपयोगसे ही समयकी प्राप्ति होती है । आजतक इस जीवने स्वसमयकी प्राप्तिके लिये परसमयका आलम्बन लेकर ही प्रयत्न किया । प्रयत्न वह सफलीभूत होता है जो यथार्थ हो । आत्मतत्त्वकी यथार्थता इसीमे है कि जो उसमे नैमित्तिक भाव होते है उन्हे सर्वथा निज न मान ले । जैसे मोहज भाव रागादिक है वे आत्मा ही के अस्तित्वमे होते है परन्तु विकार्य है, अत त्याज्य है । जैसे जल अग्निका निमित्त प्राप्तकर उष्ण होता है और वर्तमानमे उष्ण ही है, अत उष्णता त्याज्य ही है, क्योकि उसके स्वरूपकी विघातक है, तथा रागादिक परिणाम आत्माके चारित्र गुणका ही विकार परिणमन है परन्तु आत्माका जो दृष्टा ज्ञाता स्वरूप है उसके घातक है, अत त्याज्य है । जिस समय रागादिक होते है उस कालमे ज्ञान केवल जानन क्रिया नहीं करता, साथमे इष्टानिष्टकी भी कल्पना जानन क्रियामे अनुभव करने लगता है । यद्यपि जानन क्रियामे इष्टानिष्ट कल्पना तद्रूपा नहीं हो जाती है फिर भी अज्ञानसे वैसा भासने लगता है । जैसे रस्सीसे सर्पका बोध होनेसे रस्सी सर्प नहीं हो जाती, ज्ञान ही मे सर्प भासता है । परन्तु उस कालमे भयका होना अनिवार्य हो जाता है । जाग्रतकी कथा तो दूर रहो, स्वाप्निक दशामे भी कल्पित पदार्थोको हम मानकर राग-द्वेषके दशसे नही बच सकते है । कुछ नहीं । इसी तरह इस मिथ्या भावके सहकारसे जो हमारी दशा होती है वह कैसी भयानक दु ख करनेवाली है इसका अनुभव हमे प्रतिक्षण होता है । फिर भी तो चेतते नही । विशेष फिर ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५ - १७)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने बाबाजीका अन्यत्र जानेसे निषेध करना । वहाँ उनका धर्मध्यान उत्तम होता है तथा साधन भी उत्तम है । जो स्वाध्याय करो, मननपूर्वक करना । यह एक ऐसा तप है जो स्वात्मोपलब्धिमे विशेष साधक है । इसके द्वारा ही धर्मध्यान

शुक्लध्यान होते है, यह अपूर्व कारण है । दादीजी से धर्मप्रेम कहना । मैं एकबार वैशाखमे बाबाजीका दर्शन करूँगा ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(५ - १८)

श्रीयुत महाशया देवी महादेवी, योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने । ससारमे जो ज्ञानकी महत्ता है वह मोहके अभावमें है । अतएव उस ज्ञानसे भी जो वास्तविक पदार्थको प्रतिपादित करता है उसको श्रवण कर जो श्रोता मोहका अभाव करनेकी चेष्टा करता है वह मोक्षमार्गका पात्र हो सकता है। वक्ताको आशिक भी उस मार्गका लाभ नहीं हो सकता यदि वह मोहके पृथक् करनेका प्रयत्न न करे । ज्ञान समान अन्य इस आत्माका हितक नहीं वह यदि मोहके बिना हो । मोही जीवका ज्ञान बधका ही कारण है । सर्पको दुग्धपान करानेसे निर्विषता न होगी । मै आठ दिन बाद गिरिराज पहुँच जाऊँगा । पत्र वहीं देना ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - १९)

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपके पत्रसे कुछ अशातिकासा आभास हुआ । बेटी ! ससारमे कभी भी शान्ति नहीं । केवल हमारी दृष्टि बाह्य पदार्थोमे स्वकी शान्ति परिणति उदयमे है । हम इन बाह्य वस्तुओके ग्रहणादि व्यापारमे सुख खोज रहे है । जो सर्वथा असम्भव है । हमारी अनादि कालसे परिणति मिथ्यादर्शनके ससर्गसे कलुषित हो रही है । जो हमे क्षणमात्र भी आत्मसुखका स्पर्श तक नहीं होने देती । वही महापुरुष और पुण्यशाली जीव है जिसने अनेक प्रकार विरुद्ध करणोके समागम होनेपर अपने शुचि चिद्रूपको अशुचितासे रक्षित रखा । आपका ज्ञान विशुद्ध है । अत सब प्रकारके विकल्प त्यागकर स्वकीय श्रेयोमार्गकी प्राप्तिके उपायमे ही लगा देना । नेत्रोकी कमजोरीका मूल कारण शारीरिक शक्तिकी न्यूनता है, अत धर्मसाधनका नोकर्म शरीरको जान सर्वथा उपेक्षा करना अनुचित है । व्रतादिक करनेका अभिप्राय कषाय कृष करना है । ऐसी

कृशता किस कामकी जो स्वाध्यायादि कार्योंमे बाधक हो । उत्सर्ग और अपवादमे मैत्रीभाव रखनेमे ज्ञानी जीवोकी मूल चेष्टा रहती है । विशेष क्या लिखे ? हम तो तुम्हे बाईजीके तुल्य समझते है । अपनी मा और भावीजीसे मेरी दर्शनविशुद्धि कहना ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २०)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आपका ध्यान निराकुलतापूर्वक होता है । इस प्राणीको मोहोदयमे शान्ति नही आती और यह उपाय भी मोहके दूर होनेके नहीं करता । केवल बाह्य कारणोमे निरन्तर शुभोपयोगके सग्रह करनेमे अपने समयका उपयोग कर अपनेको मोक्षमार्गी मान लेता है । जो पदार्थ है, चाहे शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो उनसे हित और अहितकी कल्पना करना सुसगत नहीं । कुम्भकार मृत्तिकाद्वारा कलश पर्यायकी उत्पत्तिमे निमित्त होता है। एतावता कलशरूप नहीं हो जाता । यहॉ पर कुम्भकारका जो दृष्टान्त है सो उसमे तो मोह और योग द्वारा आत्माकी परिणति होती है, अत वह निमित्तकर्ता भी बन सकता है । परन्तु भगवान् अर्हन्त और सिद्ध तो इस प्रकारके भी निमित्त कर्त्ता नही । वे तो आकाशादिकी तरह उदासीन हेतु है । उचित तो यह है, जितना पुरुषार्थ बने रागादिकके पृथक् करनेमे किया जावे । शुभोपयोग सम्यग्ज्ञानीको इष्ट नही । जब शुभोपयोग इष्ट नहीं अशुभोपयोगकी कथा तो दूर रही ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

(५ - २१)

श्रीयुक्ता देवीजी, दर्शनविशुद्धि

पत्र देरसे मिला । इससे समय लिखनेको नहीं मिला, क्योकि मै पूर्णिमाको ही विशेष ऊहापोह करके लिखता हूँ । मेरी दृष्टिमे तो यही आता है जो पराधीनताका त्याग ही स्वाधीन सुधका मूल मन्त्र है । पुस्तकसे जो ज्ञान होता है वह यदि अनुभवमे न आवे तब कार्यकारी नहीं । सब प्रमाणोके ऊपर इसकी बलबत्ता है । श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी यही आज्ञा है जो कुछ भी जानो उसे अनुभवसे प्रमाण करो । जब

तक अनुभवमे न आवे तब तक वह पूर्ण नहीं । सर्वसे दर्शनविशुद्धि ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - २२)

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

विशेष बात यह है कि शान्तिका उपाय प्राय प्रत्येक प्राणी चाहता है, परन्तु मोह वशीभूत होकर विरुद्ध उपाय करता है । अत शान्तिकी शीतल छायाके विरुद्ध रागादिक तापकी उष्णता ही इसे निरन्तर आकुलित बनाए रखती है । इससे बचनेका यही मूल उपाय है जो तात्त्विक शान्तिका कारण अन्यत्र न खोजे । जितने भी पर पदार्थ हैं चाहे अशुद्ध हो, जबतक हमारे उपयोगमे उनसे सुख प्राप्तिकी आशा है । हमको कभी भी सुख नहीं हो सकता । मेरा तो दृढ विश्वास है जैसे बाह्य सुखमे रूपादिक विषय नियमरूप कारण नहीं वैसे आभ्यन्तर सुखमे शुद्ध पदार्थ भी नियमरूप हेतु नहीं । जब ऐसी वस्तुकी स्थिति है तब हमे अपने ही अन्त स्थलमे अपनी शान्तिको देखकर परपदार्थमे निजत्वका त्याग कर श्रेयोमार्गकी प्राप्तिका मात्र होना चाहिये ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - २३)

श्रीयुक्ता कल्याणमार्गरत महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । बाईजीके अन्त करणसे आपके प्रति निरन्तर धर्मानुराग रहता है । बडी चाहसे आपका पत्र सुनती है । उनका स्वास्थ्य १२ माससे ठीक नहीं । १५ दिन बाद ज्वर आजाता है । परन्तु धर्ममे प्रति दिन दृढतम परिणाम होते जाते हैं । निरन्तर समाधिमरणका पाठ चिन्तवन करती रहती हैं । आपके प्रति उनका कहना है कि बेटी **(शक्तितस्त्यागतपसी)** इस वाक्यका निरन्तर उपयोग रखना । ऐसा तप व संयम न करना जिससे सर्वथा निर्बल शरीर हो जावे और न ऐसा पोषण ही करना जो स्वाध्याय क्रियामे बाधा पहुँच जावे । **यथाशक्ति क्रिया करना श्रेयस्कर है ।** तत्त्व श्रद्धानके दृढतम करनेके अर्थ आध्यात्मिक दृष्टि पर निरन्तर अधिकार रखना और अपने कालको निरन्तर जैन धर्मके विचारमे लगाना । जो लडकी पढ़ने आये उन्हें सार्थ पाठ पढ़ाना । यदि ऐसी प्रवृत्ति हमारी बन जावेगी तब अनायास हमारा कल्याण निकट है ।

मेरा भी यही आपके प्रति भाव है कि आपकी आत्मा धर्ममार्गमे तत्पर रहे ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - २४)

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पूज्यताका कारण वास्तविक गुणपरिणति है । जिसमे वह है पूज्यता व सुखका आवास है । हमारा निरन्तर यही परिणाम रहता है कि बाबाजीके समागममे काल यापन करे, किन्तु कुछ ऐसा कर्मविपाक है जो मनोनीत नही होने देता । अस्तु, मेरी सम्मतिके अनुकूल बाबाजीको जितना उत्तम स्थान खतौली है, अन्य नही । इतर स्थानोमे स्वाध्यायप्रेमी नहीं । प्राय गल्पप्रिय है । यदि उनको पत्र डालो तब मेरा अभिप्राय अवश्य लिख देना और जितना बने सुबोधपूर्वक स्वाध्याय करना । **स्वाध्याय तप है और संवर निर्जराका कारण है । आत्मज्ञानके सम्मुख करनेवाला है ।** एकबार प्रबल आकाक्षा बाबाजीसे मिलनेकी है । ठण्ड जानेके बाद यदि शरीर योग्य रहा तब १५ दिनको आऊँगा ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २५)

श्रीयुक्ता शान्तिमूर्ति महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

कल्याणपथ तो आत्मामे है, किन्तु हमारी दृष्टि उस ओर न जाकर पराश्रित होकर बाह्य पदार्थोके गुणदोष विवेचन मे अपनी सर्व शक्तिका अपव्यय कर चरितार्थ हो जाती है । जहॉतक बने स्वाध्यायका उपयोग यथार्थ वस्तुके परिज्ञानमे ही पर्यवसान न हो जाना चाहिए किन्तु जिनके द्वारा हम अनन्त ससार के बन्धन मे बद्ध है ऐसे मोह रागद्वेषका अभाव करके ही उसे विराम लेना चाहिये । प्रशसासे कुछ स्वात्मोत्कर्ष नहीं। स्वात्मोत्कर्षका मुख्य कारण रागद्वेषकी उपक्षीणता ही है । मुझे एकबार बाबाजीके दर्शनकी बडी इच्छा है । समय पाकर होगा । मेरा स्वास्थ्य भी अब रेलके यातायात योग्य नहीं । केवल एक स्थान पर शान्तिपूर्वक स्वाध्याय करनेके योग्य है । आजकल प्राणियोकी स्थिर प्रकृति नहीं इसीसे विशेष आपत्ति नहीं सह सकते । फिर

भी जिसके आभ्यन्तर उत्तम श्रद्धान् है वह इन विपत्तियोके द्वारा भी विचलित नहीं होता। शेष सबसे धर्मप्रेम ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - २६)

श्रीयुक्ता देवी महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र मिला, समाचार जाने । भाद्र मास सानन्दसे धर्मध्यानमे बीता किन्तु आभ्यन्तर शुद्धिका होना कठिन है । जिन जीवोने आत्मशुद्धि न की उनका व्रत, तप, सयम सकल निष्फल है । बाह्य क्रिया तो पुद्गलकृत विकार है । अत बाह्य आचरणों पर उतना ही प्रेम रखना चाहिये जो आत्मशुद्धिके साधन हो, क्योकि मतिज्ञानके साधक द्रव्येन्द्रियादिक है । अत इनकी रक्षा करनी इष्ट है । जहाँतक बने आभ्यन्तर परिणामोकी निर्मलता रखना ही अपना ध्येय समझना । आत्माका निज स्वरूप श्री चेतनारूप है । उसकी व्यक्ति ज्ञान-दर्शन रूपमे प्रगट अनुभवमे आती है । परन्तु अनादि परद्रव्य सयोगसे नाना परिणमन द्वारा विकृतावस्था उसकी हो रही है । परन्तु इससे ऐसा न समझना कि स्वरूप प्रगट होना असभव है । असभव तो तब होता जब उसका लोप हो जाता, सो तो है नही । असली स्वभावका प्रगट होना कठिन है । विस्मृत हस्तगत रत्नके समान है । जिस तरह कोई अपनी वस्तु भूल जाता है और यत्र तत्र खोजता है । बस इस न्यायसे यह जीवात्मा अपने असली निजरूपको भूल कर परपदार्थोमे हेरता है । अपनेको आप नही जानता । मोह निमित्त प्रबल हो रहा है । उसमे फसकर सुखके कारणोको दु ख प्रतीत करता है, दु खके कारणोमे सुख मान रहा है । इस विपरीत भावसे निज निधि भूल रहा है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २७)

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । इस ससार महाटवीमे मोह कर्म द्वारा सम्पादित चतुर्गति भ्रमण द्वारा यह जीव कभी भी स्वास्थ्य लाभका भागी न हुआ । सुखका मूल

कारण केवल मोहकर्मका नाश है । वह सामान्यत मोह, राग, द्वेष तीन रूपमे विभाजित है, जिसमे प्रथम भेदके आधीन इतर दोकी सत्ता है । जिसको कुछ भी ज्ञान है वह शीघ्र ही है इसको कह देता है, परन्तु आभ्यन्तरसे उसकी विकृतिको न होने दे यही परम दुर्लभ है । अतएव जहाँ तक बने स्वाध्यायमे ही अपनी प्रवृत्ति रखना । यथाशक्ति तप और त्याग करना । तथा समय पाकर अपनी पुत्री, बहन, माताओको धर्मध्यानमे लगाना । यही सब उपाय मोहके दूर करनेके है ।

जगतकी विचित्रता ही हमको जगतसे उपरत करानेकी जननी है । हम जन्मान्तरोके प्रबल विरुद्ध अभिप्रायोसे नाना प्रकारके कर्मबन्धसे जकडे हुए है । निज हित नहीं सूझता । जिसने इस पराधीनताका कारण मोह बधन ढीला कर दिया उसने सब कुछ किया । इससे ससारमे यदि न रुलना हो तो इसे छोड दो । यही मोक्षमार्ग है । अब बाईजी अच्छी है । पुत्री ! तुम भी वैद्यकी अनुकूल दवा सेवनकर नीरोगताका लाभ करना, क्योकि **शरीर निरोगता ही धर्मसाधनमे मुख्य हेतु है** । बाबाजी महाराजका हमारे पास भी १५ दिनसे पत्र नहीं आया है । शायद भाद्रपद मासमे पत्र देना छोड दिया हो ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २८)

श्रीयुक्ता महाशया देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । हम लोगोका कर्तव्य ही है कि उनकी वैयावृत्त करे। उनको दमाकी बीमारी होगई है । यदि योग्य औषधि मिल जावे तब उनका स्वास्थ्य कुछ दिनके लिये सुधर जावे । इतनी बीमारी होते ही उनका धैर्य प्रशसनीय है । हा शब्दका उच्चारण नहीं । धर्ममे पूर्ण दृढता है । एक मासको सिवाय वस्त्रके परिग्रहका त्याग कर दिया है । किन्तु मुझे विश्वास है, उस रोगका प्रतिकार नहीं, फिर जो होगा समाचार दूगा । रोगादि दु खजनक नहीं, रागादिक दु खदायी हैं । बाबाजी महाराजको यह चाहिये कि खतौली छोडकर अन्यत्र न जावे । मैने यह विचार कर लिया है कि जबाबी कार्ड या टिकट आवे तभी उत्तर देना । यह नियम बाबाजीके वास्ते नहीं । स्वाध्याय दृढाध्यवसायसे करना ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - २९)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

श्री जिनेन्द्रके आगमका अहर्निश अभ्यास करना । यही ससार महार्णवसे पार करनेको नौका सदृश है, कषाय अटवी दग्ध करनेको दावानल है, स्वानुभव समुद्रकी वृद्धिके अर्थ पौर्णामासीका चन्द्र है, भव्य कमल विकासनेको भानु है, पाप उलूक छिपानेको भी वही है । जहातक बने यथायोग्य शरीरकी रक्षा करते हुए धर्मकी रक्षा करना । बाईजीका धर्मस्नेह । बाबाजी महाराजका पता देना । वे जहा चातुर्मास्य करेगे वहीं मै रहूँगा ।

आ. शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ३०)

श्रीदेवीको दर्शनविशुद्धि

बाह्य निमित्त कोई भी ऐसे प्रबल नहीं जो बलात्कार परिणाम को अन्यथा कर देवें । अभी अन्तरङ्गसे कषायकी उपशमता नहीं हुई । इसीसे यह सर्व विपदा है । आकुलता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । अपना स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा है । यही निरन्तर भावना और तद्रूप रहनेकी चेष्टा रखना । यदि कर्मोदय प्रबल आया तब शान्तिभावसे सहना । यही कर्मको नाश करनेका प्रबल शस्त्र है ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ३१)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

श्रीयुत महाराजसे प्रणाम कहना । जगतका मूल स्नेह है । परन्तु धार्मिक पुरुषोका स्नेह जगतके उच्छेदका कारण है । यदि राग बुरा है तो रागमें राग न करो । रागका उदय दशम गुणस्थान पर्यन्त होता है । अर्हद्भक्ति भी ससार उच्छित्तिका हेतु इसीसे मानी गई है, क्योकि गुणोमे अनुराग ही भक्ति है । मेरा तो यह विचार है - परकी भक्ति औपचारिक है । परमार्थसे आत्माका शुद्ध रूप ही ससारका घातक है । देवीजी, मेरा बाबाजीसे आबाल कालसे स्नेह है और यदि इनसे स्नेह छूट गया, तब दैगम्बर-

पद होना दुर्लभ नहीं । परन्तु यह होना अशक्य है । आप जो स्वाध्याय करे, अध्यात्म मुख्यताके हेतु ही करे । यदि अवकाश पुण्योदयसे मिला, तब बाबाजीका एकबार दर्शन अवश्य करूँगा । शेष सबसे दर्शनविशुद्धि ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ३२)

श्रीयुक्ता देवी महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बाबाजी महाराज हो तब हमारी धर्म स्नेहपूर्वक इच्छाकार कहना और वहा न होवे तो उनका पता देना । बूढी दादीसे हमारी धर्मस्नेहपूर्वक दर्शनविशुद्धि । और आप पढनेमे काल लगाना तथा थोडा अभ्यास यानी कण्ठ करनेमे समय लगाना । शेष स्वाध्यायमे समय लगाना । यह मनुष्य आयु महान् पुण्यका फल है । सयमका साधन इसी पर्यायमे होता है । सयम निवृत्तिरूप है । निवृत्तिका मुख्य साधन यही शरीर है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ३३)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । निरन्तर जैनधर्मके ग्रन्थोका स्वाध्याय करनेसे चित्तमे अपूर्व शान्ति होती है । शरीरकी रक्षा धर्मसाधनके लिये पापप्रद नहीं । विषयसे निवृत्ति होने पर तत्त्वज्ञानकी निरन्तर भावना ही कुछ कालमे ससार-लतिकाका छेदन कर देती है । केवल देह शोषण मोक्षमार्ग नहीं । अन्तरङ्ग वासना की विशुद्धिसे ही कर्म निर्जीर्ण होते है । किसी पदार्थमे भीतरसे आसक्त नहीं होना चाहिये । अपनी भावना ही आपकी आत्माका सुधार करनेवाली है । जहॉतक बने यही कार्य करनेमे समय बिताना। बाईजीका सस्नेह जैजिनेन्द्र । ऐसा उपाय करना जिससे यह पराधीन पर्याय न पाना पडे । वैसे तो सर्व पर्याय पराधीन है । पर लौकिक दृष्टया यह महती परतन्त्रताकी जननी है । शेष कुशल है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ३४)

श्रीयुक्ता महादेवी सरल परिणामिनीको दर्शनविशुद्धि

इस पर्यायसे जहॉतक बने सयम और स्वाध्यायकी पूर्ण रक्षा करना । ससार-सततिका नाश इसी पद्धतिसे होता है । बाईजीका आशीर्वाद । बेटी फूलदेवी ! तुम सन्तोषपूर्वक स्वाध्याय करो और अपनी विस्मृत निधिको प्राप्त करो । सतोष ही परम सुख है ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(५ - ३५)

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

ससार मे सभी पराधीन है । अतएव उसके नाशका उद्यम जिसने कर लिया वही स्वाधीन और सुखी है । यह जीव जैसे पराधीन है वैसे स्वाधीन भी हो सकता है । यह सब अपनी कर्तव्यताका फल है । जो आत्मा कर्मार्जनकी प्रचुरतासे नरकादि निवासोका अधिपति होता है वही उनका निराकरण कर शिव-नगरीका भूपति भी हो सकता है । इससे कभी भी अपनी आत्माको तुच्छ न समझना । अपना धर्मध्यान साधो । इसीमे कल्याण है ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(५ - ३६)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

तात्त्विक बुद्धिसे कार्य करना । जो भी औदयिक भाव होते हैं वह यदि सम्यग्ज्ञानपूर्वक उनके स्वरूपपर दृष्टि देकर आचरण किये जावे तब क्षायिक भावके तुल्य कार्यकारी हो जाते है । सब तरफ से चित्तवृत्तिको पृथक् करना समुचित है ।

आ. शु. चि
गणेश वर्णी

(५ - ३७)

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । जहाँतक बने परपदार्थसे ममत्व बुद्धि हटाना यही सार है । यद्यपि धार्मिक पुरुषोका स्नेह धर्मसाधक है तथापि अन्तमे हेय ही है । अणुमात्र राग भी बाधक है । बहुत रागकी क्या कथा ? स्वाध्याय ही परम तप है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ३८)

श्री महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया । नहरासे मेरा प्रणाम कहना और वे यदि अन्यत्र गमन कर गये हो तब वहा पर पत्र द्वारा लिख देना । मै श्री नैनागिरि और द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्रोकी वन्दना करता हुआ श्री अतिशय क्षेत्र पपौराकी वन्दनाको आया हूँ । यहाँ पर अगहन बदि २ तक रहूँगा । फिर श्री अतिशय क्षेत्र अहारकी वन्दना कर अगहन बदि १० तक बरुआसागर पहुँचूगा । अभी स्वास्थ्य अच्छा है । किन्तु जिन परिणामोसे स्वात्महित होता है उनका स्पर्श भी अभी तक अन्तस्तलमे नहीं हुआ है । हम लोग केवल निमित्त कारणोकी मुख्यतासे वास्तविक धर्मसे दूर जा रहे हैं । जहा पर मन, वचन, कायके व्यापारका गम्य नहीं वह पद-प्राप्ति आत्मबोधके बिना हो जावे, बुद्धिमे नहीं आता । यह क्रिया दो उभयद्रव्यके सयोगसे उत्पन्न हुई है, कदापि स्वकीय-कल्याणमे सहायक नहीं हो सकती । अतएव औदयिकभाव तो बन्धका कारण है ही । किन्तु क्षयोपशम और उपशमभाव भी कथचित् परद्रव्यके निमित्तसे माने गये है । अत जहातक परपदार्थकी सपर्कता आत्माके साथ रहेगी वहा साक्षात् मोक्षमार्ग प्राप्ति दुर्लभ ही नहीं किन्तु असम्भव है । अत अन्तरङ्गमे अपने ही द्वारा अपने ही अर्थ अपनेको गभीर दृष्टिसे परामर्श करना चाहिये, क्योंकि मोक्षमार्ग एक ही है, नाना नहीं ।

> **"एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्तात्मक:**
> **तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिश ध्यायेच्च त चेतति ।**
> **तस्मिन्नेव निरन्तरं विहरति द्रव्यान्तराण्यस्पृशन्**
> **सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विन्दति ।।"**

मोक्षमार्ग तो दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक ही है, उसीमे स्थिति करो और निरन्तर उसका ध्यान करो, उसीका निरन्तर चिन्तवन करो, उसीमें निरन्तर विहार करो तथा द्रव्यान्तरको स्पर्श न करो। ऐसा जो करता है वही मोक्षमार्ग पाता है। उसका यह अर्थ नहीं कि स्वच्छन्द होकर आत्मद्रव्यसे भ्रष्ट हो जावो। किन्तु अन्तरङ्ग तत्त्वकी यथार्थ प्रतीति करना ही हमारा कर्तव्य है। व्यवहारक्रियामे मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ३९)

श्रीयुक्ता देवी महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। बाबाजी महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है और वह यहासे बनारस जायेगे। ससारमे प्राणीमात्र मोहके वशीभूत होकर चिन्तातुर रहते हैं और मोहमें ऐसा होना स्वाभाविक है। परन्तु महापुरुष वही है जो इस मोहको कृश करनेमे सतर्क रहे। इस मोहने नारायण लक्ष्मणको 'हा राम' भी पूर्ण न कहने दिया और प्राणपखेरू उडाकर ही सतोष न किया। किन्तु आगामी भी जबतक इसका सत्त्व है पिण्ड न छोडेगा। अत जीवन, मरण, लाभ, अलाभमे समता रखना ज्ञानीका कार्य है।

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीय-
कर्म्मोदयान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम् ।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य
कुर्य्यात्पुमान्मरण-जीवित-दुःख-सौख्यम् ।।

अन्यथा कोई भी मनुष्य ससारमे ऐसा नहीं है जो उदयागत कर्मकी वेदनाको पृथक् कर सके। असाताके उदयमे श्रीआदिदेवकी सहायता करनेमे भरतादिसे महाप्रभु समर्थ न हो सके और जब सातोदय आया तब श्री श्रेयासको स्वयमेव दान देनेकी क्रियाका स्वप्नमे प्रतिबोध हुआ। अत. यदि बच्चेकी आयु है तब आप चिन्ता करे या न करे, अनायास बालकको आराम हो जायगा। विशुद्धि परिणाम ही निरोगतामे सहायक होता है, सक्लेश परिणाम तो बाधक कारण ही है। फिर इस ससारमे और क्या रखा है ? कदलीस्तम्भके समान असार है, अत सब विकल्प छोड स्वात्माकी ओर आनेकी चेष्टा करना ही श्रेयोमार्गकी भूमिकामे पदारोहण करना है। आप अब

अपनी माताराम और भाई लक्ष्मणजी और उनकी धर्मपत्नी आदिसे मेरी धर्मवृद्धि कहना और कहना कि बुद्धिका फल आत्महितमे लगाना ही है । यो तो ससारमे अनेक जन्म मरण किये और करने पडेगे । यदि आत्महितमे एकबार भी प्रयत्न कर लिया तब फिर इन अनन्त यातनाओसे अपनेको रक्षित कर सकोगे । अत उपाय करते जाओ परन्तु चिन्ता न करो, जो भविष्य है वह अनिवार्य है । हॉ जिन महापुरुषोने इस मोहमल्ल को विजय कर लिया उनका भविष्य प्राञ्जल प्रभात है । शेष कुशल है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४०)

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

बेटी ! ससार-बन्धन बहुत ही विकट समस्या है । इससे सुलझना अल्प पुण्यसे नही होता । यह जीव यदि अन्त करण स्थिर कर विचार करे और रागादि विभाव परिणामोकी परपरा पर एकबार परामर्श कर उनके पृथक् होनेपर यत्नशील हो तब ऐसी कोई अलौकिक शक्तिका उदय होगा जिससे आगामी उनकी सन्तति इतनी उपक्षीण रूपसे चलेगी जो अल्प कालमे उसका सर्वस्व ही नहीं रहेगा । मोक्षमार्गमे वास्तविक मूल कारण सवर है । इसके बिना निर्जराकी कोई प्रतिष्ठा नही । अत सिद्धान्तवेत्ताओको उचित है जो स्वात्मतत्त्वकी इस सवर तत्त्वसे रक्षा करे । लौकिक प्रयत्न बन्धन ही मे सहायक होते है और यदि यही जीव सम्यक् अभिप्रायसे आशिक भी रागादिकोमे हानि करनेका प्रयत्न करे तब मोक्षमार्गके पथ पर आरूढ हो सकता है। आत्माकी कथनीसे आत्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती । किन्तु उसके अनुकूल प्रवर्तनसे उसका लाभ हो सकता है । इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्ञातादृष्टा है । उसमे जो रागादिकी कलुषता है वही उसके स्वरूपकी नाशक है । उसे न होने दे यही हमारा पुरुषार्थ है, शेष तो विडम्बना है । जब तक यह न होगा तब तक शुभाशुभ क्रियाओसे इसी दु खमय ससारकी वृद्धि होगी और निरन्तर पराधीनताके बन्धनमे पर्यायकी पूर्णता करनी होगी । आप अपने सरल परिणामोका फल प्राप्त करनेमे व्यग्र न होगे । एक समय वह आवेगा जो अनायास ही वह होगा । मेरी तो सम्मति है जो व्यग्रतामे सिवाय आकुलताके और कुछ नहीं होता । मोक्षमार्ग तो शान्तिमे है । रागादिककी कलुषता कितनी दु खदायी है ? अन्य दु ख ही नहीं, आत्मकल्याणकी प्राप्ति तो आपमे है, पर

तो निमित्तमात्र है, अत अपने ही बाधक, साधक कारणोंको देखो । जो बाधक हो उन्हे हटाओ । साधक कारणोको सग्रह करो ।

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ४१)

श्रीयुक्ता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने । ससारमे क्षोभ होता है, हो, इसको औदयिक भाव जानो । इसमे विकल न होना । विकलताकी उत्पत्ति यदि हुई तब सम्यग्ज्ञानी और अनात्मज्ञानीमे क्या अन्तर हुआ ? आप अपनेको कदापि व्यग्र न होने दे । यह बाह्यसयोग जिन भावोसे होता है वह परनिमित्तक होनेसे अनात्मीय है । तब यो जो परवस्तु है उसके अनात्मीय होनेमे कौन-सी शका है । अत आपत्ति और अनुपपत्ति अनात्मीक जान कदापि व्यग्र न होना । अज्ञ मनुष्योके सम्बोधनार्थ नारकादिक दु खोका निरूपण कर आचार्य महाराजने उनके पापसे रक्षित होनेकी चेष्टा की है । तथा स्वर्गसुखका लोभ दिखाकर उन्हे शुभोपयोगमे लगाया है । सम्यग्ज्ञानी शुभ और अशुभ दोनोको अनात्मीय जानता है । अत उसको मोहके सद्भावमे भी केवल पूर्ण स्वरूप प्राप्तिके अर्थ ही अभिप्राय रहता है, अत वह ससारके सभी कार्योमे मध्यस्थ रहता है । माध्यस्थता ही मोक्षमार्गकी प्रथम यात्रा है । इसके बलसे सम्यग्ज्ञानी नाना प्रकारके आरम्भादि अन्य बाह्य अपराध होने पर भी नियतकी निर्मलताके अनन्त ससारके दण्डसे रक्षित रहता है । अपनी आत्माको कदापि तुच्छ न मानना । जब आशिक निर्मल ज्ञान हो गया तब कदापि ससारकी यातनाका पात्र यह आत्मा नहीं हो सकता । अत अपने निर्मल परिणामोके अनुकूल बाह्य परिस्थिति पर स्वामित्वकी कल्पनाका त्याग करना ही ज्ञानीका काम है । चारित्रमोहकी उद्वेगता आत्मगुणकी घातक नहीं, घातका अर्थ यहा विपर्ययता है, न्यूनाधिक नहीं । न्यून होना अन्य बात है, विपर्ययता अन्य वस्तु है । दर्शनमोहके अभावमे आत्मा निरोग हो जाता है, परन्तु अशक्त रहता है । क्रमसे पथ्यादि सेवन कर जैसे अपनी पूर्ण बलिष्ठताका पात्र हो जाता है तद्वत् सम्यग्दृष्टि निरोग होकर क्रमसे श्रद्धाका विषय लाभ करते हुए एक दिन अपने अनन्त सुखादिकका भोक्ता हो जाता है । इसमे अणुमात्र सन्देह नहीं । अत अब

आपने वास्तविक आत्मदृष्टिका लाभ प्राप्त कर लिया तब इन क्षुद्र उपद्रवोसे भयकी आवश्यकता नहीं ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(५- ४२)

श्रीयुक्ता कल्याणमार्गरता महादेवी, योग्य दर्शनविशुद्धि

जितने अश रागादिक न्यून हो वही धर्म है । बाह्य व्यापारसे जितनी उपरमता हो वही रागादिक कृशतामे हेतु है । जितना बाह्य परिग्रह घटे उतनी ही आत्मामे मूर्च्छाके अभावसे शान्ति आती है और जो शान्ति है वही मोक्षमार्गकी अनुभावक है, अत जहाँ तक बने यही पुरुषार्थ कीजिये । सबसे आभ्यन्तर निवृत्ति रखिए, क्योकि तत्त्व निवृत्तिरूप है । यथा - **''निवृत्ति रूप यतस्तवत्त्वं''** । स्वाध्यायको आचार्य महाराजने अन्तरङ्ग तपमे गिना है । और भी कुन्दकुन्द स्वामीने आगमज्ञान ही त्यागियोके लिए मुख्य बताया है । और आगमज्ञानका मुख्य फल भेदज्ञान है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४३)

श्रीयुक्ता देवीजी, दर्शनविशुद्धि

जहाँ तक बने स्वाध्यायमे काल बिताओ । कोई किसीका हितकर्ता नहीं । आत्मपरिणामकी निर्मलता ही सुखका मूल कारण है । वह वस्तु किसीके द्वारा नहीं मिलती । उसका कारण आप ही है । तुम्हारी निर्मलता ही ससारसे पार कर देगी ।

आ. शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४४)

श्रीयुक्ता महादेवीजी योग्य, दर्शनविशुद्धि

आपने दशधा धर्मका पालन सम्यकरीतिसे किया होगा । हमने भी यथाशक्ति साधन कर पर्व निमित्तक अपने जन्मको सफल बनानेका प्रयत्न किया । यह

पर्वके अनन्तर लिखनेकी पद्धति है । जैसे छोटी लडकियोमें गुड़िया खेलनेकी पद्धति है। धर्म वस्तु तो निवृत्तिरूप है । प्रवृत्ति द्वारा तो उसका यथायोग्य कहीं आशिक और कहीं पूर्णरूपसे घात ही है । यदि ऐसा न होता तो महाव्रती महर्षिजी कि सागोपाग महाव्रत पालन करते है उनके चारित्रको 'प्रमत्तचारित्र' शब्दसे न कहा जाता । प्रथम चारित्र करणानुयोगमे कहा है । अथ च, दैवात् प्रवृत्ति-मार्गकी एकान्तसे मुख्यता हो जावे तब चारित्रका घातक तो निर्विवाद ही है । सम्यग्दर्शनका घात भी दुर्निवार है ।

आजकलका वातावरण ऐसा प्रबल है कि निश्चय-धर्मके विवेचकोको 'धर्मद्रोही' शब्दसे अलकृत करता है और जो बडे बडे दिग्गज विद्वान् भाषाकार हो गये है उन्हे मनमाने शब्दो द्वारा यद्वा तद्वा कहकर अपनेको धन्य समझता है । ऐसे वातावरणमे रहकर कुशलमार्ग अति दुर्लभ है । आजकल तो यह सिद्धान्त-सा हो गया है कि शुभात्मक प्रवृत्ति ही गृहस्थोके लिए कल्याणका मार्ग है । उन्हे निश्चय-धर्म मनन करनेका कोई अधिकार नहीं । इन जीवोके शुद्धोपयोग तो दूर रहो इनकी अहम्मन्यताने इनके शुभोपयोगको भी कलकित कर रखा है । अत जहा तक बने इन व्यवहाराभास-विषयक चर्चा करनेवालोकी सगति छोडना ही श्रेयस्कर है । इनका समागम छोडना तो उचित है ही किन्तु जो एकान्तसे निश्चय-धर्मकी मुख्यता कर अपनेको मोक्षमार्गका पथिक मान स्वेच्छाचार-पूर्वक प्रवृत्ति करनेसे निर्भय है उनका भी सम्पर्क त्यागना आत्महितका साधक है । शुभोपयोगके त्यागनेसे शुद्धोपयोग नहीं होता, किन्तु शुभोपयोगमे जो मोक्षमार्गकी कल्पना कर रखी है, उसके त्याग और राग-द्वेषकी निवृत्तिसे शुद्धोपयोग होता है और यही परिणाम मोक्षमार्गका साधक है । इसके विपरीत कषायसे हम ससार ही के पात्र होगे । अत इस पवित्र पर्वमे अविरुद्ध निवृत्ति-मार्गकी चर्चा करनेका हमारा ध्येय ही हमे श्रेयोमार्गका पथिक बनायेगा । पर्व तो बहुत हैं, परन्तु यह पर्व भगवानके पञ्चकल्याणकोंमे तपकल्याणकी तरह कुछ विशेषता रखता है । जैसे अष्टाह्निका पर्वमे पूजनकी विशेषता है और षोडशकारणव्रतमे उपवासोकी मुख्यता है । परन्तु इस वर्षमे क्रोधादि कषायोंपर, जो कि परमार्थ-पथके घातक तथा आत्माके शत्रु हैं, विजय पाने की विशेषता है । इसकी मुख्यताका स्वाद तप-कल्याणकके स्वादका आनन्द लेनेवाले लौकान्तिक देव ऋषियोंकी तरह विरलोको ही आता है । इसी पर्वके अन्तर्गत आकिञ्चन-धर्मके दिनसे रत्नत्रयका उदय होता है जो रत्नत्रय साक्षात् मोक्षमार्ग है । इस पर्वमें यदि शान्ति न आई तो अन्यमे आना कठिन ही है । अत जिन्होने अपने क्रोधादि कषायोंको इन दिवसोमे कृष किया वे ही धन्य है । अन्यथा-

कहाँ गये थे ? दिल्ली ।

कितने दिन रहे ? बारह वर्ष ।

क्या किया ? भाड झोंका ।

क्या खाया ? चने ।

यही सार रहा । अस्तु इस धर्मकी मीमासा तो वही कर सकता है जिसके इसका उदय हुआ हो । इस धर्मका रूप 'राजवार्तिक' से जानना और इतना अनुभवसे जाना जा सकता है जो जिस समय हमारा क्रोध स्वकीय कार्य करके खिर जाता है उस समय हमे जो शान्ति मिलती है वही क्षमा है और वही उसके अभावकी सिद्धि है । परन्तु जो क्रोधके कार्य द्वारा सुख मान रहे है उनके लिए इस गूढतत्त्वका रहस्य समझना कठिन है।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४५)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

आत्मा एक ऐसा पदार्थ है जो परके सम्बन्धसे 'ससारी' और परके सम्बन्धसे रहित 'मुक्त' ऐसे दो प्रकारके भावको प्राप्त हो जाता है । परका सम्बन्ध करनेवाले और न करनेवाले हम ही है । अनादिकालसे विभाव-शक्तिके विचित्र परिणमनसे हम नाना पर्यायोमे भ्रमण करते हुए स्वय नाना प्रकारके दु खके पात्र हो रहे है । जिस समय हम ज्ञायकभावमे होनेवाले विकृत भावकी कर्तव्यताको जानकर उसे पृथक् करनेका भाव करेगे उसी क्षण शान्ति-मार्गके पथपर पहुँच जावेगे । अत इस पर्यायमे हम इतना ही कर सकते है कि विकारभावको जानकर उससे तटस्थ हो जावे या चरणानुयोगकी पद्धतिसे उसके जो बाह्य कारण है उन्हे यथाशक्ति एकदेश (आशिक) त्याग और सर्वदेश (सर्वथा या पूर्णत) त्याग करनेका प्रयत्न करे । अन्तरङ्गसे बुद्धिपूर्वक त्याग करे । करणानुयोगके अनुसार त्यागकी विधि नहीं है । बुद्धिपूर्वक पर-पदार्थोसे ममताका त्याग ही हो सकता है, क्योकि वही अपनी परणतिकी मलिनताका मूल है । पर-पदार्थोको मलिनताका कारण मानना औपचारिक है । यही बात श्री 'प्रवचनसार' (ज्ञेय तत्त्वाधिकार गाथा ९६) मे स्वामी कुन्दकुन्दने बहुत स्पष्ट रूपसे दर्शाई है -

''सप्पदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरायदोसेहिं ।
कम्मरजेहि सिलिट्ठी बधो त्ति परूविदो समये ।।''

अर्थात् - ससारी जीव लोकमात्र असख्यात प्रदेशवाला होनेसे जब मोह, राग और द्वेषसे कषायवाला होता है । उसी कालमे कर्मधूलिरूप ज्ञानावरणादि कर्मोंसे श्लिष्ट (सम्बन्धित) होता है । इसीका नाम बन्ध है । अब यहॉ पर देखना है कि परमार्थिक बन्ध तो आत्मामे ही हुआ और यही जीव-बन्ध है और यही आकुलताका जनक है । कर्मवर्गणारूप बन्ध तो व्यवहार-बन्ध है । इससे हमारी कौनसी क्षति हुई । वस्तुस्थिति भी ऐसी है कि जिस समय आत्माके अन्तरङ्गसे मोह-रूप पिशाच निकल जाता है उस कालमें यह ज्ञानावरणादि द्रव्य-बन्ध रहते हुए भी आत्मामे न तो आकुलताका जनक है और न बन्धका कारण है । इनके उदयसे जो भाव होता है वह भी आत्माकी क्षतिका कारण नही, यह तो सम्पूर्ण मोहके नाशपर निर्भर है, किन्तु एक दर्शनमोहके नाश होनेपर भी चारित्रमोहकी दशा स्वामी-हीन कुत्ताकी तरह है - भोकता है परन्तु काटनेमे समर्थ नहीं । अत भाव-बन्ध ही निश्चयसे आत्मामे आपत्तिका कारण है । उसीका निपात करनेकी चेष्टा करो । इसपर - श्रीस्वामीजीकी गाथा है -

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयेण निद्दिट्ठो ।
अरहंतेहिं जदीणं ववहारो अण्णहा भणिदो ।।

अर्थात् - अरहन्त भगवानके द्वारा मुनीश्वरो और जीवोको निश्चयनयके द्वारा बन्धका सक्षेप बताया है । इस निश्चयनयसे भिन्न एक क्षेत्रावगाहरूप जो द्रव्य-बन्ध है वह व्यवहार है । आत्माका जो राग-परिणाम है वही कर्म है और इस परिणामका आत्मा कर्ता है और यही परिणाम पुण्य और पापका जनक होनेसे द्वैविध्यको धारण करता है । इस अपने निजपरिणामका ही आत्मा कर्ता है, उपादाता (ग्रहणकर्ता) है और त्यागकर्ता भी है । यही शुद्ध (केवल) द्रव्यको निरूपण करनेवाला निश्चयनय है। 'शुद्ध' पदका अर्थ यहॉ केवल आत्मा लेना । और जो पुद्गल-परिणाम आत्माका कर्म है वह भी पुण्य-पापरूपसे दो तरहका है । इस पुद्गल-परिणामका आत्मा कर्ता है उपादाता (ग्रहणकर्ता) और त्यागकर्ता है यह अशुद्ध द्रव्य निरूपणात्मक व्यवहारनय है। ये दोनो कथन बन सकते है, क्योकि द्रव्य शुद्ध और अशुद्धपनेकर प्रतीतिका विषय है । किन्तु यहॉपर निश्चयनय ही साधकतम होनेसे उपादेय है । जब हम निश्चयसे अपने आत्मामे रागादिकको जानेगे, तभी तो उस दोषको दूरकर निर्मल होनेका प्रयत्न

करेगे । पुद्गलके ज्ञानावरणादि पुद्गलकी पर्याय है । उनका परिणमन पुद्गलमे हो रहा है । उसके न तो हम कर्ता है, न गृहीता है और न त्यागनेवाले हैं । ऐसी वस्तुस्थिति जानकर भी जो देह-द्रविण आदिमे (देह और धन-सम्पत्ति आदिमे) ममत्वको नहीं त्यागते, वे जीव उन्मार्गगामी बाह्य त्याग करके भी सुखी नहीं । दूर करनेका मार्ग दिखानेवाला और कोई नहीं अपनी पवित्रता ही है अन्य तो निमित्त है । पदसे अधिक मूर्च्छाका त्याग होना असम्भव है । श्रद्धामे सम्यग्दृष्टि आत्मासे अतिरिक्त पदार्थोसे विरक्त है, परन्तु प्रवृत्ति तो पर्यायके अनुकूल ही होगी । अविरत और सयतकी श्रद्धामे अन्तर न होनेपर भी प्रवृत्तिमे महान् अन्तर है । इसका यह तात्पर्य नही कि अपने दोषोको दूर न करना चाहिये । दूर करनेमे ही कल्याण-मार्गकी निर्मलता है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४६)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

स्वाध्यायका मुख्य फल तत्त्वज्ञानपूर्वक निर्जरा है, क्योकि यह तप है और इसीसे इसका अन्तरङ्ग तपमे समावेश है । परन्तु आज कलके लोग जितना महत्त्व उपवासादि तपोको देते है उतना इसे नहीं देते । इसका मूल कारण लोगोकी बहिर्दृष्टि है । लोगोकी जाने दो, हम स्वय उसे महत्व नहीं देते । उपवासके दिन समझते है कि आज हमसे अनुचित प्रवृत्ति न हो जावे । ऐसा ध्यान बहुत लोगोका रहता है । परन्तु स्वाध्याय-तपके अवसरमे जो प्रति दिनका कार्य है, यह नहीं रहता कि यह कार्य बहुत उच्चतम है। इस दिन जितनी निर्मलता हो सके करना चाहिये । ध्यानको छोडकर इससे उत्तम अन्य तप नहीं । परन्तु हमारी दृष्टि केवल स्वाध्यायसे ज्ञानार्जनकी रहती है, तपकी नहीं। हमारी तो यह श्रद्धा है कि यह तप उन्हींके हो सकता है जिनके कषायोका क्षयोपशम है क्योकि बन्धका कारण कषाय है, अत जबतक उसका क्षयोपशम न हो उस जीवके स्वाध्याय नहीं हो सकता, ज्ञानार्जन हो सकता है और आज तो उसकी रूढि पन्ना पलटनेमे ही रह गई है ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ४७)

श्री देवीजी महादेवीजी, इच्छाकार

ससारमे प्राणीमात्रकी अनादिसे यह प्रकृति हो गई है कि परके सम्बन्धसे अपना जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, मोक्षमार्ग-ससारमार्ग आदि मान रहा है । वास्तवमे द्रव्योके परिणमन स्वाधीन है ।

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंक्रंतो कह तं परिणामए दव्व ।।

(समयसार, गाथा १०३)

अर्थात् जो जिस अपने द्रव्य या गुणमे रहता है वह अन्य द्रव्य या गुणमे सक्रमण नहीं होता । जब अन्यमे सक्रमण नहीं करता, तब कैसे अन्यको परिणमन कर सकता है ? परन्तु हमारी दृष्टि ऐसी हो गई है कि निरन्तर अन्य निमित्त ही पर अपना भला-बुरा समझ रही है । अब यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'क्या निमित्त कोई वस्तु नही ?' सो नहीं। निमित्त तो निमित्त ही है । परन्तु कई निमित्त तो ऐसे है जिनके बिना कार्य नहीं होता । जैसे कुम्भकारके बिना घट नहीं बन सकता । सहनन और चतुर्थ काल आदि ऐसे निमित्त हैं कि उनके बिना मोक्षके साधनकी पूर्ति नहीं होती । किन्तु अन्तरङ्ग कारणके बिना सर्व ही निमित्त अनुपयोगी है । अत हमे अपनी आभ्यन्तर निर्मलताकी आवश्यकता है । उसमे हमारी ही पुरुषार्थता उपयोगिनी है । निरन्तर यह अभ्यास कार्यकारी है । जो हमारे आत्मामे विकृत भाव होते है उनका ही फल हमारी यह ससार-यातना है । वह विकृति दो विभागोमे परिणत हो जाती है - एक तो शुभ और दूसरी अशुभ । यही ससारका सार है । केवल शुभ-अशुभ भाव ही नहीं, किन्तु उसके आभ्यन्तरमे जो अहकारकी मात्रा है वही विष है । यदि वह विष दूर कर दिया जावे तब अनायास ससारकी जडका विध्वस हो सकता है । उसको जिस महापुरुषने जीत लिया वह इस ससारसे पार हो गया । यदि अह-बुद्धि मिट जावे तब ममत्व-बुद्धि हटनेमे क्या विलम्ब है ? लोकमें यही व्यवहार हो रहा है कि 'मैने यह किया ।' ऐसे कर्तृत्वमे अहबुद्धिका ही तो भाव है । अथवा 'मैने पराया भला या बुरा किया ।' इसके गर्भमें भी वही अह-बुद्धिका प्रसार है । यह सब अनादि मोहका विलास है । इसके अन्दर ही सम्पूर्ण विश्वका बीज है इसके पृथक् करनेके लिए ही और इसी स्वत्वमे यह द्वादशांगकी रचना हुई । इसके अभाव होनेपर न तो ससार है और न ससारके उद्धारकी

वासना । हे आत्मन् ! एक बार तो अपनी असलियतपर दृष्टि दो । देते ही यह सब नकली स्वाग ऐसे विलय हो जायँगे जैसे सूर्योदयमे अन्धकार । 'मै' 'मै' करती हुई बेचारी बकरी वधावस्थाको प्राप्त होती है और मैना राजाओके करोसे पाली जाती है । अत , यह परसे जन्य मोह आत्म-घातक है । वास्तवमे अनन्त ससारके बीजभूत अहभावका त्यागकर इसके विरुद्ध भावनाका आश्रय लेकर इसके हटानेका प्रयास ही मोक्षका बीज है । बाबाजीसे यह कह देना कि अब तो आपके धार्मिक परिणामोकी निर्मलताके अर्थ एक स्थान ही उपयुक्त होगा । भ्रमण करनेमे लाभ नहीं । परन्तु वे महापुरुष है, कौन कहे ?

आ शु. चि.
गणेश वर्णी

(५ - ४८)

श्रीमहादेवीजी, दर्शनविशुद्धि

कल्याणका पात्र वही होता है जो विवेकसे काम लेता है । देखो, अविरत-गुणस्थानवाला असयमी और मिथ्या-गुणस्थान वाला सयमी इन दोनोमे यदि बाह्य दृष्टिसे विचार किया जाय तब अन्यत् भेद प्रतीत हो रहा है । एक तो साक्षात् मोक्ष-लिङ्ग को धारण किये हुए है और एक रणक्षेत्रमे कटिबद्ध हो रहा है । फिर भी एक मोक्षमार्गके सम्मुख है और एक मोक्षमार्ग को जानता ही नही । सम्मुख होना तो दूर रहो, यहाँपर केवल भेद-ज्ञानकी ही महिमा है । अत जहाँ तक बने, बाह्य क्रियाको आचरण करते हुए आभ्यन्तर दृष्टिकी ओर लक्ष्य रखना ही इस पर्यायका पुरुषार्थ है । निरन्तर लक्ष्य अपनी परिणतिके ऊपर रहना चाहिये, तब बाह्य-पदार्थोसे विमुखता आवेगी, स्वयमेव अन्तरदृष्टि उदयमे आवेगी, क्योकि विभाव पर्यायके सद्भावमे स्वभाव परिणमन नहीं हो सकता । पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक होता है । और बुद्धि क्या है ? हमारा अभिप्राय ही तो है । सम्यग्दृष्टि जो भी शुभ-अशुभ व्यापार है उन्हे वह अभिप्रायसे नहीं करना चाहता, करने पडते हैं । द्रव्यालिङ्गी शुभ-परिणामोका अभिप्रायसे कर्ता बनके कर्ता है, क्योकि आत्म द्रव्यका वास्तव स्वरूप ज्ञाता-द्रष्टा है । उसके साथ अनादिकालीन कर्मोका सम्बन्ध है जिससे उसकी योग-शक्ति और विभाव-शक्ति उसे विकृतरूप परिणमन करा रही है । इसमे विभावशक्ति द्वारा आत्मामे रागादि विभाव भाव होते है जो कि ससारके मूल कारण है । योगशक्ति उतनी घातक

नहीं, वह केवल परिस्पन्द करती है । यदि रागादि कलुषता चली जाय तब वह स्वच्छतामे उपद्रव नहीं कर सकती, और उस बन्धको, जिसमे स्थिति और अनुभाग होता है, नहीं कर सकती । अत पुरुषार्थी वही है जिसने रागादिकके अभावके लिये विवेक उत्पन्न कर लिया है । यह भेद-ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और इसीके बलसे ही आत्माके वह निर्मल परिणाम होते हैं जो सम्यग्दर्शनके उत्पादक हैं । उन भावोकी महिमा कारणानुयोगसे जानो । जो भाव सम्यग्दर्शनके उत्पादक है, उनके सदृश अनन्त ससारके घातक अन्य भाव नहीं है । यदि एक बार ही वह हो जावे तब अधिक ससार नही रहता ।

आ शु चि.
गणेश वर्णी

(५ - ४९)

श्रीयुक्ता महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

माता-पिताने हमारा महान् उपकार किया जो अनेक विघ्न बाधाओंसे सुरक्षित कर इस योग्य बना दिया कि हम चाहे तो अब आशिक मोक्षमार्गके पात्र हो सकते है । बाबाजी महाराज का आपके ऊपर उससे भी अधिक उपकार है जो उस उपकार से आपके पवित्र हृदयमे जैनधर्मकी मुद्रा अकित हो गई । यदि आप उनके उपकारको स्मरण करती है तो यह उचित ही है । क्योकि **"न हि कृतं उपकार साधवो विस्मरन्ति ।"** परन्तु तात्त्विक बात तो यह है कि कल्याणका उदय परमार्थसे आत्मा ही मे होता है और आत्मा ही उसमे उपादान कारण है, इसमे तो निमित्त ही है । नौकापर बैठे रहकर कोई पार नहीं होता, किन्तु पार होने के समय (उस पारके तटपर पैर रखते समय) नौका त्यागनी ही पडती है । मोक्ष-मार्गके उपदेष्टा श्रीपरमगुरु अर्हन्त है । उनके द्वारा ही इसका प्रकाश हुआ है । अत हर उचित है कि अपने मार्गदर्शकको निरन्तर स्मरण करे । परन्तु उन्हीं प्रभुका आदेश है कि यदि मार्गद्रष्टा होनेकी भावना है तब हमारी स्मृति भी भूल जाओ और जिस मार्गको हमने अगीकार किया, उमीका अवलम्बन करो । अर्थात् पदार्थ मात्रमे रागादि परणतिको त्यागो, क्योकि यह परणति उस पदकी प्राप्तिमे बाधक है । प्रवचनसार मे कहा है -

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं ।
जहदि जदि रागदोसे मो अप्पाणं लहदि सुद्धं ।।

जिसका मोह दूर हो गया है ऐसा जीव सम्यक् स्वरूपको प्राप्त करता हुआ यदि राग-द्वेषको त्याग देता है तब वह जीव शुद्ध आत्मतत्त्वको प्राप्त करता है । और कोई उपाय या उपायान्तर आत्म-तत्त्वकी प्राप्तिमे साधक नहीं । यही एक उपाय मुख्य है । प्रथम तो मोहका अभाव करके सम्यग्दर्शनका लाभ करो । ज्ञानमे यथार्थताका लाभ उसी समय होता है । केवल राग-द्वेषकी निवृत्तिके अर्थ चारित्रकी उपयोगिता है । चारित्रका फल रागद्वेष-निवृत्ति है । यहॉ चारित्रसे तात्पर्य चरणानुयोग प्रतिपाद्य देशचारित्र और सकलचारित्रसे है । और जो कषायकी निवृत्तिरूप चारित्र है वह प्रवृत्तिरूप नहीं । उसका लाभ तो जिस कालमे कषायकी कृशता है उसी कालमे है । उसकी शान्ति वचनातीत है । अत प्रवृत्तिसे उसका सद्भाव नही । वह (प्रवृत्ति) तो उसकी घातक ही है । किन्तु उसके सद्भावसे वह हो सकता है, अत उपचारसे उसे भी चारित्र कह देते है और पच महाव्रतकी भी इसीसे चारित्रमे गणना की है । वास्तवमे तो महाव्रत आस्रवका ही जनक है, परन्तु महाव्रतके होनेपर वह होता है इसलिए उसे भी चारित्र कह दिया । वास्तवदृष्टिसे तो वह न प्रवृत्तिरूप है और न निवृत्तिरूप है । वह तो विधि निषेधसे परे अपरिमित शान्तिका दाता अनुपम आत्माका परिणाम है, जिसका वर्णन शब्दोसे बाह्य है । फिर भी उसके विषयमे आचार्योने बहुत कुछ कहा है। प्रवचनसार (अ १ गाथा ७) मे कहा है -

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ।।७।।

आत्माके स्वरूपमे जो चर्या है उसीका नाम चारित्र है । वही वस्तुका स्वभावपनेसे धर्म है । अर्थात् शुद्ध चैतन्यका प्रकाश ही धर्मका अर्थ है । वही वस्तु यथावस्थित आत्म-स्वभावपनेसे साम्य भाव है । और जहॉपर दर्शनमोह और चारित्रमोहके अभावसे मोह और क्षोभका अभाव होनेपर आत्माकी अत्यन्त निर्विकार परिणति उद्भूत होती है उसी निर्मल भावका नाम साम्यभाव है । वह इस जीवका ही परिणाम है । उसीको श्री पद्मनदि महाराजने इन शब्दोमे कहा है -

मोहोद्भूतविकल्पजालरहिता वागङ्गसङ्गोज्झिता ।
शुद्धानन्दमयात्मन: परिणतिर्धर्माख्या गीयते ।।

अत इन निमित्तोकी उपयोगिता वहीं तक है जहॉ तक हम मोही है । मोहके अभावमे इनका कोई उपयोग नहीं । स्वामीने कहा है-

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ।।

कर्म करना और बात है तथा कर्मका होना और बात है । बडे-बडे महर्षियोने भी उत्तम-उत्तम ग्रन्थ रचकर जगतका कल्याण किया, फिर भी कर्ता नहीं बने । यदि उनके आशयमे कर्तव्य होता, कदापि मोक्षके पात्र न होते । अत. अपने पवित्र भावोके उदयके अर्थ निरन्तर जैसा पदार्थ है उसी रूपमे प्रतीति रहना चाहिये । यथाशक्ति श्रद्धाका जो विषय है उसमे रमण करनेकी स्थिरता होनी चाहिये । अत जो निश्रेयसके अभिलाषी है वे बाह्य व्यवहारमे आसक्त रहते है । **''जिन नहिं चाखीमीसरी उनको कचरा मिट्ठ ।''** जिन्होने परमार्थ-रसामृतका आस्वाद ले लिया वे इस व्यवहारके आस्वादको नहीं चाहते । विशेष क्या लिखूॅ ? यह पत्र श्री त्रिलोकचन्दको भी सुना देना । उनके पत्रका उत्तर फिर दूगा । उन्होने पूछा है कि मरने पर ऋजुगतिवाला एक समयमे जन्म लेता है उसके कौन योग है ? वहॉ उसके मिश्र योग है । क्योकि वह जहा जन्म लेगा, तदनुकूल वर्गणा ग्रहण करने लगता है, इसीसे उसके आनुपूर्वी भी अपना कार्य करने मे समर्थ नहीं । आपकी भद्रता ही भद्र परिणाम की साधक है, और तो निमित्तमात्र है ।

तुम्हारा चिद्रूप ही आत्मकल्याणका हेतु है । उसमे जो वर्तमानमे अशक्तिसे रागादिककी उत्पत्ति है वह समय पाकर जायेगी । देशव्रतमे महाव्रतकी शान्ति व्यक्त नहीं हो सकती ।

आ शु चि
गणेश वर्णी

(५ - ५०)

श्रीयुक्त प्रशममूर्ति महादेवीजी, योग्य दर्शनविशुद्धि

शारीरिक व्याधि असातोदयमे होती है । किन्तु यदि उसके साथमे अरति-प्रकृतिका उदय बलवान् हो तब वह व्याधि विशेष दु खजनक होती है । यदि विशेष बलवान् न हो तब विशेष बाधक नहीं होती । विशेषसे तात्पर्य-मिथ्यादर्शनके साथ अरति विशेष बलशाली है । वास्तवमे शरीरमे जो रोग है वह दु खदायी है ही नहीं । हमारा शरीरके साथ जो ममत्वभाव है वही तो मूल जड वेदनाकी है । इसके दूर करनेके अनेक उपाय है पर दो उपाय अति उत्तम है - एकत्व भावना और अन्यत्व भावना ।

इनमे एक तो विधिरूप है और एक निषेधरूप । वास्तवमे विधि और निषेधरूपका यथार्थ परिचय हो जाना ही तो सम्यग् बोध है । परसे भिन्न और निजसे अभिन्न ही तो शुद्ध वस्तु है । इसीको समयसारमे स्वामी कुन्दकुन्द महाराजने कितने सुन्दर पद्यमे निरूपण किया है-

अहमिक्को खलु शुद्धो दंसण-णाणमइओ सदारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तं पि ।।३८।।

निश्चय कर मै एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शनात्मक हूँ, सदा कालअरूपी हूँ । इस ससारमे अन्य परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है, परन्तु हे मोह ! तेरी महिमा अचिन्त्य और अपार है जो ससार मात्रको अपनेमे ग्रास करना चाहता है । नारकीकी तरह मिलनेका कारण नहीं, इच्छा ससारभरका नाज खानेकी है, यही मोहकी विलक्षणता हैं । जो बावले कैसे प्रलाप निरन्तर करता रहता है । हाथ कुछ आता नहीं, अतएव स्वामीने भावक भावके दूर करनेके अर्थ कैसा सुन्दर और हृदयग्राही पद्य कहा है-

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया बिति ।।३६।।

मोह मेरा कुछ भी सम्बन्धी नहीं । एक उपयोग ही मै हूँ । समयके ज्ञाता उसे निर्मोही जानते है । जिसके मोह चला जाता है उसको ज्ञेय-ज्ञायकभावका विवेक अनायास हो जाता है । उसीको समझाने अर्थ स्वामीजीने निम्न पद्य कहा है-

णत्थि मम धम्मआदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्त समयस्य वियाणया विति ।।३७।।

इत्यादि अनेक पद्योसे मोही जीवके सम्यग् बोधके अर्थ प्रयास किया । परमार्थसे स्वामीने, जो मगलाचरण अनन्तर दो गाथाए है उनमे समयसारका सम्पूर्ण रहस्य कह दिया है ।

जीवो चरित्त-दसण-णाणट्ठिउ तं हि ससमयं जाण ।
पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं ।।२।।

जो जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्रमे स्थित हो रहा है उसीको तुम स्वसमय जानो और इसके विपरीत जो पुदगल कर्मप्रदेशोमे स्थित है उसे पर समय जानो । जिसकी ये दो अवस्थाएँ है, उसे अनादि अनन्त सामान्य जीव समझो । इसी भावको लेकर

स्वामीजीने 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग·' कहा है और इसी भावको लेकर स्वामी समन्तभद्राचार्यने कहा है-

सदृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मे धर्मेश्वरा: विदु: ।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति: ।

इस गाथाके आभ्यन्तर द्वादशागका सार है । इसकी महिमा अनिर्वचनीय है । लिखनेकी सामर्थ्य नहीं, अत यही पूर्ण करता हूॅ । बाबाजी महाराजसे क्या कहूॅ, उनका स्मरण ही हमे कल्याणपथका पथिक बना रहा है । महाराजका मौनका अभ्यास अच्छा है । आपको क्या लिखूॅ, परन्तु हमारा मौन तो वचन योगके अभावको मौन समझ रहा है, किन्तु जब तक कषायोकी वासनाका निरोध न हो तब तक वचनयोग और मनोयोगका निरोध होना असम्भव है । अन्तर्जन्य होता ही रहता है । इसपर कभी आपकी कृपा होगी तो मै कुछ लिखूॅगा । मेरे गूमडा हुआ तो अच्छा ही हुआ । जो आपके अभिप्राय से निर्गत उपदेश तो आपके हस्ताक्षरोसे अकित मिल गया । गूमडा अच्छा हो गया, परन्तु अन्तरङ्ग गूमडा दूर हो तब कुछ वास्तविक शान्तिका लाभ हो । आनेका विचार चातुर्मासके बाद करूॅगा । मोक्ष-लिप्सा मोक्षका कारण नही, परन्तु लिप्साकी निवृत्ति मोक्षका साधक है ।

आ शु. चि
गणेश वर्णी

वर्णी-विचार

२४ फरवरी १९४५

* ससार की विषम परिस्थिति है । यह कहा तक सम्भव है । यह जानने की महती आवश्यकता है । ससार तो परोक्ष पदार्थ है । इसका निर्णय इस आगमानुकूल ही कर सकते है । परन्तु आवश्यकता हमे हमारी परिणति जानने की है । जो कि अनुभूत है और हम उसे शब्दो मे लिख सकते है ।

श्री भगिनी शान्तिबाईजी

(आदर्श महिला भगिनी शान्तिबाईका जन्म वि स १९४९ को टीकमगढ जिलान्तर्गत जरुआ ग्राममे हुआ था । पिताका नाम श्री सिघई पचौरीलालजी और माताका नाम रावरानी था । जाति गोलालारे है । इनकी शादी ९ वर्ष की उम्रमे सिमरा निवासी सिघई भैयालालजी के साथ हो गई थी । परन्तु विवाहके छह वर्ष बाद ही इन्हे वैधव्यके दुर्दिन देखने पडे ।

पूज्य वर्णीजी महाराजकी धर्ममाता श्री चिरोजाबाईजीकी देवरानी होनेसे ये उनके पास रहने लगीं । वहींसे इनके वास्तविक जीवनका प्रारम्भ होता है । माताजीने लौकिक और पारमार्थिक दोनो प्रकारकी शिक्षा दिलाकर इन्हे अपने पैरो खडी होने लायक बना दिया । फलस्वरूप ये कटरा बजार सागरकी कन्याशालामे अध्यापिकाका कार्य करने लगीं । वहाँसे इन्हे जो कुछ मिलता है उसीमे अपना निर्वाह करती है और काटकसरकर जो बचा पाती है उसका यथासम्भव परोपकारमे विनियोग करती रहती है । इन्होने अपने जीवनमे बहुत बडे व्रत स्वीकार नही किये है फिर भी ये अपनी निर्लोभता, सादगी, सरलता और दृढता आदि गुणोके कारण सबके लिए आदर्श है । इन्हे देखते ही माताकी ममता जाग उठती है ।

मालूम पडता है कि पूज्य वर्णीजी महाराजने इन्हे लगभग तीन पक्तिका एक ही पत्र लिखा है जो यहा दिया जा रहा है ।)

(६ - १)

श्री शान्तिबाईजी !

धर्मध्यानमे अपना समय बिताना, स्वाध्याय करना और जहा तक बने कुछ पाठ कण्ठस्थ करना । ससारमे कोई सरण नहीं, केवल पञ्च-परमेष्ठी ही शरण है । जो आप शान्त होगा वही सुखी होगा ।

"आत्मभ्रांति सम रोग नहि,
सद्गुरु वैद्य सुजाण;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि
औषध विचार ध्यान ।"

"देह छतां जेनी दशा
वर्ते देहातीत,
ते ज्ञानीना चरण मां
हो वन्दन अगणित ।"